अमृतलाल नागर

का

उपन्यास—साहित्य

लेखक
प्रकाश चन्द्र मिश्र

साहित्य प्रकाशन दिल्ली-110006

मूल्य 40 रुपया मात्र
प्रकाशक साहित्य भारती कानपुर २०८०१२
मुद्रक वाणी मुद्रण, कानपुर २०८०१२

AMRIT LAL NAGAR KA UPNYAS SAHITYA
By Prakash Chand Mishra—Price Rs 40-00

भूमिका

श्री अमृत लाल नागर हिन्दी कथा साहित्य की यथार्थवादी धारा के एक अत्यंत समर्थ रचनाकार हैं। उनका रचनाकार व्यक्तित्व प्रेमचन्दोत्तर कथा-साहित्य के प्रधान कथाकार का व्यक्तित्व है। समग्रता में लें तो उनके रचनाकार की क्षमतायें यशपाल, अज्ञेय और जैनेन्द्र जैसे उपन्यासकारों से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं, बल्कि हिन्दी पाठकों के बीच अपनी यथार्थवादी कला और राजनीतिक मतवादों से मुक्त, स्वस्थ तथा उदार चिंतन के कारण कदाचित वे अधिक लोकप्रिय हैं। प्रस्तुत कृति में मैंने उनके रचनाकार–व्यक्तित्व तथा कृतित्व का अनुशीलन उन्हें तथा उनके कृतित्व को प्रेमचन्द परम्परा की एक सशक्त कड़ी मानते हुए ही किया है।

प्रथम अध्याय मे मैंने हिन्दी कथा साहित्य के उदभव तथा उसकी प्रारम्भिक भूमिका का एक संक्षिप्त विवरण देते हुये प्रधानतः प्रेमचन्द के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की इसी कारण विशद विवेचना की है, ताकि मैं हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में श्री अमृतलाल नागर के प्रवेश को उसके सही परि-प्रेक्ष्य मे दिखा सकूं। दूसरा अध्याय नागर जी के संक्षिप्त जीवन वृत्त तथा व्यक्तित्व से सम्बन्धित है। तीसरे-चौथे-पाचवें और छठवें अध्यायों में नागर जी के सामाजिक उपन्यासों[1] की विस्तृत विवेचना की गयी है। छठे अध्याय मे 'अमृत और विष' पर विशेष विस्तार से विचार किया गया है। सातवें और आठवें अध्यायों मे नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यासों[2] का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। नवें अध्याय में नागर जी के विचार पक्ष और जीवन दर्शन पर दृष्टिपात हुआ है। दसवाँ अध्याय उनके उपन्यासों के कला और शिल्प का विवेचन प्रस्तुत करता है और 'उपसंहार' के अन्तर्गत प्रेमचन्द परम्परा के एक समर्थ रचनाकार के नाते प्रेमचन्द के ही सन्दर्भ मे नागर जी के कृतित्व की स्थायी उपलब्धि का आकलन किया गया है, साथ ही यथार्थ-वादी धारा के अन्य कथाकारों के मध्य उनकी स्थिति स्पष्ट की गयी है। नागर जी के चिंतन की एक महत्वपूर्ण सीमा का उल्लेख करते हुये मैंने डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में उनकी संभावनाओं को प्रत्यक्ष कर अपने अध्ययन का समापन किया है।

१—महाकाल सेठ बांकेमल, बूंद और समुद्र, तथा अमृत और विष।

२—शतरंज के मोहरे, सुहाग के नूपुर।

नागर जी के कतित्व के समूच विवेचन के अन्तगत उनकी उपलब्धियो के साथ साथ मैंने यथास्थल उनकी सीमाओं का भी तटस्थ रूप से उल्लेख किया है। मेरा प्रयत्न यही रहा है कि मेरा विवेचन यथासम्भव तटस्थ और वैज्ञानिक बन सके। मैं अपने इस प्रयत्न में कहा तक सफल हुआ हूँ इसका निणय अधिकारी विद्वान करेंगे।

अपनी इस कृति की रचना में मैंने अनेक विद्वानो के ग्रंथों निबन्धों आदि से यथास्थल पर्याप्त सहायता ली है जिसके लिए मैं हृदय से उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूं। सागर विश्व विद्यालय के विभागाध्यक्ष आचाय भगीरथ मिश्र का नाम तो इस कृति के साथ प्रेरणा स्रोत के रूप में जुड़ा है विषय चयन और रूपरेखा निर्धारण का काय भी उन्ही के निर्देशानुसार हुआ है। आज इस कृति को पाठको के समक्ष प्रस्तुत करते हुये मैं उनके प्रति एक बार पुन अपनी श्रद्धा निवेदित करता हूँ। उनके द्वारा दिये गये दिशा निर्देश के अभाव में पुस्तक का क्या रूप होता मैं कह नहीं सकता।

गुरुवर आदरणीय डा० भानुदेव शुक्ल के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होने पुस्तक लेखन के समूचे क्रम में मुझे न केवल प्रोत्साहित किया बल्कि अपने महत्वपूर्ण निर्देशों से मेरा पथ भी प्रशस्त किया। समय-समय पर उनसे मिलने वाले सुझावो ने मेरे विवेचन को सम्पन्न किया है। अन्य गुरुजनों एव अग्रजो ने भी मुझे जो सहयोग और समर्थन दिया उसके लिए मैं उनका भी आभारी हूँ।

अन्त में मैं अपने विवेच्य रचनाकार प० अमृतलाल नागर का हृदय से आभारी हूँ जिन्होने मेरे द्वारा भेजी गई प्रश्नावली का अपने कठिन क्षणों में भी विस्तार से उत्तर देकर अपने पारिवारिक जीवन तथा साहित्यिक जीवन के सम्बन्ध में कई अनुपलब्ध तथा मूल्यवान तथ्यों से मुझे परिचित कराया।

मैंने इस पुस्तक में अपनी योग्यतानुसार विवेचना के मार्ग पर बढने का प्रयास किया है। मेरा ज्ञान सीमित है, जबकि अध्ययन के क्षितिज पर्याप्त व्यापक हैं। अपने काय मे मैं कहा तक सफल हो सका हूँ इसका अनुमान मुझे नही है। अपनी ओर से मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैंने ईमानदारी और परिश्रम से अपना काय सम्पन्न करने का प्रयत्न किया है। इस पुस्तक की जो विशेषतायें होंगी वे मेरे गुरुजनों के आशीर्वाद का फल है और जो सीमाए हैं वे मेरी अपनी हैं। यदि मेरे इस काय से नागर जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का कुछ भी समग्र परिचय सामने आ सका तो मैं अपने प्रयत्न को सार्थक मानूंगा।

—प्रकाश चन्द्र मिश्र

विषयानुक्रम

अध्याय–१

अध्याय–२

अध्याय–९

———

अध्याय-१

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द की परम्परा और अमृतलाल नागर का प्रवेश

•

"प्रेमचद की और हमारी दृष्टि में यह अन्तर होता जा रहा है कि प्रेमचद को मानवता से प्रेम था, हम केवल मानवता की प्रगति चाहते हैं। साहित्यकार की सवदना को – उनकी मानवीय चेतना को – हमने अधिक विकसित या प्रसारित नहीं किया है। यही एक कारण है कि प्रेमचन्द का आख्यान साहित्य अब भी हमारा मार्ग-दर्शक हो सकता है। प्रेमचद को हम पीछे छोड़ आये, यह दावा हम उसी दिन कर सकेंगे, जिस दिन उससे बड़ी मानवीय सवेदना हमारे बीच प्रकट होगी। उसके बाद ही हम यह कहेंगे कि प्रेमचद का महत्व ऐतिहासिक है।"

—अज्ञेय

कहानी और उपन्यास दोनों ही कथा-साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ हैं। यद्यपि इन विधाओं पर भारतीय आख्यायिकाओं तथा आख्यानों का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव है, परन्तु उनका जो रूप आज हमारे सामने है वह मूलत आधुनिक युग की देन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार हिन्दी साहित्य का सबसे नया और शक्तिशाली रूप उपन्यासों में प्रकट हुआ।[1] हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का विशेष महत्व है। इसी १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही हमारे उपन्यास साहित्य का भी जन्म होता है। हिन्दी उपन्यास के उद्भव में तत्कालीन परिस्थितियों के परिवर्तन का भी विशेष महत्व है।

कुछ लोग हिन्दी उपन्यास को पश्चिम की देन मानते हैं। १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल की परिस्थितियों पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो उक्त कथन की सत्यता को सम्पूर्णत अस्वीकार नहीं कर पाते। इस काल में भारत में अंग्रेजों की शक्ति काफी दृढ़ हो चुकी थी और भारतीय जनता पर इसका प्रभाव पड़ने लगा था। योरोपीय वैज्ञानिक और औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप विश्व में एक नई लहर उत्पन्न हुई और जमाने में एक नया मोड़ आया। योरोपीय जीवन दर्शन तथा साहित्य और कला पर भी उसका विशेष प्रभाव पड़ा परिणाम-स्वरूप नवीन परिवर्तन सामने आये। भारत भी इससे अछूता न बच सका। भारतीय जीवन दर्शन तथा साहित्य और कला पर भी इसके प्रभाव के फलस्वरूप नये परिवर्तन उत्पन्न हुए। परन्तु जहाँ एक ओर इन क्रांतियों ने मानव-मन से अंधविश्वास,-पुरानी रीतियों रूढ़ियों के पर्दे को हटाकर उसकी बुद्धि और दृष्टि को एक नया प्रकाश व शक्ति दी, उसे बुद्धिवादी बनाया वहीं दूसरी ओर जीवन और समाज के क्षेत्र में कुछ विषम परिस्थितियों को भी जन्म दिया, जिनका भी साहित्य के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव पड़ा। मानव जीवन तथा समाज की इन विषमताओं, जटिलताओं तथा नवीन समस्याओं और परिस्थितियों को चित्रित करने के लिए, समाज कल्याण और मानव हित की भावना को लोगों में संचार करते

---

[1]– हिन्दी साहित्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी–पृ० ४१२।

के लिए तथा इन विषमताओं और जटिलताओ का समाधान प्रस्तुत कर उन्हें आदर्श रूप मे परिणित करने के लिए उस समय एक नवीन साहित्य रूप की आवश्यकता महसूस होने लगी और 'उपन्यास' इस अभाव की पूर्ति-रूप मे सामने आया। अन्य साहित्यिक रूप भी उस समय थे किन्तु "जगत और जीवन की अभिव्यक्ति अब तक जिन साहित्यिक रूपो द्वारा हो रही थी व जीवन की प्रस्तुत विषम परिस्थितियो को चित्रित करने मे अपूर्ण जान पडने लगे। कवि गीतधर्मी होने के कारण व्यक्ति स्वातन्त्र्य का उपासक होता है जिससे उसकी दृष्टि व्यक्तिगत अधिक होती है, समष्टिगत कम। इसके विपरीत उपन्यासकार बाह्य प्रभावो को अधिक ग्रहण करता है। [१] उपन्यास कार एक सामाजिक प्राणी के नाते समाज का सारा यथार्थ रूप अपनी बुद्धि क्षमता और अनुभव के आधार पर प्रस्तुत कर देता है और 'ऐसी कला, जिसे उपन्यास कहते हैं, केवल समाज मे ही उत्पन्न हो सकती है जहाँ आर्थिक विषमताएं व्यक्ति को सोचने के लिए बाध्य करती हैं।"[२]

परन्तु हिन्दी उपन्यास साहित्य मात्र इन्हा परिस्थितियो की देन नही है। अंग्रेजी उपन्यास साहित्य, विशेषकर रिचर्ड फील्डिंग, गोल्ड स्मिथ, जेन आस्टेन, डिकेन्स आदि जसे कथाकारो राजा राममोहन राय, दयानद सरस्वती जसे भारतीय समाज-सुधारको एव बगला के शरतचन्द्र जसे उपन्यासकारो का प्रभाव भी हमारे उपन्यास-साहित्य पर पडा। "बगला उपन्यासो ने हिन्दी को एक ओर तो अतिप्राकृत, अतिरंजित, घटना बहुल ऐयारी उपन्यासो से मुक्त किया और दूसरी ओर शुद्ध भारतीय सस्कृति की ओर उन्मुख किया।'[३] इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य जहा एक ओर विदेशी साहित्य से प्रभावित है, वहाँ दूसरी ओर अपने देशी साहित्य से भी। पश्चिमी साहित्य से कला और शिल्प (टेक्निक) को उसने अवश्य ग्रहण किया है परन्तु उसकी दृष्टि मूलत भारतीय ही रही है।

पश्चिमी उपन्यास-साहित्य के विकास की जीवन यात्रा कई सौ वर्ष पुरानी है, जबकि हिन्दी उपन्यास अपने विकास के अभी सौ वर्ष भी पूरे नही कर पाया है। किन्तु "अपेक्षाकृत इस थोडे से समय में ही उसकी विकास यात्रा

१– हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद त्रिभुवन सिंह—पृ० ४०
२– वही पृ० ४०।
३– हिंदी साहित्य आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—पृ० ४२०।

जिन स्थितियों की सूचना दे गयी है, वह भाषा में अधिक मनोरंजक होने के साथ-साथ उनमें भविष्य की अपार सम्भावनाओं का भी आभास देती है। न केवल अपनी बात में वरन् अपनी कला और शिल्प में भी हिन्दी उपन्यास, साहित्य के एक अतीव सम्पन्न और समृद्ध अंग के रूप में मान्य है।'[१] आधुनिक हिन्दी साहित्य में अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में इसका (उपन्यास) महत्वपूर्ण स्थान है। कविता के क्षेत्र में जो स्थान 'महाकाव्य' का है, गद्य क्षेत्र में वही स्थान 'उपन्यास' का है। 'इसलिए उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य भी कहा गया है।

इस विवेचना के उपरान्त जब हम हिन्दी उपन्यासों के विकासक्रम पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि एक समय साहित्य विधा के रूप में हिन्दी उपन्यास की प्रतिष्ठा का पूरा श्रेय मुन्शी प्रेमचन्द को है। प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यास की यों तो कई धाराएं दिखाई पड़ती हैं परन्तु वस्तुतः उनमें कोई भी इतनी स्पष्ट न थी कि उसे आगामी सर्जन का आरम्भ माना जा सकता। देवकीनन्दन खत्री और गोपाल राम गहमरी के तिलस्मी तथा जासूसी उपन्यासों ने उपन्यास के पाठक तो उत्पन्न किये परन्तु सच पूछा जाय तो उनके उपन्यास मनोरंजन के साधन ही अधिक सिद्ध हुए। पं० किशोरीलाल गोस्वामी जैसे उपन्यासकारों ने सामाजिक-ऐतिहासिक प्रणय रोमांसों की रचना की परन्तु उनमें भी प्रणय का सतही रीतिकालीन रूप तथा इतिहास की अवमानना ही स्पष्ट हुई। ठाकुर जगमोहन सिंह तथा बाबू ब्रजनन्दन सहाय के भावात्मक उपन्यास भी इसी समय सामने आये परन्तु प्रणय के भावोच्छ्वासमय चित्रण के अतिरिक्त उनकी कोई गुरुतर भूमिका नहीं बन सकी। इस अवधि में कतिपय सामाजिक नीतिपरक तथा शिक्षा प्रधान उपन्यास भी लिखे गये जिनके रचयिताओं में लाला श्री निवासदास, श्री बालकृष्ण भट्ट, श्री राधाकृष्ण दास आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कला की दृष्टि से तो इन उपन्यासों का अधिक महत्व नहीं है परन्तु अपनी विषय वस्तु में ये यथार्थ जीवन से सम्बद्ध होकर सामने आये। इनके लेखकों की चिन्तना में कितने ही आदर्शवादी नीतिवादी संस्कार क्यों न हों, उन्होंने प्रथम बार अपनी कृतियों में सामाजिक जीवन के कतिपय महत्वपूर्ण प्रश्नों

१– साहित्यिक निबन्ध सम्पादक कमलेश–हिन्दी उपन्यास–डा० शिवकुमार मिश्र–पृ० २२१।

२– हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद त्रिभुवन सिंह–पृ० ४०।

को प्रस्तुत किया और इस प्रकार उपन्यास को मात्र मनोरजन के साधन से अधिक स्वीकार किया। यह एक नई भूमिका थी, जो आगे चल कर प्रेमचन्द के माध्यम स न केवल पुष्ट हुई, हिन्दी उपन्यास की सही तथा सच्ची भूमिका बनने का गौरव भी पा सकी।

हिन्दी उपन्यास साहित्य क क्षेत्र मे प्रमचन्द का उदय एक युग प्रवतक के रूप मे होना है। उन्होने हिन्दी उपन्यास-साहित्य को एक नई दिशा दी, उसके लिए एक नवीन भूमि का निर्माण किया। उन्होने अपने पूव के उपन्यासो और उपन्यासकारो से जो कुछ भी विरासत के रूप म ग्रहण किया था उसे सम्पन्न, समद्ध तथा प्रौढ रूप देकर हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत किया।

देखना यह है कि प्रेमचन्द के युग-प्रवतन की सही भूमिका व दिशाए क्या हैं? इसक लिए जब हम प्रमचन्द स पूव की कृतियो को प्रेमचन्द की सापेक्षता मे रखकर देखते हैं तो उनके युग प्रवतन की कई भूमिका व दिशायें हमारे समक्ष स्पष्ट हो जाती हैं। प्रेमचन्द से पूव के उपन्यास-साहित्य पर हम दृष्टिपात कर चुके हैं। जिस समय प्रमचन्द उपन्यास साहित्य म अवतरित हुये और जिन दिनो उनका प्रथम प्रमुख उपन्यास 'सेवासदन' प्रकाशित हुआ था उस समय कतिपय क्षीण प्रकाश रेखाओ के अतिरिक्त हिन्दी कथा साहित्य का परिक्षेत्र प्राय अधकारपूण ही था। जो थोडी बहुत प्रकाश रेखायें टिमटिमा रही थी उन्ही की रोशनी लेकर प्रेमचन्द अपने महत्वपूण अभियान मे अग्रसर हुय। उनके इस अभियान क साथ आग का माग कहा तक और कितना आलोकित होता गया, यह कहने की बात नही। उनकी समूची उपन्यास सष्टि इस तथ्य की साक्षी है। डा० रामविलास शमा के शब्दो म–'प्रमचन्द हिन्दुस्तान की नई राष्टीय और जनवादी चेतना के प्रतिनिधि साहित्यकार थे। जब उन्होने लिखना शुरू किया था तब ससार पर पहले महायुद्ध क बादल मडरा रहे थे, जब मौत ने उनके हाथ से कलम छीन ली, दूसरे महायुद्ध की तयारिया हो रही थी। इस बीच विश्व मानव सस्कृति में बहुत से परिवतन हुए। इन परिवतनो से हिन्दुस्तान भी प्रभावित हुआ और उसने उन परिवतनो मे सहायता भी की। विराट मानव सस्कृति की धारा में भारतीय जन साहित्य की गगा ने जो कुछ दिया उसक प्रमाण प्रेमचन्द क लगभग एक दजन उपन्यास और कहानियाँ है।' १

१–प्रेमचद और उनका युग डा० रामविलास शर्मा पृ० ३१

प्रेमचन्द के पूर्व का उपन्यास साहित्य जैसा कि कहा जा चुका है किसी ठोस व महत्वपूर्ण उपलब्धि या मान्यता को प्रस्तुत नहीं करता। प्रारम्भिक युग की रचनाएं होने के कारण वस्तु शिल्प और कला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण न था। स्पष्ट है कि मात्र तिलस्मी जासूसी रचनाओं या प्रेम रोमांस के सतही किस्सों अथवा नीतिपरक नुमा उपन्यासात्मक कृतियों के आधार पर हिन्दी उपन्यास की नई समृद्धि नहीं दी जा सकती थी। उपन्यास सम्बन्धी समझ में क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता थी। प्रश्न एक विशाल पाठकवर्ग की रुचियों के परिष्कार का अथवा उसे गम्भीर कृतियों की ओर मोड़ने का ही नहीं था उसके सम्मुख चिन्तन और अध्ययन का नया दिशाएं उद्घाटित करने का भी था। यहां सर्वाधिक आवश्यकता इस बात की थी कि युग जीवन के जिस परिवेश जिस समाज तथा संसार के बीच उस समय का मनुष्य जी रहा था - वह जीवन वह परिवेश तथा वह समाज उसके सम्मुख स्पष्ट हो सके। वह अपने परिवेश को समझते हुए अपने समाज तथा संसार को जानते हुए, उसके बारे में सही दृष्टिकोण बना सके, उसे बदलने में अपनी सक्रिय भूमिका अदा कर सके। यह कार्य यथार्थवाद की निखरी हुई कला के सन्दर्भ में ही सम्पन्न हो सकता था। यह उस समय की तात्कालिक आवश्यकता थी कि कल्पना, ऐयारी और जादू-टोना या प्रेम रोमांसों की सतही भूमिकाओं से पृथक कर उपन्यास को यथार्थ जीवन का सच्चा प्रवक्ता बनाया जाय और उसे एक गम्भीर रूप देते हुए पाठक वर्ग को उसकी ओर उन्मुख किया जाय। यह कार्य प्रेमचन्द के कन्धों पर पड़ा और उन्होंने सफलता के साथ अपने दायित्व का निर्वाह किया। अपने पूर्ववर्ती कथा साहित्य में बीज रूप में प्राप्त यथार्थ जीवन के कतिपय साफ सच्चे चित्रों से प्रेरणा लेते हुए उन्होंने उन बीजों को उनकी समूची सम्भावनाओं के साथ विकसित और पल्लवित किया।

प्रेमचन्द अपने पूर्व के उपन्यासों के स्वयं एक अच्छे पाठक थे। 'चन्द्रकान्ता' और 'तिलस्म होशरुबा' जैसी रोचक कृतियों को उन्होंने बड़े चाव से पढ़ा भी था परन्तु वे उनकी परम्परा को आत्मसात न कर सके। उन्होंने उन उपन्यासों से भिन्न अपनी कृतियों को एक सौन्दर्य भूमिका दी उनमें मनोरंजन का एक नया स्तर उद्घाटित किया। उन्होंने अपने समय के विशाल पाठक समुदाय के मन में चन्द्रकान्ता और भूतनाथ जैसे उपन्यासों के प्रति केवल अरुचि ही नहीं पैदा की उन्हें 'सेवासदन' जैसे उपन्यासों का पाठक भी बनाया। अपने समय के पाठक वर्ग की कलात्मक चेतना को विकसित कर उसे एक सजग और सामाजिक-बोध वाले पाठक वर्ग के रूप में विकसित कर

प्रेमचंद ने सही अर्थों में उपन्यास-क्षेत्र में एक नये युग-प्रवर्तन को सम्भव बनाया।

प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानियां एक ओर तो समाज और युग जीवन का सजीव और वास्तविक चित्र प्रस्तुत करती है और दूसरी ओर उन्हें बदलने के स्पष्ट संकेत भी देती हैं। इस सम्बंध में उनका कहना था 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है।—वह देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।"[१] कहने की आवश्यकता नहीं कि तत्कालीन परिस्थितियों में प्रेमचंद के कृतित्व ने एक ज्वलंत मशाल बनकर ही युग-जीवन के अंधकार को काटने में मदद दी, न केवल राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी सक्रिय भूमिका अदा की, नये राष्ट्र की संभावनाओं को भी उजागर किया।

प्रेमचन्द का उपन्यास-साहित्य जिस विशिष्ट भूमि पर निर्मित हुआ, वह भूमि यथार्थवाद की है। यद्यपि प्रेमचंद से पूर्व भारतेन्दु और प० बालकृष्ण भट्ट जैसे लेखकों में यथार्थवाद की कतिपय बिखरी हुई किरणें मिलती हैं, परन्तु ये साहित्यकार उन्हें एकत्र कर एक ठोस तथा ज्वलन्त आकृति दे सकने में बहुत सफल न हो सके थे। प्रेमचन्द ने इन धुंधली किरणों को ग्रहण कर एक उज्जवल तथा प्रौढ़ रूप दिया। 'सेवासदन' से लेकर 'गोदान' और 'अधूरे मंगलसूत्र' तक का उनका उपन्यास-साहित्य इस नये तथा शक्तिशाली यथार्थवाद का साक्षी है। उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज, मानव-जीवन और युग-जीवन का सही और यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया और अपनी सजग यथार्थवादी दृष्टि से जीवित कथानकों तथा पात्रों को जन्म दिया। युग-जीवन की कोई भी महत्वपूर्ण हलचल उनके उपन्यासों से ओझल नहीं होने पाई है। समूचा का समूचा भारतीय समाज अपनी शक्ति तथा दुर्बलताओं के साथ उनकी कृतियों में उपस्थित है। यथार्थवादी कला की सम्पन्नता और उसके समग्र रूप को उनकी कृतियों में देखा जा सकता है। प्रेमचंद उपन्यास को 'मानव जीवन का चित्र समझते थे और मानव चरित्र पर प्रकाश डालना, उसके रहस्यों को खोलना वे उपन्यास का मूल तत्व मानते थे।'[२] उनकी

१—साहित्य का उद्देश्य प्रेमचन्द—पृ० १५।

२—प्रेमचंद 'कुछ विचार'—पृ० ७१।

रचनाओं में समाज और मानव जीवन के चित्र एक विशाल यथार्थ की भूमि पर उभरे हैं। यह यथार्थ उनके उपन्यासों का प्राण तत्व, उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। प्रेमचन्द ने तत्कालीन समाज को काफी गम्भीर से देखा था, सिर्फ देखा ही नहीं उसका काफी अनुभव भी प्राप्त किये थे। सामाजिक कुरीतियों, किसानों की मजबूरियां, मजदूर तथा मध्यवर्ग की परेशानियों, नारीपराधीनता और सामन्ती पूँजीवादी-अत्याचारों से आक्रान्त भारतीय जन समुदाय ने उनके संवेदनशील हृदय को काफी प्रभावित किया था। उनकी इस करुणा और संवेदना ने ही उन्हें तिलस्मी और जासूसी कृतियों को विस्मृत कराते हुये उपन्यासों में समाज और मानव के सच्चे और यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। प्रेमचन्द का यह मानवतावाद भी उनकी कृतियों में एक बहुत बड़ी शक्ति बन कर उभरा है। जन सामान्य के प्रति गहरी संवेदना और वृहत सामाजिक अन्याय के प्रति उतनी ही तीखी घृणा हम उनके उपन्यासों में प्राप्त होता है। समाज के पीड़ित तथा शोषित वर्गों, नारी किसान मजदूर, अछूत आदि की जितनी सही और संवेदना पूर्ण झांकी हम प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रेमचन्द समष्टि मंगल और जनहित के पक्के हिमायती थे। उनका साहित्य जनता का साहित्य था। जनता के प्रति उनके हृदय में प्रगाढ़ आस्था थी। 'जनता को समझने वाले जनता के प्रति वास्तविक सहानुभूति रखने वाले, जन जीवन को अपना जीवन समझने वाले जनहित के लिए आत्माहुति देने वाले भारत के राजनीति-क्षेत्र में एक गांधी जी हुए और हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में एक प्रेमचन्द।"[1] प्रेमचन्द के सजग मानवतावाद की भांति उनका यह क्रांतिकारी जनवाद भी उनके साहित्य की बहुत बड़ी शक्ति है। प्रेमचन्द के जनवाद की इस शक्ति का स्रोत वस्तुतः भारत की विशाल जनता में ढूंढ़ा जा सकता है जिससे वे अभिन्न थे। भारतीय जन समाज के दुखों के साथ वे उसके साहस तथा शक्ति से भी परिचित थे। उन्होंने इस जन समाज को नई राजनीतिक चेतना के संदर्भ में अपने उपन्यासों में उतारा है। रूस की सन् १९१७ की समाजवादी क्रांति से वे भली भांति परिचित थे। उन्होंने नये भारत में इस जन-समुदाय का भविष्य इस प्रकार के समाजवादी परिवर्तन में ही देखा था और उसे ही चित्रित भी किया। वे पहले हिन्दी–

१– हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन डा० गणेशन–पृ० ६०।

लेखक हैं जिन्होंने समस्त पूववर्ती परपराओ का तिरस्कार करते हुये, भारतीय सामान्य जन को ही अपने उपन्यासो का नायकत्व प्रदान किया। उस जन समाज के एस प्रतिनिधि पात्र हमे दिये जो अविस्मरणीय हैं। सुमन और जालपा जसी नारियो, होरी तथा सूरदास जमे व्यक्ति उमी भारतीय जन समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिस पर प्रेमचन्द की अटूट आस्था थी।

प्रेमचन्द मानवतावादी लेखक जरूर थे, परन्तु उनका मानवतावाद मनुष्य की तरफदारी करने वाला मानवतावाद है। वह अमानवीय भावनाओ को देखकर चुप नही रहता। प्रेमचन्द खुलमखुल्ला अपना उद्देश्य घोषित करते हैं कि ऐसी भावनाओं के प्रति जितनी भी घणा फलायी जाय, वह थोडी है। वह सोद्देश्य साहित्य के समर्थक हैं। "कला कला के लिए या निरुद्देश्य साहित्य से उनका बर है। वह भावनाओ और व्यक्ति म भेद करते हैं। लेकिन स्वय उनके उपन्यास अन्याय हो नही अन्यायी के प्रति भी घणा दिखाते हैं।"[१] उनके पात्र कल्पना स गढ़े हुए पात्र नही, वे अपना जीवित व्यक्तित्व लकर उनके उपन्यासो म उतरे हैं। उनके निजी अनुभवो ने पात्रो पर अपनी पूरी छाप छोडी है। "उनक अधिकांश पात्र ऐसे हैं जिन्हें प्रमचन्द ने देखा है और जिनका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया हैं। ताल्स्तॉय और गोर्की के अतिरिक्त और किसी न इस तरह अपने जीवन मे अनायास आये पात्रो का अनुभवसिद्ध ज्ञान उपन्यास म प्रस्तुत नही किया है। फलॉबेयर दास्तॉयव्स्की, गाल्सवर्दी के पात्र अध्ययन सिद्ध हैं, अनुभव सिद्ध नही।"[२] मानवजीवन के विकास और विस्तार की भाति ही उनक उपन्यासो मे विषयो का भी व्यापक विकास व विस्तार है। उनकी यथाथ दष्टि नागरिक जीवन और ग्राम्य जीवन दोना क्षत्रो म पहुची है। दानो ही क्षेत्रो स सामाजिक कुरीतिया, अछूत समस्या वेश्या समस्या, धार्मिक पाखण्ड, अधविश्वास, सामाजिक-रूढियो रीतिया, राजनैतिक स्वतत्रता, क्राति, नारी स्वातत्र्य तथा समाज के अन्य विभिन्न वर्गो की समस्यायो को अपन उपन्यासो मे विषय रूप म प्रस्तुत किया और स्वय उनका समाधान भी किया। उनके कथानको का क्षेत्र इतना विस्तृत होने पर भी उसम बिखराव नहा है, वह एक सुव्यवस्थित गति से आगे बढ़ता है। उनके उपन्यासा मे कल्पना का असतुलित प्रयोग कहीं नही है, इसीलिए वे यथाथ

१- प्रेमचन्द और उनका युग डा० रामविलास शर्मा-पृ० १५१।

२- हिन्दी उपन्यास साहित्य अध्ययन डा० गणेशन-पृ० ६०।

की भूमिका में अति सजीव और वास्तविक बन पड़े हैं। प्रेमचन्द मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मानवीय संवेदना को व्यक्त करने वाले कलाकार थे। उन्होंने मनोवैज्ञानिक भूमिका पर जीवन के प्रत्येक पक्ष की व्याख्या प्रस्तुत की। पात्रों के परिचालन में उनकी यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि विशेष महत्व रखता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचन्द एक सफल यथार्थवादी कलाकार थे। वे केवल यथार्थवादी कलाकार ही नहीं यथार्थवाद की नयी व्याख्या प्रस्तुत करने वाले तथा यथार्थवाद को एक प्रौढ़ तथा व्यापक भूमिका देने वाले एक महान् स्रष्टा-व्यक्ति भी थे। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन— "कविता यथार्थवाद की उपेक्षा कर सकती है संगीत यथार्थ को छोड़कर भी जी सकता है पर उपन्यास और कहानी के लिए यथार्थ प्राण है"[१]—प्रेमचन्द के उपन्यासों में अपनी सत्यता प्रकट करता है। सचमुच यथार्थ प्रेमचन्द के उपन्यासों का प्राण है।

यथार्थवादी साहित्य में भाषा, कथावस्तु, वातावरण, शैली तथा कथानक आदि एक विशेष भूमिका पर निर्मित होते हैं। उनमें कृत्रिमता या अस्वाभाविकता नहीं होती। प्रेमचन्द के उपन्यास इन गुणों में पूर्ण सम्पन्न तथा समृद्ध हैं। व्यंग्य यथार्थवादी शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रेमचन्द से पूर्व भी कुछ लेखकों में हास्य और व्यंग्य की उपस्थिति थी परन्तु हास्य और व्यंग्य का सही, सजीव तथा सामाजिक आशयों से सम्पन्न विकसित रूप जितना प्रेमचन्द के द्वारा उभर सका उतना उस समय के किसी अन्य लेखक के द्वारा नहीं। हास्य और व्यंग्य के वे उस्ताद थे। यथार्थ की भूमि पर हास्य और व्यंग्य के इस सामंजस्य ने उनके उपन्यासों में अतिरिक्त शक्ति डाल दी है जिसमें वर्णन विश्लेषण और भी निखर कर रोचकता के साथ सामने आया है। प्रेमचन्द ने अपने व्यंग्य प्रहार सामाजिक कुरूपताओं, रूढ़ियों तथा सामंतों और पूँजीपतिवर्गों के ऊपर किए हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यास जहाँ एक ओर इन विशेषताओं और गुणों से सम्पन्न हैं, वहाँ दूसरी ओर उनके उपन्यासों में कुछ दुर्बल पक्ष भी हैं, परन्तु ये दुर्बल पक्ष 'समय के साथ अपना महत्व खो देने वाले हैं'[२] जबकि उनके उपन्यासों के स्थायी मूल्य, सामाजिक यथार्थ और उदात्त आदर्शों वाले एक जागरूक कलाकार के रूप में उन्हें सदैव ही जीवित रखेंगे। वरदान से लेकर

१– विचार और वितर्क–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० ९५।

२– साहित्यिक निबन्ध– हिन्दी उपन्यास –डा० शिवकुमार मिश्र पृ० २२५।

'गोदान' तक का उनका सपूर्ण उपन्यास साहित्य एक जीवित साधना का प्रतीक है। उनके अनेक पात्र कभी विस्मृत नहीं किये जा सकते हैं। 'गोदान' का होरी 'सेवासदन' की सुमन तथा 'रंगभूमि' का सूरदास वे अमर पात्र हैं जो उनके पाठकों को सदैव स्मरण रहेंगे।

प्रेमचन्द "एक ऐसे यथार्थवादी कलाकार थे जो जीवन की सचाई आंकना चाहते थे, जीवन के भ्रमों का खंडन करना चाहते थे।"[१] 'सेवासदन' से 'गोदान' तक उन्होंने कथा-साहित्य मे यथार्थवादी कला को उसकी महती संभावनाओं के साथ विकसित किया और इस प्रकार एक ऐसे राजपथ का निर्माण किया जिस पर नई पीढ़ी के लेखक निर्भयतापूर्वक आगे बढ सकें। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनो भूमिकाओं मे उन्होंने अपने कलाकार व्यक्तित्व को दायित्वपूर्ण बनाए रखा, और यही चाहा कि आगे के लेखक भी इसी प्रशस्त भूमिका पर अपने साहित्यिक व्यक्तित्व तथा कृतित्व का निर्माण करें।

प्रेमचन्द के समकालीन कतिपय अन्य उपन्यासकार भी हैं जिन्होंने प्रेमचन्द के कथा-साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों को आत्मसात करते हुए अपने कृतित्व का निर्माण किया। विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', उषादेवी मित्रा, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, चतुरसेन शास्त्री तथा वृन्दावन लाल वर्मा का नाम इस संबंध में विशेष उल्लेखनीय है। कौशिक जी ने मुख्यतः आदर्शवादी, और सुधारवादी लक्ष्य को सामने रखकर अपने उपन्यासों मे पारिवारिक जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला, उषादेवी मित्रा नारी जीवन की समस्याओं के चित्रण मे विशेष सक्षम रहीं, प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने उच्च मध्यवर्ग के रंगे पुते जीवन को अपने उपन्यासों में उदघाटित किया। चतुरसेन शास्त्री सामाजिक जीवन के साथ साथ ऐतिहासिक भूमिकाओं की ओर भी गये और कदाचित संख्या में सबसे अधिक उपन्यास लिखे,—परन्तु इन उपन्यासकारों के विषय में जो बात अधिकार के साथ कही जा सकती है वह यह है कि जहां इन उपन्यासकारों ने प्रेमचंद द्वारा निर्देशित अनेक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाया, वहां प्रेमचंद की गहरी यथार्थ दृष्टि और उसके मूल मे निहित गहरे सामाजिक आशय को दूर तक आत्मसात नहीं कर सके। यही कारण है कि बावजूद कतिपय सुधारवादी और आदर्शवादी संस्कारों के युग जीवन का जो गहरा

१— प्रेमचंद और उनका युग—डा रामविलास शर्मा, पृ १९३।

तीखा और यथाय बोध प्रमचद क उपन्यासो की विशेषता है, वह इनके उप न्यासो म नहीं दिखाई पडता। इनकी तुलना म बाबू व दावनलाल वमा अपन उपन्यासो की रोमांटिक भूमिका के बावजूद अधिक सफलता म यथार्थ का चित्रण कर सके हैं। अपने एतिहासिक उपन्यासो म उन्होने मध्यकालीन सामन्ताय युग की प्रवत्तियो का जा उद्घाटन किया है वह उनक सजग यथार्थ-बोध और प्रगतिशील सामाजिक दृष्टिकोण का परिचायक है। इन एतिहासिक उप न्यासो का स्वच्छन्दतावाद क सदभ म पर्याप्त विश्लेषण हुआ है आवश्यकता यथाथ के सन्दभ म उनक विवचन तथा मूल्यांकन की है।

यही पर पाण्डय बचन शर्मा उग्र का स्मरण भी आवश्यक है जो अपनी प्रारम्भिक राष्ट्रीय-सुधारवादी प्रवत्तियो क बावजूद यथार्थवादी साहित्य क ही लखक हैं। उग्र का यथाथ बोध प्रमचद क यथाथ बोध स भिन्न एक दूसरा ही लीक पर प्रतिष्ठित है जिस मान्य समीक्षकों ने प्रकृतिवाद का नाम दिया है। उग्र की लखना तथा प्रतिभा क पुष्ट प्रमाण उनकी कतियो म हम मिलते है परतु युग का समग्र यथाथ बोध उनम उपलब्ध नही होता।

प्रेमचन्द के समकालीन कथाकारो म जयशंकर प्रसाद का नाम भी उल्लेखनीय है।[१] प्रसाद की 'कंकाल' तथा 'तितली' दोनो कृतियो म उनकी यथाथ दृष्टि सक्रिय हुई है और यह यथाथ दृष्टि एक प्रकार स प्रमचन्द की पूरक भी है। प्रेमचन्द ने जहा सामाजिक यथाथ को अपन कृतियो का विषय बनाया है, वहाँ प्रसाद ने व्यक्ति क यथाथ का उद्घाटित किया है। व्यक्ति के अन्तरग जीवन के उद्घाटन म प्रसाद प्रमचन्द की अपक्षा अधिक सफल हैं जबकि सामाजिक यथार्थबोध म प्रेमचन्द उनस कहीं आग दिखाई पडत हैं। प्रेमचन्द और प्रसाद द्वारा प्रवर्तित यथाथ की यह धारायें आग क उपन्यास कारो को नई प्ररणा देने म समथ हुई।

प्रमचन्द तथा प्रसाद की जिस परम्परा को अपनी सहज स्वाभाविक गति से हिन्दी उपन्यास क क्षेत्र म आगे बढना था वह आग बढी तो परन्तु इसी समय सामाजिक यथाथ के विपरीत एक नई परम्परा क चिह्न भी दिखाई पड़े जिस समीक्षको न जनेन्द्र, भगवती चरण वर्मा इलाचन्द्र जोशी तथा अज्ञेय जसे उपन्यासकारो म देखा। इन उपन्यासकारो ने सामाजिक यथाथ की लीक

१– कंकाल, तितली इरावती (अपूर्ण)।

को छोड कर व्यक्ति मानस की उलझनो तथा सामाजिक जीवन के बीच व्यक्ति की अपनी स्थिति को ही अपने उपन्यासो का विषय बनाया, फलत हिन्दी उपन्यास की यह धारा सामाजिक समस्याओ से हटकर व्यक्ति की अपनी समस्याओ मे सीमित हो गई। व्यक्ति की समस्याओ पर प्रसाद ने भी प्रकाश डाला था परन्तु इन उपन्यासकारो ने, विशेषत जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी ने, उन्हे आधुनिक मनोविज्ञान के संदर्भ मे सुलझाने की कोशिश की। इस क्रम मे जहाँ व्यक्ति के अन्तरग जीवन के कुछ अछूत पक्ष स्पष्ट हुये वहा कतिपय ऐसे पक्ष भी सामने आये जो किसी स्वस्थ भूमिका के निदशक नही बन सके। उपन्यास की जिस विधा को प्रेमचन्द ने सामाजिक जीवन तथा युगीन यथार्थ की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था उसमे अब वयक्तिक प्रवृत्तियो, यौन कुण्ठाओ तथा भाति भाति की मानसिक ग्रथियो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, प्रधान बन गया। मानव चरित्र का भी स्वच्छ और स्वस्थ रूप इन उपन्यासो मे नही उभर सका। उसके स्थान पर मनुष्य की अत्यन्त दुर्बल आकृति इन उपन्यासो मे दिखाई पडी। एक अनपेक्षित बौद्धिकता से भी ये उपन्यास ग्रस्त हुये। कुल मिलाकर जीवन का बहुत ही सकुचित रूप इन उपन्यासो मे प्रस्तुत हुआ। हिन्दी उपन्यासो की यह धारा, बावजूद अपनी कुछ उपलब्धियो के इसी कारण हिन्दी के विशाल पाठक वर्ग को बहुत ग्राह्य न हुई।

हिन्दी उपन्यास की जिस विशिष्ट धारा का उल्लेख हमने ऊपर किया है उसके अतिरिक्त इसी बीच उपन्यासकारो का एक ऐसा समुदाय भी सामने आया जो न केवल प्रेमचन्द की परम्परा का अनुगामी था, वरन एक नई परम्परा के निर्माण का श्रेय भी जिसे प्राप्त हुआ। यथार्थवाद की जो दिशा प्रेमचन्द ने निर्देशित की थी उस दिशा की ओर बढने का एक सफल प्रयास उपेन्द्रनाथ अश्क मे दिखाई पडा। प्रेमचद ने विशेषत भारतीय समाज के निम्न वर्ग को अपने उपन्यासो म उतारा था, अश्क के उपन्यास निम्न मध्यवर्ग के जीवन को चित्रित करते हुये सामने आये। निम्न मध्यवर्ग के जीवन से लेखक के घनिष्ट परिचय ने उसकी कृतियो को अत्यन्त सजीव भूमिका प्रदान की। 'अपनी चित्रण गत तथा दृष्टि जन्य सीमाओ के बावजूद यथार्थ जीवन के प्रति यह आसक्ति ही अश्क का सम्बन्ध प्रेमचन्द और उनकी परम्परा से जोडती है। पिछली पक्तियो में हमने प्रेमचन्दोत्तर युग के कतिपय ऐसे उपन्यासकारो की ओर सकेत किया है, जो न केवल प्रेमचन्द की परम्परा के

यशपाल, रांगेय राघव अमृतराय, भैरवप्रसाद गुप्त तथा नई पीढ़ी के अन्य य कथाकारों का इस संदर्भ में स्मरण किया जा सकता है। इन उपन्यासकारों का वशिष्ट्य इस बात में है कि उन्होंने युग जीवन को केवल एक तटस्थ दृष्टा के रूप में देखा ही नहीं, पर निष्क्रिय भोक्ता के रूप में भोगा ही नहीं, तीखी प्रतिक्रिया तथा घनीभूत संवेदनाओं के साथ उसे दोनों हाथों उठाकर सबको दिखाया भी।"[१] समाज के प्रति आस्थावादी दृष्टि किसान तथा जन साधारण के प्रति महानुभूति, नागरिक जीवन और ग्राम्य जीवन का यथार्थ चित्रण सामाजिक रूढ़ियों रीतियों पर तीखे व्यंग्य और सामाजिक समस्याओं को उठाकर उनका समाधान आदि बातें हम प्रेमचन्द की परम्परा का ही स्मरण कराती हैं। तत्कालीन सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाली छोटी घटना भी इनसे नहीं छूट सकी है। जमींदार सामन्तों से किसानों और मजदूरों का संघर्ष, उनके अत्याचारों से स्वतन्त्रता की माँग करती हुई जनता युग की विषम परिस्थितियों के बोझ से दबा मध्यवर्ग नारी पराधीनता, वर्ग विषमता सबके चित्र इनके उपन्यासों में बड़ी सजीव भूमिका पर उपलब्ध होते हैं।

यशपाल के उपन्यासों का चित्रपट रांगेय राघव तथा नागार्जुन की अपेक्षा अधिक व्यापक है। प्रेमचन्द के पश्चात् स्थापित व हिन्दी के सर्वाधिक अनुभव सम्पन्न कथाकार हैं। उनके उपन्यास अपने समय के भारतीय समाज की एक एक गतिविधि को मूर्त करते हैं। पात्रों की एक बहुरंगी सृष्टि उनके उपन्यासों में मूर्त हुई है। 'दादा कामरेड' से लेकर 'देशद्रोही' 'दिव्या' 'मनुष्य के रूप' और 'झूठा सच' तथा उसके बाद तक यशपाल के सारे उपन्यास भारतीय सामाजिक जीवन को सम्पूर्ण कलात्मकता तथा यथार्थता के साथ प्रस्तुत करते हैं। यही यशपाल का महत्व है। उनके उपन्यासों में मध्यवर्गीय यौन कुण्ठाओं का भी चित्रण हुआ है जिसे एक प्रगतिशील कथाकार के रूप में यशपाल की सीमा कहा जायगा। उनके उपन्यासों में राजनीतिक तत्व भी मुखर हैं। यशपाल के उपन्यासों की इन प्रवृत्तियों का समर्थन न करते हुये भी एक सशक्त यथार्थवादी कथाकार के रूप में इनका महत्व असंदिग्ध माना जायगा।

यशपाल की तुलना में रांगेय राघव अधिक स्वच्छ भूमिका के साथ उपन्यास के क्षेत्र में उतरे हैं। भले ही उनमें अनुभवों की वैसी सम्पन्नता न हो,

---

१— वातायन—पृ० २१।

उनके उपन्यासो का चित्रपट भी यशपाल की तरह व्यापक न हो परन्तु दृष्टि कोण जय सफाई उनमे यशपाल से अधिक है। युग की वग विषमता को उनके उपन्यास एक कदम आगे जाकर मूत करते हैं। 'विषाद मठ', 'घरौंदे' 'हुजूर' तथा 'कब तक पुकारू' जसी कृतियों मे रागेय राघव के यथाथ द्रष्टा कलाकार का सरलता स परखा जा सकता है।

हिन्दी कथा साहित्य में यथाथवाद के प्रवेश के साथ जिस आंचलिक धारा का जन्म हुआ नागाजुन उसके समय प्रतिनिधि के रूप में सामने आते हैं। प्रेमचन्द की भाति नागाजुन ने भी मुख्यत ग्राम्य जीवन को ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। मिथिला की धरती के सारे रूप विधान नागा जुन के उपन्यासा म चित्रित हैं। वहां की प्रकृति वहाँ के उत्सव, सदियो से निरीह जनता पर होने वाल सामतीय अत्याचार, नारी पराधीनता विद्रोह का उभरता हुआ स्वर तथा भविष्य के स्वप्नो को साकार करने के लिए प्रयत्नशील जन जीवन सब कुछ नागाजुन के इन उपन्यासों में लेखक की सजग यथाथ दृष्टि तथा गहरी सवेदना के साथ चित्रित हुआ है। अपने इस सजग यथाथ बोध के कारण ही नागाजुन प्रेमचन्द की परम्परा के सबसे समय दावेदार बन कर सामने आये हैं।

आंचलिक उपन्यासा की परम्परा मे फणीश्वरनाथ रेणु का प्रवेश उसे एक नया उत्कप देता है। नागाजुन के उपन्यासा की विषय वस्तु मिथिला के जन जीवन से सम्बधित थी, रेणु ने पूर्णिया आंचल को अपनी कथा का विषय बनाया है। रेणु के उपन्यासो मे आंचलिक उपन्यासो की कला नागाजुन की अपेक्षा अधिक सजीव तथा अधिक निखरी हुई है, परन्तु दृष्टिकोण की सफाई नागाजुन मे अधिक है। पूर्णिया आंचल के सांस्कृतिक जीवन तथा लाक जीवन को रेणु ने बारीकी स देखा परखा है और यही कारण है कि उनके उपन्यास पूर्णियांचल का अत्यधिक सजीव चित्र प्रस्तुत कर सके हैं। रेणु ने अपने उपन्यासो मे स्वाभाविकता लाने के लिए अंचल की भाषा रीति रिवाज, लोक गीतो आदि का भी पूरा उपयोग किया है। 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' आंचलिक उपन्यासों के क्षेत्र रेणु की महत्वपूण उपलब्धियां मानी जायेंगी।

यथाथ की यह परम्परा नये उपन्यासकारो में भी विकसित होती है। अमृतराय राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, अमरकांत जसे उपन्यासकारो ने इस परम्परा को वस्तु तथा शिल्प दोनों ही दृष्टियो से सम्पन्न बनाया है।

गहरे यथार्थ-बोध और व्यापक सामाजिक जीवन के चित्रण के जिस ध्येय को लेकर प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों की सर्जना की थी, हिन्दी उपन्यास मूलतः इसी परम्परा को लेकर गतिशील हुआ। इस यथार्थ को आगे के कतिपय लेखकों की समाजवादी आस्थाओं ने और भी पुष्ट किया। न केवल इस परम्परा ने महत्वपूर्ण कृतियों से हिन्दी उपन्यास का क्षेत्र समृद्ध किया, नये कथाकार व्यक्तित्व भी उसकी प्रेरणा से सामने आये।

यथार्थ-बोध, प्रखर सामाजिकता, व्यापक मानवतावाद तथा सामाजिक हास्य और व्यंग्य की गहरी क्षमताओं से युक्त अमृतलाल नागर प्रेमचन्द की इसी परम्परा के अग्रज माने जा सकते हैं। अमृतलाल नागर प्रेमचन्द की परम्परा के आधुनिक युग में एक समर्थ दावेदार हैं। प्रेमचन्द की प्रवृत्तियों को उन्होंने पूर्णरूप से आत्मसात किया है। प्रेमचन्द की ही भांति उनके उपन्यासों के विषय भी व्यक्ति और समाज व उनकी समस्यायें हैं। व्यक्ति और समाज के चिरंतन समन्वय की समस्या व दोनों के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को उन्होंने एक बड़ी ही विस्तृत भूमिका पर प्रस्तुत किया है। उनकी कृतियों सजग सामाजिक चेतना के साथ साथ उनके विशाल अनुभवों की भी परिचायक हैं। उन्होंने प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा को न केवल अपनाया ही है बल्कि उसे एक नया व प्रौढ़ रूप देकर अग्रसर भी किया है। समाज और युग जीवन का अत्यंत यथार्थ चित्र नागर जी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है। उनका 'महाकाल' उपन्यास उनके इसी यथार्थ का परिचय देता है जो एक मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर हमारे समक्ष प्रस्तुत हुआ है। नागर जी में प्रेमचन्द की भांति सामान्य जनता के प्रति असीम प्रेम और करुणा है। उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रायः सभी वर्गों के पात्रों का चित्रण किया है परन्तु उनकी संवेदनाएं सदैव समाज के दलित तथा पीड़ित वर्गों के साथ रही हैं। नागर जी की यथार्थ दृष्टि इतनी सूक्ष्म तथा पैनी है कि पात्रों में कहीं भी कृत्रिमता या बनावटीपन नहीं आ पाया है। उनके अधिकांश पात्र जीवित पात्र हैं। नागर जी हास्य और व्यंग्य के भी सिद्धहस्त प्रयोक्ता हैं। हास्य और व्यंग्य की यह परम्परा प्रेमचन्द की ही देन कही जा सकती है। सामाजिक जीवन की असंगतियां तथा ध्वस्त होती हुई सामंतीय सभ्यता का जो चित्र नागर जी ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है वह अविस्मरणीय है। 'सेठ बांकेमल', 'बूंद और समुद्र', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर' तथा उनके नव प्रकाशित उपन्यास 'अमृत और विष' में उभरती हुई नई चेतना के साथ मिटते हुये सामंतवाद की संडांध को सारी विविधता में देखा जा सकता है।

लेखक की आस्था सम्पूण उपन्यासो में जीवन की नई प्रगतिशील शक्तियो पर है, और इसी आस्था के बल पर वे उखडती हुई सामतीय सभ्यता के खण्ड हरो के बीच से नये जीवन की किरणो को सारी भास्वरता म चमका सके हैं।

इस प्रकार प्रेमचन्द की परम्परा के विकास क्रम म यशपाल, रागेय-राघव, नागाजु न तथा रेणु के साथ श्री अमृतलाल नागर की भी विश्वास पूवक गणना की जा सकती है। अगले अध्याय म नागर जी के उपन्यासों तथा उनकी कला पर हम विस्तार से प्रकाश डालते हुए, उनक महत्व का सम्यक् आकलन करने का प्रयास करेंगे।

अध्याय-१

पं० अमृतलाल नागर,
संक्षिप्त जीवनवृत्त और व्यक्तित्व

●

"मेरी एक तमन्ना जरूर है कि एक दिन अपनी किताबो की रायल्टी पर ही निर्वाह करने लायक बन जाऊ। जी चाहने पर किताबें खरीद सकू, घूम सकू

बस एक ही साध है—लिखते लिखते कोई ऐसी चीज कलम से निकल जाए कि मैं सदा के लिये इसान के दिल में जगह पा लू। इस लगन का रग गुलाबी या हल्का लाल नही, बल्कि गहरा लाल है—खून का रग।"

—अमृतलाल नागर

जन्मतिथि तथा जन्म स्थान –

प० अमृतलाल नागर का जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा नगर के गोकुलपुरा मुहल्ले म, भाद्र कृष्ण ४, सवत १९७३ वि०, गुरुवार, तदनुसार १७ अगस्त सन् १९१६ ई० को हुआ था। नागर जी के पूवज अपनी मूल भूमि गुजरात को छोड कर बहुत पहल ही उत्तर प्रदेश मे आकर बस गये थे। जहा तक उनके पूवजो के उत्तर प्रदेश आकर बसने का प्रश्न है, ठीक ठीक तिथि का ज्ञान नहीं। नागर जी के अनुसार 'सुना था कि फरुखसियर क जमाने में नागरा के अष्ट कुल गुजरात से यहा आकर बस थे।"[१] नागर जी के पुरखे प्रयाग क निवासी हुये। तबसे लेकर नागर जी के पूवज उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरो म फलते गय और बाद को चल कर उन्होने उत्तर प्रदेश के बाहर अन्य प्रदेशो मे भी सबध स्थापित किये। इस समय नागर जी के सजातीय उत्तर प्रदेश के प्राय सभी नगरो मे रहते हैं, जिनमे से अनेक उनके सगे सबधी भी हैं।

पूर्वज –

जहाँ तक पूवजो के विशेष विवरण का प्रश्न है, इस सबध मे नागर जी को कुछ ज्ञात नही है। जब इस तरह की बातें पूछने जाचने लायक होश सम्हला, तब बताने वाले न रह। बहरहाल, हमारा आस्पद 'याज्ञिक' है। यही हमारा कम भी रहा होगा। दूसरी बात यह कि हम 'भिक्षुक नहीं, 'गहस्थ' हैं। सुना है कि मेरे प्रपितामह माधव राम जी पहले पहल अङ्गरेज सरकार की नौकरी म नियुक्त हुये थे। मेरे पितामह प० शिवराम जी इलाहाबाद बैंक के संस्थापक कमचारियो मे भरती हुए और बाद म उन्नति करते हुये उसक शाखा-मैनेजर हुये। उन्होने मुरादाबाद, सीतापुर, लखनऊ आदि उत्तर प्रदेश क कई नगरो में बैङ्क की शाखायें स्थापित की। बङ्क ही के कारण वे शायद सन् १८९५ ई० में लखनऊ आ बसे। सन् १९०२ ई० मे लखनऊ में

वङ्क की नागर शाखा चौक में स्थापित हुई। यह जगह उन्हें ऐसी सुहाई कि फिर और कहीं जाने से इन्कार कर दिया। उन्होंने नगर में, विशेष रूप से चौक-क्षेत्र में बड़ा मान-सम्मान पाया। उन्हीं के पुण्य प्रताप की छत्रछाया में आज भी हम यहाँ छोटे बड़े सबसे नित्य प्रेम और आदर पाते हुए रहते हैं।"[1]

नागर जी के पिता का नाम पं० राजाराम जी तथा माता का नाम विद्यावती था। उनके दादा-दादी ने अनेक तरह चौदह बच्चे खोकर दो सन्तानें पाई थीं। एक पुत्री और एक पुत्र। पुत्री अर्थात् नागर जी की बुआ जी का विवाह बहुत छोटी आयु में हो गया था। फलतः पुत्र यानी नागर जी के पिता जी माता पिता की आँखों का तारा बन गए। माता पिता के अतिरिक्त मोह ने ही जैसे उनकी प्रगति रोक दी। वे शल्य चिकित्सक बनना चाहते थे। मेडिकल कालेज कलकत्ते में था और माता पिता उन्हें अपने से अलग इतनी दूर न भेजना चाहते थे। नागर जी के पिता जी ने इण्टरमीडिएट पास किया और उन दिनों यही बहुत था। उनके पिता के एक मामा पोस्ट मास्टर जनरल के दफ्तर में थे। उन्होंने उनके पिता को उसी में जबरदस्ती भरती करा दिया। इस स्थिति का वर्णन करते हुए नागर जी कहते हैं 'कलर्क बन सो बन। हाँ उनका क्रोध बढ़ गया लेकिन घर ही में। मां-बाप पर क्रोध कर नहीं सकते थे लेकिन नौकरों पर मेरी माँ या मुझ पर जोर से क्रोधित होकर घर भर को घेरा देते थे।[2] वैसे उनके पिता जी अत्यन्त लोकप्रिय, अत्यन्त मृदुभाषी हँसमुख हाजिर जवाब और बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे लखनऊ के शौकिया रङ्गमंच के उन्नायकों और अपने समय के श्रेष्ठ अभिनेताओं में थे। उस युग के प्रसिद्ध साहित्यिक और नाट्य मर्मज्ञ पं० माधव शुक्ल जी उन दिनों इलाहाबाद बैंक ही में काम करते थे। उन्हीं के निर्देशन में नागर जी के पिता जी ने अभिनय कला सीखी थी। नागर जी के पितामह सुमधुर कंठ के गायक और एक श्रेष्ठ सितारवादक भी थे। नागर जी के पिता जी पर भी अपने पिता की संगीत प्रियता का प्रभाव पड़ा। फलतः उन्होंने तबला बजाने में विशेष ख्याति अर्जित की। इसके अलावा वह एक माहिर मिस्त्री और फुटबाल के खिलाड़ी भी थे। नागर जी अपने पिता द्वारा बनाई गई एक अलार्म घड़ी का विशेष रूप से उल्लेख करते हैं जो वे नखास

१—नागर जी द्वारा दिये गये हस्ताक्षर युक्त लिखित इंटरव्यू से।
२—नागर जी द्वारा भेजे गये पत्र से।

के गुदड़ी बाजार से एक चवन्नी मे ले आये थे। उस घडी को सुधार कर उन्होने ऐसा बना दिया कि उसने नागर जी को तो आठवें दर्जे से लेकर इण्टर (प्रथम वर्ष) तक जगाया ही, उनके ज्येष्ठ पुत्र "चि० कमुद को भी उनके किंडर गार्टन स्कूल जाने पर घर मे समयानुशासन का अभ्यास कराने के लिए घनघना कर उठाया।"[1] अपने पिता जी के विषय मे और विवरण देते हुए नागर जी कहते हैं "आन्दोलन के दिनो मे मुझे और मेरी मां को चर्खा कातने का चस्का लग गया। बाहर से मेरे पिता सरकारी नौकर थे, पर घर मे वे हमारे इस उत्साह से बडे प्रसन्न होते थे। उन्होने मेरी माता के लिये स्वयं एक चरखा बनाया था। टूटी हुई हालत मे वह हल्का फुल्का चरखा मैंने अब तक अपने पास सुरक्षित रख छोडा है। हमारे लिए उन्होंने करमकोड भी बना दिया था। चित्रकला मे भी हल्की सी रुचि रखते थे। उन्होने कोई प्रहसन भी लिखा था, पर मुझे उसकी पाडुलिपि नही मिली। सन १९२७ ई० तक वे अंग्रेजी सिनेमा के बडे शौकीन थे। पढ़ने मे काव्य, उपन्यास और नाटक। लेकिन जासूसी उपन्यासो का तो उन्हे मर्ज था।[2]

परिवार –

नागर जी तीन भाई थे, उनके मझले अनुज स्वर्गीय रतनलाल नागर बडे अच्छे कमरा डाइरेक्टर थे, जिनका संबंध फिल्मो से था, और गत ४ मार्च १९६६ को एक आपरेशन के दौरान उनकी अचानक मृत्यु हो गई। अत्यन्त स्नेह से उसका उल्लेख करते हुए नागर जी कहते हैं 'बम्बई की फिल्मी दुनिया के उस्ताद कमरा डाइरक्टरो मे अपनी जगह बनाकर बडे नाम और मान के साथ इस दुनिया से विदा हो गया।'[3] इस समय नागर जी कुल दो भाई ही हैं। उनके कनिष्ठ अनुज श्री मदनलाल नागर अकादमी पुरस्कार विजेता प्रख्यात चित्रकार हैं और सम्प्रति लखनऊ के राजकीय कला महाविद्यालय मे ललित कला के अभि० प्रोफेसर हैं।

नागर जी का विवाह ३१ जनवरी सन १९३१ ई० को आगरा मे हुआ। आपकी पत्नी का नाम श्रीमती प्रतिभा नागर है। अपनी पत्नी का उल्लेख करते

१—नागर जी द्वारा भेजे गये पत्र से।

२—नागर जी द्वारा दिये गये हस्ताक्षर युक्त लिखित इन्टरव्यू से।

३—नागर जी द्वारा दिये गये हस्ताक्षर युक्त लिखित इण्टरव्यू से।

हुए नागर जी ने उन्हें अपनी 'खरी जीवन संगिनी' बनाया है। प्रतिभा जी और नागर जी के चार संतानें हैं—दो पुत्र और दो पुत्रियां। उनके बड़े पुत्र कुमुद नागर आकाशवाणी के लखनऊ केन्द्र में असि० ड्रामा प्रोड्यूसर हैं। दूसरे पुत्र शरद नागर एम० एस० सी० हैं, और सम्प्रति फार्मोकोलाजी में रिसर्च कर रहे हैं। बड़ी पुत्री अचला भी बी० एस० सी० है और विवाहिता हैं। छोटी पुत्री आरती सम्प्रति इण्टरमीजिएट में अध्ययन कर रही हैं। नागर जी के सभी पुत्र, पुत्रियां साहित्य तथा अभिनय के शौकीन हैं। कुमुद नागर ने बच्चों के लिये दो पुस्तकों का भी सृजन किया है। शरद नागर को रङ्गमंच और नाटकों से विशेष प्रेम है। अचला ने कहानी लेखन और रङ्गमंच पर अभिनय भी किया है। छोटी पुत्री आरती को भी अभिनय का विशेष शौक है। कुल मिलाकर नागर जी का सम्पूर्ण पारिवारिक वातावरण साहित्यिक है। नागर जी ने, सबको अपने साहित्यिक रंग में रंग लिया है।

यह नागर जी के परिवार का एक संक्षिप्त किन्तु रोचक इतिवृत्त है, जो नागर जी के व्यक्तित्व को समझने में दूर तक सहायक है। किसी लेखक का सबसे गहरा सम्बन्ध अपने परिवार तथा पारिवारिक जीवन से होता है और पारिवारिक जीवन की भूमिकाएं बहुत दूर तक एक रचनाकार के रूप में उसकी बनावट में अपना योग देती हैं।

पत्रकारिता –

जहाँ तक नागर जी की शिक्षा दीक्षा का प्रश्न है उसकी कोई समुचित व्यवस्था न हो सकी। वे केवल इंटर तक ही पढ़ सके। पिता जी की आकस्मिक मृत्यु हो जाने के कारण युवावस्था में ही नागर जी को संघर्षों से जूझना पड़ा। सर्वप्रथम उन्होंने सन् १९३५ में एक बीमा कंपनी में डिस्पैचर के पद पर कार्य किया परन्तु अपनी स्वतन्त्र तथा उन्मुक्त प्रकृति के कारण अफसर से न बन सकी और अठारहवें दिन ही इस नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इसके पश्चात उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् १९३८ में 'यूथ्स यूनियन क्लब'—चौक से पहली बार द्वमासिक पत्रिका 'सुनीति' का सम्पादन किया। इसके बाद सन् १९३५ ३६ में 'सिनेमा समाचार' नामक एक पाक्षिक पत्रिका का संपादन किया। सन् १९३७ मे उन्होंने साप्ताहिक 'चकल्लस' नामक एक हास्य पत्रिका भी निकाली। 'चकल्लस' अपने समय की एक लोकप्रिय पत्रिका थी। 'हिन्दी टाइम्स' के भूतपूर्व संपादक स्व० श्री

नरोत्तम नागर भी उन दिनो नागर जी के साथ थे। 'चकल्लस' के विषय में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने नागर जी को यह सम्मति भेजी थी—"चकल्लस का आठवा अक देखकर मेरा मुर्दादिल भी जिन्दा सा हो उठा। इस अक मे हास्य रस प्रधान कितने ही लेख बड़े मार्के के हैं। कवितायें भी उसी रस मे सराबोर हैं। राजनीति और साहित्य भी उसी रस मे रसिया बना डाले गये हैं। ऐसे चित्र भी अनेक हैं जो विनोद-वाटिका के खूब दर्शन कराते हैं।"[१] परन्तु उस समय के अंग्रेजी शासन और पूँजीवादी व्यवस्था मे पत्रिका निकालना उतना ही कठिन था, जितना उसका चलाना था। प्रेमचन्द और बनारसी दास चतुर्वेदी जैसे साहित्यकार उस यथार्थ को भोग भी चुके थे। नागर जी के सम्मुख भी ऐसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, परिणाम स्वरूप दो वर्षो बाद नागर जी को भी 'चकल्लस का प्रकाशन बंद करना पड़ा। इसके बाद सन् १९४५ मे 'नया साहित्य' और सन १९५३ में मासिक पत्र प्रसाद' का सपादन भी किया। परन्तु समग्रत नागर जी की पत्रकारिता असफल ही रही।

फिल्म का जीवन —

सन १९४० मे नागर जी ने फिल्मी दुनिया मे पदार्पण किया। असफल पत्रकारिता के कारण जब उन्होंने स्वतन्त्र रूप से लेखनी चलाकर जीवन यापन करना बहुत मुश्किल समझा तो प्रेमचन्द, उग्र सुदर्शन आदि साहित्यकारों की भाँति वे भी फिल्मी क्षेत्र मे कार्य करने हेतु बम्बई गये। सन १९४० से १९४७ तक नागर जी का जीवन फिल्मी दुनिया से सम्बन्ध रखता है। उस क्षेत्र में सर्वप्रथम उनका सम्पर्क आज के दो प्रसिद्ध निर्माता निर्देशकों, श्री किशोर साहू और महेश कौल से हुआ। परन्तु यह फिल्मी जीवन नागर जी को पूर्ण रूप से प्रभावित न कर सका। यह उनकी रुचि के प्रतिकूल भी था। यहा उनको ऐसा लगा कि उनकी स्वच्छद प्रतिभा का पूर्णरूप से विकास नही हो सकता। दूसरे, उस समय के फिल्मी वातावरण ने उनके हृदय में घृणा भी उत्पन्न की। उस समय के फिल्मी जगत मे फैले अनाचार तथा अवगुणो का उल्लेख करते हुये नागर जी लिखते हैं "सन् ४० मे मेरे फिल्म क्षेत्र में प्रवेश करने का समय युग सधि का था। पुरानी थिएटिकल कम्पनियों के अभिनेता,—

१— सीमान्त प्रहरी १५ अगस्त १९६६ (अमृतलाल नागर अक) सम्मतियाँ एव सदेश।

बाजारू गानेवालियां और लेखक मुंशी तक बहुतायत में थे। और आम तौर पर शोहदापन अधिक था लेकिन मुंशीगण सेठों के मुसाहिब थे। कहानियाँ धूम धड़ाके और मारपीट की ही बना करती थीं। भोंडापन और भोग विलास की ही धूम थी। कुछ स्टूडिओज में सेठों ने अपने लिए विलास कक्ष भी बना रखे थे। प्रेमचन्द जी निराश होकर लौट गये। 'उग्र' जैसे-तैसे निभाकर लौट आये थे। सुदर्शन अलबत्ता जमे हुये थे और उन दिनों बम्बई में ही थे। कविवर प्रदीप जी ने नयी नयी चमक पायी थी। पढ़े लिखे सुसंस्कृत अभिनेताओं टक्नीशियनों और लेखकों की बढ़ती भीड़ के कारण पुराने लोगों में जलन और खुड़पेंच का माद्दा पैदा हो गया था।'[१] इसी क्षेत्र में एक बात और नागर जी को अपनी रुचि के प्रतिकूल दिखाई पड़ी, वह थी फिल्मी लोगों द्वारा की जाने वाली कहानी की छीछालेदर जिसने नागर जी के कहानीकार रूप को तड़पा दिया। इस तड़प को व्यक्त करते हुये नागर जी कहते हैं—"मेरे समय से लेकर अब तक फिल्म व्यवसाय में कहानी की समझ रखने वाले लोग प्रायः नहीं के बराबर हैं। यह हमारे देश के फिल्म व्यवसाय का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। अभिनय की बारीकियों को समझने वाले लोग भी बहुत कम हैं, और इसी का परिणाम है कि हमारे फिल्म हमारे जीवन से दूर हो गये हैं। गरीबों की समस्याएं इतिहास, पुराण आदि सब विटामिन फिल्मों में डाले जाते हैं पर सब इस नुस्खे की भट्टी पर सेंक-सेंक कर नष्ट किये जाते हैं। उनका सत्य निकल जाता है। नतीजा यह हुआ कि फिल्म में कहानी-कला अपना रसानुपात और संतुलन—यहाँ तक कि अपना रूप भी खो बैठती है। फिल्मों से गीत बनते हैं स्टार बनते हैं, फकत कहानी नहीं बनती। हमें यह कदापि नहीं भूलना चाहिये कि चाहे उपन्यास हो या रंगमंच, रेडियो अथवा फिल्मी नाटक, सबका आधार कहानी है।'[२] इन्हीं कटु अनुभवों ने नागर जी जैसे प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध कलाकार को विक्षुब्ध किया और सन १९४७ में उन्होंने फिल्मी जगत से संन्यास ले लिया। इसका उल्लेख नागर जी अत्यंत रोचक शब्दों में करते हैं—' १४ अगस्त १९४७, आजादी की पहली रात कविवर श्री नरेन्द्र शर्मा के साथ बम्बई की सड़कों में नया जोश निहारते हुये यह तय किया कि अब बालू पर लकीरें नहीं बनाऊंगा। गांधीवादी आदर्श में चलती दुकान बढ़ा दी और ३ अक्टूबर १९४७ को उत्तर

१— सीमान्त प्रहरी, १५ अगस्त १९६६—पृ० १०।
२— वही—पृ० १२-१३।

प्रदेश में फिर आकर जम गया।"[1] फिर भी नागर जी को फिल्म क्षेत्र में काफी सफलता तथा यश प्राप्त हुआ। फिल्मी-जीवन के इन सात वर्षों में लगभग २०-२१ फिल्में उनके नाम से आईं। कई फिल्मों में उन्होंने कहानियां भी लिखी और सिनेरियो सवाद भी लिखे। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा का कथन है-"वे हिंदी के बहुत प्रसिद्ध उपन्यासकार तो हैं ही, उन्होंने फिल्म जगत में पटकथायें लिखने का भी बड़ी कुशलता के साथ काम किया है। एक बात बहुत कम लोग उनके बारे में जानते होंगे कि भारतीय फिल्मों में डबिंग कला का प्रारम्भ इन्हीं ने किया है और ऐसी कुशलता के साथ किया है कि लोग आश्चर्य करते हैं।'[2] फिल्मी क्षेत्र में अपनी सफलता और अपने योगदान के बारे में नागर जी स्वयं कहते हैं—"जहां तक मेरा अनुमान है (बिना किसी प्रकार की नकशेबाजी दिखलाये हुए ही मैं यह कह सकता हूँ) कि भारतीय फिल्मी लेखकों में डबिंग का कार्य सिद्ध करने वाला मैं पहला ही व्यक्ति था। मुझ से पहले 'सोवियत फिल्म डिस्ट्रीब्यूटर्स' नामक एक तत्कालीन संस्था द्वारा लेखक प्रेरित होकर भी सफलता प्राप्त न कर पाये थे। यह अटपटा काम था। सोवियत फिल्म 'नासिरुद्दीन इन बुखारा' नामक चित्र मुझे इस कार्य के लिए मिला। मैंने उसमें सफलता पायी। उक्त चित्र से, दूसरे रूसी चित्र 'जोया' में मुझे अधिक सफलता मिली। भारत कोकिला श्रीमती एम० एस० शुभ लक्ष्मी जी के तमिल फिल्म 'मीरा' का हिन्दीकरण करने में सर्वाधिक सफलता सिद्ध की। कविवर नरेन्द्र जी ने इस चित्र में और कमाल किया। उनके कई गीत स्थलों पर डबिंग शास्त्र का प्रयोग सरस रूपेण किया मैंने।"[3] इस प्रकार अपने फिल्मी जीवन में नागर जी पूर्णतः सफल रहे।

'आकाशवाणी' का जीवन—

सन १९४७ में नागर जी बम्बई से फिल्म क्षेत्र छोड़कर स्वतंत्र लेखन का संकल्प लेकर लखनऊ वापस आये और इसी क्रम में बंगाल के भीषण अकाल की पृष्ठभूमि पर उन्होंने 'महाकाल' उपन्यास लिखा, जो उपन्यास क्षेत्र में उनका प्रथम प्रयास है। किन्तु आगे चलकर आर्थिक परेशानियों ने उन्हें स्वतन्त्र रूप से लेखन कार्य नहीं करने दिया। फलस्वरूप उन्होंने सन् १९५३

१— नागर जी द्वारा दिये गए हस्ताक्षर युक्त लिखित इंटरव्यू से।
२— सीमांत प्रहरी, अमृतलाल नागर अंक – पृ० (आ)।
३— " " " – पृ० १२।

में भारत सरकार के रेडियो विभाग में दूसरी नौकरी स्वीकार की और उन्हें ड्रामा प्रोड्यूसर का पद प्राप्त हुआ। यहां नागर जी को छोटे बड़े सभी के द्वारा आदर व सम्मान मिला। इस पद पर काय करने के साथ ही साथ नागर जी रचनात्मक काय की ओर भी क्रियाशील रहे। सन् १९५५ में उन्होंने अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'बूंद और समुद्र' पूर्ण किया। इसी बीच रेडियो विभाग के समक्ष कुछ नई योजनाएं आईं जिसके फलस्वरूप नागर जी की साहित्य रचना की भूमि पर कुछ अड़चनें उत्पन्न हुईं, और जिन्होंने नागर जी में मानसिक ऊहापोह को जन्म दिया। एक ओर उनका व्यावसायिक रूप और दूसरी ओर उनका एक साहित्यिक रचनाकार का रूप। नागर जी के इन दोनों रूपों के द्वन्द्व में उनका रचनाकार रूप ही विजयी हुआ। उसके बारे में नागर जी लिखते हैं—'साहित्य लेखन का काय भी एक काय है, और साहित्यिक अपने लिये समय और लगन मांगता है। मैं जब तक यह नहीं भूल सकता कि मैं लेखक हूं, तब तक उसके लिये लगन भी नहीं छोड़ सकता। लेखक बनकर कोई फिल्मी लेखन रेडियो लेखन अथवा विज्ञापन लेखन भले ही रोटी कमाने के लिये अपना ले पर उससे मन का काम करने का भरा पूरा संतोष तो हरगिज प्राप्त नहीं कर सकता। चूंकि स्वयं अपनी ही नजरों में बहुत बेईमान नहीं बन सकता इसलिये साहित्य लेखन का काय स्वाभाविक रूप से अपने लिये उनसे प्रथम महत्व की मांग करता है। जब तक मन मुख्यतः उसमें ही फंसा रहता है तब तक तो मन से समझौता कर उससे समय निकाल कर आर्थिक कमाई के लिये किसी दूसरे माध्यम की शरण ले लेना मुझे बुरा नहीं लगता। परन्तु साहित्यिक काय से लम्बे अरसे के लिये परे हट कर कोरे टके कमाना मुझे अपने लिये विशुद्ध बेईमानी प्रतीत होती है।'[१] और अन्तत उन्होंने अपने लेखन काय में बाधा उत्पन्न करने वाले इस कांटे को भी हटा दिया। सन १९५६ में उन्होंने रेडियो विभाग की नौकरी से भी इस्तीफा दे दिया। यहां भी अफसरों के व्यवहार से नागर जी को जो कुछ कटु अनुभव प्राप्त हुए उनका उल्लेख करते हुए वे कहते हैं डायरेक्टर जनरल महोदय ने हमें यह उपदेश भी दिया था कि हम अफसरों का समय नष्ट न किया करें क्योंकि उनका समय कीमती होता है। यह बात मुझे व्यक्तिगत रूप से चुभी। समय केवल इन्हीं का कीमती है हमारा नहीं? हम क्या निठल्ले हैं? साहित्यिकों को रेडियो में भरती करते

१– [illegible]

समय अप्सरा को यह भी ध्यान में रखना चाहिये था कि लेखक भाव और विचार जगत का प्राणी होता है, वह मशीन के पुर्जे का तरह एक मिनट में सौ तस्वीरें भले ही न निकाल सके, मगर भाव या विचार का एक न एक चित्र उतारने म उसका मन भी हरदम गुजा रहता है। इसलिए 'स्वराज' के काल साहबों की नौकरी छोड दी।"[१] सन १९५६ से एक स्वतन्त्र लेखक के रूप मे नागर जी का जीवन शुरू होता है जो उन्हें निरन्तर सफलता और उन्नति की सीढियो पर चढाता हुआ अब तक क्रियाशील है।

लेखकीय प्रेरणा के स्रोत –

प्रत्येक साहित्यकार की रचना प्रक्रिया के पीछे कतिपय विशिष्ट प्रेरणाए भी होती हैं जिनसे प्रेरित हो वह साहित्य सजन करता है। नागर जी के लेखक रूप के पार्श्व मे भी कतिपय विशिष्ट प्रेरणाए है, जिन्होने उनको आज के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार का रूप दिया। शुरू से ही नागर जी की रुचि साहित्य की ओर थी। तरह वर्ष की आयु मे ही उन्होने लिखना शुरू कर दिया था। यद्यपि नागर जी के बाबा उन्हें जज बनाना चाहते थे किन्तु नागर जी के चारो ओर फले साहित्यिक वातावरण ने उन्ह जज न बनने दिया। बचपन से ही नागर जी को पत्र पत्रिकाए पढने का शौक था। उनके घर म 'सरस्वती' 'गृहलक्ष्मी' तथा कलकत्ते से प्रकाशित होने वाली 'हिन्दू पंच' आदि पत्रिकाए नियमित रूप स आती थी, जिन्हे नागर जी बडे चाव से पढते थे। प्रसिद्ध हास्य व्यग्य के लेखक श्री शिवनाथ जी उनके पडोसी थे और नागर जी स उनका अच्छा सम्पर्क भी था। प० माधव शुक्ल डा० श्यामसुन्दर दास तथा उर्दू शायर पण्डित बृजनारायण 'चकबस्त' आदि विद्वानो का उनके यहाँ उठना बठना था। इन विद्वानो न नागर जी के बाल हृदय मे अपना पूर्ण प्रभाव जमा लिया था। कदाचित उन्ही के सम्पर्क ने ही उन्हे लेखक बनने की प्ररणा दी हो। बस लेखन क क्षेत्र म प्रविष्ट होने का उल्लेख करत हुये नागर जी लिखत हैं–"सन १९२८ मे इतिहास प्रसिद्ध साइमन-कमीशन', दौरा करता हुआ लखनऊ नगर भी आया था। उसके विरोध में यहाँ एक बहुत बडा जुलूस निकला था। प० जवाहरलाल नेहरू और प० गोविन्द वल्लभ पत उस जुलूस के अगुवा थे। लडकाई उमर क जोश म

१– सीमान प्रहरी अमृतलाल नागर अक–पृ० २०।

मैं भी उस जुलूस में शामिल हुआ। जुलूस मील डेढ़ मील लम्बा था। उसकी अगली पंक्ति पर जब पुलिस की लाठियां बरसीं तो भीड़ का रेला पीछे की ओर सरकने लगा। उधर पीछे से भीड़ का रेला आगे की ओर बढ़ रहा था। मुझे अच्छी तरह से याद है कि दो चक्की के पाटों में पिसकर मेरा दम घुटने लगा था। मेरे पैर जमीन से उखड़ गये थे। दायें, बायें आगे-पीछे चारों ओर की उन्मत्त भीड़ टक्करों पर टक्करें देती थी। उस दिन घर लौटने पर मानसिक उत्तेजनावश पहली तुकबन्दी फूटी। अब उसकी एक ही पंक्ति याद है—'कब लौं कहौ लाठी खाया करें कब लौं कहौ जेल सहा करिये।' वह कविता तीसरे दिन दैनिक आनन्द में छप गई। ... उस मैं लेखक बन गया। मेरा ख्याल है दो तीन प्रारम्भिक तुकबन्दियों के बाद ही मेरा रुझान गद्य की ओर गया कहानियां लिखने लगा।[१] उस समय प० रूप नारायण पाण्डेय कविराज नागर जी के पड़ोसी थे जिन्होंने उन्हें कहानी लेखन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां दीं। सन १९२९ में नागर जी का परिचय निराला जी से हुआ जिसका नागर जी पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। धीरे धीरे उनके सम्बन्ध प्रगाढ़ होते गये। इन्हीं दिनों नागर जी का सम्बन्ध श्री दुलारे लाल भार्गव और रावराजा प० श्यामबिहारी मिश्र से हुआ जिनसे नागर जी को प्रोत्साहन भी मिला। पण्डित श्यामबिहारी मिश्र द्वारा कहे गये इन शब्दों ने, कि साहित्य को टके कमाने का साधन कभी नहीं बनाना चाहिये नागर जी के मन पर बड़ी गहरी छाप छोड़ी। नागर जी मिश्र बन्धुओं के व्यक्तित्व से भी अत्यन्त प्रभावित हुए। उसका उल्लेख करते हुये वे कहते हैं—' मिश्र बन्धु बड़े आदमी थे, तीनों भाई एक साथ लखनऊ में रहते भी थे। तीन चार बार उनकी कोठी पर भी दर्शनार्थ गया था। अन्दर वाले बैठक में एक तख्त पर तीन मसनदें और लकड़ी के तीन कैश बाक्स रखे रहते थे। मसनदों के सहारे बैठे उन तीन साहित्यिक पुरुषों की छवि आज तक मेरे मानस पटल पर ज्यों की त्यों अंकित है।'[२] इन विशिष्ट साहित्यकारों का सम्पर्क नागर जी के मन में लेखन की गहरी प्रेरणाएं जगा चुका था। सन १९२९-३० ई० तक नागर जी ने पूर्णरूप से लेखक बनने का संकल्प भी कर लिया। इसी संकल्पवश उनकी जिज्ञासा उस समय के अन्य बड़े साहित्यकारों के दर्शन की ओर हुई और इसके लिये उन्होंने काशी, कलकत्ता आदि शहरों का भ्रमण करना भी शुरू किया। अपने इस भ्रमण क्रम में उनकी भेंट प्रसाद

१— नीर क्षीर अमृतलाल नागर अक्टूबर-अगस्त १९६६—पृ० ८।
२— वही पृ० ९।

तथा शरत बाबू से हुई। प्रारम्भ काल से ही नागर जी को शरतबाबू से एक विशेष किस्म का लगाव था। उनके उपन्यासो के भी वे बेहद शौकीन थे। इसका उल्लेख करते हुए नागर जी लिखते हैं–"स्कूल जीवन मे, जबसे उपन्यास और कहानिया पढने का शौक हुआ, मैंने उनकी कई पुस्तकें पढ डाली। एक एक पुस्तक को कई कई बार पढ़ा और आज जब उपन्यास अथवा कहानी पढना मेरे लिये केवल मनोरजन का साधन ही नही वरन अध्ययन का प्रधान विषय हो गया है, तब भी मैं उनकी रचनाओ को अक्सर बार बार पढता हूँ। उनकी रचनाओ को मूल भाषा मे पढने के लिये ही मैंने बगला सीखी। सचमुच ही, मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ हूँ।"[१] शरत बाबू से हुए अपने परिचय के बारे में वे लिखते हैं, "उनके दर्शन करने मैं कलकत्ते गया। परिचय होने के बाद, दूसरे दिन जब मैं उनसे मिलने गया, मुझे ऐसा मालूम पडा जैसे हम वर्षो से एक दूसरे को बहुत अच्छी तरह से जानते हैं।"[२]

कठिनाइया –

लेखक के रूप मे सन् १९३० से १९३३ तक नागर जी का जीवन अत्यन्त सघर्षशील रहा। वे कहानिया लिखते, परन्तु वे कही प्रकाशित न होती थी। और इस निराशा ने नागर जी को एक हद तक काफी चिडचिडा भी बना दिया था। इस स्थिति का जिक्र करते हुए नागर जी लिखते हैं— "कहानियाँ लिखता, गुरुजनो से पास भी करा लेता परन्तु जहा कही उन्हे छपने भेजता, वे गुम हो जाती थी। रचना भेजने के बाद मैं दौड दौडकर पत्र पत्रिकाओ के स्टॉल पर बडी आतुरता के साथ यह देखने को जाता था कि मेरी रचना छपी है या नही, हर बार निराशा ही हाथ लगती। मुझे बडा दुख होता था, उसकी प्रतिक्रिया में कुछ महीनो तक मेरे जी मे ऐसी सनक समाई कि लिखता, सुधारता, सुनाता और फिर फाड डालता।"[३] सन १९३३ मे नागर जी की सर्व प्रथम कहानी छपी। उसके पश्चात नागर जी को कई पत्र पत्रिकाओ द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और फिर उनकी कहानिया बराबर प्रकाशित होती रही। १९३५ मे नागर जी का 'वाटिका' नामक एक कहानी सग्रह भी प्रका-

---

१—सीमात प्रहरी, अमृतलाल नागर अङ्क–पृ० ५।

२—वही।

३—नीर क्षीर–अमृतलाल नागर अङ्क–पृ० १०।

शित हुआ। मुंशी प्रेमचन्द ने इस संग्रह का जिक्र करते हुए एक पत्र में उन्हें लिखा था-"यह तो गद्य काव्य की सी चीजें हैं। मैं (realistic) कहानियां चाहता हूं जिनका आधार जीवन पर हो, जिनसे जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ सके। मैंने वाटिका के दो चार फूल सूंघे। अच्छी खुशबू है।'[१] इसी काल में सन् १९३५ से ३७ तक नागर जी ने कुछ विदेशी रचनाओं का अनुवाद भी किया, जिनमें 'गुस्ताव फ्लाबेयर के एक उपन्यास मादाम बावरी' का हिन्दी अनुवाद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये अनुवाद कार्य नागर जी ने छपवाने या धन कमाने के लालच में नहीं किये बल्कि इनके द्वारा उनका उद्देश्य ज्ञान संचय करना था। इसका उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं—'यह अनुवाद कार्य में छपाने की नियत से उतना नहीं करता था, जितना कि हाथ साधने की नियत से। अनुवाद करते हुए मुझे उपयुक्त हिन्दी शब्दों की खोज करनी पड़ती थी, इससे मेरा शब्द भण्डार बढ़ा। वाक्यों की गठन भी पहले से अधिक निखरी।[२]

नागर जी के लेखक के पीछे ये ही प्रेरणाएं रही हैं जिन्होंने उनको आज के एक श्रेष्ठ साहित्यकार के पद का अधिकारी बनाया है। इतना ही नहीं उन्हें एक ऐसा प्राणवान लेखक रूप दिया है जिसके द्वारा आज वे स्वतन्त्र रूप से लेखन द्वारा ही अपना जीवन यापन कर रहे हैं। आज की विषम युग परिस्थितियों में एक स्वतन्त्र लेखक के सामने यद्यपि अनेक कठिनाइयां तथा परेशानियां हैं फिर भी नागर जी एक आस्थावान लेखक के रूप में इस अंधकार में उतर पड़े हैं। उनका रचनाकार रूप 'लगन' में विश्वास करता है और यह लगन उनमें है।

आज नागर जी की लेखनी से जितना कुछ भी प्रकाश में आया है "वह एक आइसबर्ग के समान है। जितना दृष्टि पथ में है, उससे कई गुना पथ से बाहर।"[३] आस्था की ज्योति लौ के प्रकाश में नागर जी की लेखनी आज भी पूरी तरह सक्रिय है। १९६६ में प्रकाशित अपने वृहत उपन्यास अमृत और विष के अतिरिक्त इस समय उनकी योजना ऐतिहासिक-पौराणिक सन्दर्भों को लेकर एक नई वृहत कृति के प्रणयन की है। सम्प्रति वे अपनी इसी योजना

१—नीर-क्षीर,'सम्मतियां एवं सन्देश।

२—वही पृ०-११।

३—नीर क्षीर-(अमृतलाल नागर अंक) में श्री ज्ञानचन्द जैन का लेख-पृ ४७

की पूर्ति के लिए सामग्री एकत्र करने मे प्रयत्नशील हैं। विश्वास किया जा सकता है कि 'एकदा नैमिषारण्ये' शीर्षक उनकी यह कृति भी उनके सजग तथा सशक्त लेखन की नई कड़ी बनेगी।

अन्य रुचिया —

नागर जी की रुचियो का क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक है। वे केवल उपन्यासकार अथवा कहानी लेखक ही नही है वरन इतिहास तथा पुरातत्व के भी ममज्ञ हैं। इतिहास के क्षेत्र मे अवध के इतिहास से उनकी विशेष रुचि है, और जैसा कि डा० राम विलास शर्मा का कथन है, अवध के इतिहास के बारे म वे इतिहासकारों से भी अधिक जानते है। अवध के इतिहास के अतिरिक्त भारत म अग्रेजो के आगमन और प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम (१८५८) पर भी उन्होंने काफी खोज बीन की है। इस सम्बन्ध मे उन्होने 'गदर के फूल' नाम से एक पुस्तक भी लिखी है, जिसमे गदर के बारे म अनेक अनुपलब्ध तथा प्रमाणिक तथ्य दिये गये हैं। पुरातत्व के प्रति भी नागर जी की अपार दिलचस्पी है और उन्होने पुरातत्व सबधी बहुत सी अनुपलब्ध सामग्री भी एकत्र की है। एक छोटा मोटा सग्रहालय ही उन्होने अपने घर मे स्थापित किया है। पुरातत्व के विषय म अपनी रुचि के बारे म लिखते हुये वे कहते हैं पुरातत्व से सीधा लगाव सन् १९५६ मे अपने घर से पास ही लक्ष्मण टीले म मौर्य काल तथा उससे भी कुछ पहले की वस्तुयें पाकर हुआ।"[१] वैसे वो यह भी मानते हैं कि इतिहास, पुराण और साहित्य वस्तुत बचपन से ही उनके साथ लगे रहे हैं। अपने 'बूद और समुद्र उपन्यास म उन्होने अपनी पुरातत्व सम्बन्धी जानकारी का परिचय भी प्रस्तुत किया है।

इतिहास तथा पुरातत्व के अतिरिक्त सगीत और रगमच पर भी उनकी पर्याप्त दिलचस्पी है। उन्होंने लखनऊ मे अनेक नाटको का सफल निर्देशन भी किया है। जब इतिहास, पुरातत्व तथा रगमच से ऊबे, तो एक समाज शास्त्री या विचारक के रूप में लोगो के बीच घूमना और उनसे भाति भाति के अनुभवो को एकत्र करना उन्हे प्रिय लगता है। उन्होने वेश्याओ के जीवन की भी कुछ अतरग झाकिया अपनी 'ये कोठेवालिया पुस्तक में दी हैं। जो वस्तुत वेश्याओ से लिये गये उनके 'इण्टरव्यू से सम्बन्धित हैं। अपनी

१— नागर जी द्वारा लिये गये हस्ताक्षर युक्त लिखित इण्टरव्यू से।

इन रुचियों के बारे में लिखा हुये वे स्वयं कहते हैं 'लिखने-पढ़ने के समय तो बात ही न्यारी है, यों भी चाहे बच्चों के साथ खेलूं या नाटकों की रिहर्सल कराऊं, चाहे पुरातत्व की खोज में टीला-खण्डहर झांकूं या गली-कूचा में बड़ी बूढ़ियों से बूढ़ा तजुर्बेकारों से इण्टरव्यू लेता घूमूं, कमोवेश हर काम में अपना प्राण स्पर्श कराने का अब अभ्यस्त हो गया हूं। इसी की मस्ती है, बदमस्ती तनिक भी नहीं।'[१] कहने की आवश्यकता नहीं कि नागर जी की इन रुचियों और उनके माध्यम से पाये गये अनुभवों ने उनके साहित्य को न केवल सम्पन्न बनाया है उसे जीवन के अधिक निकट ला दिया है।

व्यक्तित्व का समग्र आकलन —

मानव जीवन की इन व्यापक भूमियों को समेटने वाला नागर जी का व्यक्तित्व सच पूछा जाय तो, एक उन्मुक्त और जीवन्त कथा लेखक का व्यक्तित्व है। उनका व्यक्तित्व उन्मुक्त इस अर्थ में है कि सामान्यतः वह दकियानूसी और आभिजात्य उनमें नहीं है जो उन्हीं के समानधर्मी हिन्दी के कुछ प्रसिद्धि प्राप्त लेखकों में पाया जाता है। वे जैसा जो कुछ हैं अत्यन्त सहज और स्पष्ट हैं। उनमें प्रदर्शन की प्रवृत्ति नहीं है। अपने बारे में वे खुद कहते हैं 'सब मिलाकर या तो मैं खुशरंग हूं पर अपने बदरङ्ग भी नजर आते हैं। मैं पत्थर पर उकेरी गई ऐसी मूर्ति हूँ जो कहीं कहीं अनगढ़ टूट गई हो, ऐसी कि बुरी न लगे देखते ही किसी को भी विश्वास हो जायेगा कि आदमी भला और शरीफ है। लेकिन आइने के सामने जो मुख देखा आपना मुझ सा बुरा न कोय।'[२]

अपने बारे में ऐसी स्वीकारोक्ति वही कर सकता है जो खुले हुये मन का व्यक्ति हो।

नागर जी चूंकि बहुत ही उन्मुक्त स्वभाव वाले लेखक हैं यही कारण है कि उन्हें जो कुछ कहना है उसे कहने में चूकते नहीं और जहां मौन रहना है वहां अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करते। उन्होंने सजगता पूर्वक अपने को अतिवादों से बचाने की चेष्टा की है—रुचियों के स्तर पर भी और विचारों के स्तर पर भी। वे उन लेखकों में हैं जो एक साथ परम्परावादी भी हैं और आधुनिक भी। परम्परावादी इस अर्थ में कि वे अपने देश के गौरवमय अतीत

१—नीर क्षीर-अमृतलाल नागर अंक-पृ० ५।
२— नीर क्षीर-अमृतलाल नागर अंक- पृ० ५ ।

तथा उस अतीत की जीवन्त उपलब्धियों के प्रति आस्थावान हैं, आधुनिक इस अर्थ में कि नये जीवन की वैज्ञानिक भूमिकाओं को भी उन्होंने उतनी ही आत्मीयता से अपनाया है। इस भूमिका पर, वस्तुत वे परम्परा तथा आधुनिकता दोनों की ही अतिवादी भूमियों को छोड़ते हुए उनमें एक प्रकार का सामंजस्य स्थापित करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस संतुलित दृष्टिकोण ने उनकी वैचारिक भूमिका को सशक्त बनाया है।—अपनी इस संतुलित वैचारिक भूमिका को स्पष्ट करते हुये एक स्थल पर उन्होंने लिखा है "अहिंसा धर्मी हूँ। मार्क्सवादी साहित्य का भी गहरा प्रभाव है। उसने एक जगह मेरे अहिंसा धर्म, या यह कि मानव धर्म को, पाश्चात्य दृष्टि से परिपुष्ट किया है।"[1] परम्परा तथा आधुनिकता के जीवन्त तत्वों का यह संतुलन ही है जिसने नागर जी को जितनी गहरी राष्ट्रीय चेतना दी है, उतनी ही प्रशस्त अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि भी। उसने यदि उन्हें अपने को आस्तिक घोषित करने की प्रेरणा दी है, तो मनुष्य को ही अपना ईश्वर और मानव धर्म को ही अपना एक मात्र धर्म कहने का बल भी प्रदान किया है।

नागर जी का साहित्यकार व्यक्तित्व एक जनवादी व्यक्तित्व है। उनके लेखन की जड़ें जन जीवन के बीच गहराई से जमी हुई हैं। उन्हें जन जीवन की सूक्ष्मतम भूमिकाओं की पहचान है। उसके सुख दुख, हर्ष विषाद, आशाओं आकांक्षाओं तथा शक्ति और संकल्प को उन्होंने नजदीक से देखा सुना है। लोक जीवन से नागर जी के इस तादात्म्य ने उनके लेखन को निखार कर प्रस्तुत किया है।

नागर जी वस्तुतः एक विचारक लेखक हैं। उनके रचनात्मक-साहित्यकार से उनका विचारक एक क्षण के लिए भी अलग नहीं हुआ है। विचार की इस भूमिका में ही उन्होंने वर्तमान सामाजिक अराजकता का विश्लेषण किया है और निष्कर्ष रूप में व्यक्ति और समाज के बीच असंतुलन के प्रश्न को उठाया और उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। 'बूंद और समुद्र' वस्तुत इस समाधान का ही एक ज्वलंत उदाहरण है।

नागर जी का लेखक व्यक्तित्व एक आत्म सम्मानी, ईमानदार लेखक का व्यक्तित्व है जिसने लेखन को सदैव एक साधना के रूप में ग्रहण किया

१— नीर क्षीर – अमृतलाल नागर अंक–पृ० १२।

है। इस तथ्य का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि आधुनिक जीवन की विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने स्वतन्त्र लेखन का व्रत अपनाया और आत्म सम्मान तथा निष्ठापूर्वक उसका निर्वाह किया। ऐसा नहीं है कि जीवन की विषम परिस्थितियों का उन पर प्रभाव न पड़ा हो अथवा वे उन खतरों से अपरिचित हों, जो आज की पूंजीवादी समाज व्यवस्था में एक ईमानदार और निष्ठावान लेखक के साथ लगे ही रहते हैं, वस्तुतः सब कुछ जानसमझ कर ही उन्होंने एक स्वतन्त्र लेखक की नियति का वरण किया है। इसे उनकी ईमानदारी ही माना जायगा कि वे विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष के क्रम में न टूटते हुए एक ओर आत्मसम्मान पूर्वक जी रहे हैं और दूसरी ओर अपने लेखन के साहित्यिक स्तर को भी सुरक्षित रख सके हैं। डा० रामविलास शर्मा को पत्र लिखते हुए एक बार उन्होंने कहा था "तुम्हारी कसम हम इस समय हाफ हाफ कर जी रहे हैं। उसे ही बटोर कर एनर्जी बनाते हैं बड़ा महंगाई है हमें महाकाल याद आ रहा है उसके चित्र धारा ओर डाल रहे हैं।' [१] परन्तु जीवन की ये परिस्थितियाँ उन्हें तोड़ नहीं पाता इतना अवश्य है कि उनकी गति को कुछ मन्द जरूर कर देती हैं— 'अब इस अनिश्चित जीवन को लेकर कहीं थक गया हूं काम उतना नहीं कर पाता जितना कि करना चाहता हूं। बहुत सोचना पड़ता है।' [२]

नागर जी की उपर्युक्त स्वीकारोक्तियां उनके संघर्षशील जीवन का स्पष्ट परिचय देती हैं और साथ ही उनकी आस्था का भी। अपने एक लेख में उन्होंने यहाँ तक लिखा था— अब तो यह जानता हूं कि आत्म हत्या कर नहीं सकता इसलिये नियत आयु तक जीना है। काम न करूं तो जिऊं कैसे? [३] विषम परिस्थितियों से संघर्ष और अप्रतिहत जिजीविषा, नागर जी के ईमानदार और निष्ठावान लेखक व्यक्तित्व की प्रधान विशेषतायें हैं। आधुनिक समाज में स्वतन्त्र लेखक की मुसीबतों का जिक्र करते हुए वे कहते हैं "मुसीबतों का भला क्या पूछना। या तो रोजी रोटी के लिये बेसाख्ता कलम घिसाई की जाय मगर वह लेखन-हमेशा ऊँचे स्तर का नहीं हो सकता। रिस्क अवश्य है। यदि मेरे पास पुरखों की कुछ पूंजी और अपनी फिल्मी कमाई की पूंजी

१— नीर क्षीर— अमृतलाल नागर अंक— पृ० ३४।
२— वही।
३— वही— पृ० ३५।

अपने स्वतन्त्र लेखक का पोसने के लिये न होती तो अब तक मेरा घर चौपट हो चुका होता और मैं शायद पागल हो चुका होता।"[१] वस्तुत उन्होंने जिंदगी मे इतना भोगा है कि अब जीवन की असफलताएँ उन्हें उतना निराश नहीं करती। इसे ही उन्होंने यो स्पष्ट किया है–"मैं उस चींटी की तरह हूँ जो बार बार गिरने के बावजूद चढती है। हार जीत की बाजी प्राणो को उमग देकर लडाती तो है, पर हार अब उतना निराश नही करती। दद का हद से गुजरना है दवा हो जाना, यह उक्ति सच्ची है।[२]

महत्वाकाक्षायें नागर जी म भी हैं। वे कहते हैं "महत्वाकाक्षाओ की लाली भी मुझमे चमकती है। धनी बनने की लालसा है पर धन कमाने की महत्वाकाक्षा नही। यश और आदर का सदा से भूखा रहा। नाम की लगन पा लेने के बावजूद वह भूख आज भी कभी-कभी सताती है।[३] परन्तु उनकी इस भूख और महत्वाकाक्षा न उन्हें पथ भ्रष्ट नही होने दिया है। उन्होंने अपने पूर्वज महान साहित्यकारो की कुछ बातें अपनी गाठ मे बाध ली हैं जिन्होंने उन्हें सदव सीधी राह पर आगे बढने की प्रेरणा दी है। शरत बाबू ने नागर जी से कहा था–जो लिखना, सो अपने अनुभव से लिखना और किसी से उधार मत मागना– क्योंकि 'उधार की वृत्ति लेखक की कला को हीन और मलीन कर देती है।'[४] स्वय नागर जी के अनुसार "प्राय नब्बे फीसदी मेरे आचरण पर इन उपदेशो का प्रभाव पडा है।"[५]

जहाँ तक महत्वाकाक्षाओ का प्रश्न है वे महत्वाकाक्षायें भी क्या हैं–"मेरी एक तमन्ना जरूर है कि एक दिन अपनी किताबो की रायल्टी पर ही निर्वाह करने लायक बन जाऊ। जी चाहने पर किताबें खरीद सकू, घूम सकू मुझे अपनी किताबो की आमदनी, पत्र-पत्रिकाओ से फुटकर रचनाओ का आया हुआ पसा जमा गव-भरा सतोष देता है, वसा और कोई धन नही सच पूछो तो बस एक ही साध है—लिखत लिखते कोई ऐसी चीज कलम से निकल जाये कि मैं सदा के लिये इन्सान के दिल म जगह पा लू। इस लगन का रग

१— नागर जी द्वारा दिये गये हस्ताक्षर युक्त लिखित इटरव्यू से।
२— नीर क्षीर-अमृतलाल नागर अक – पृ० ५।
३— " " " – पृ० ६।
४— " " " – पृ० १०।
५— नीर क्षीर – अमृत लाल नागर अक–पृ० १०।

गुलाबी या हल्का लाल नहीं बल्कि गहरा लाल है– खून का रंग।"[१] डा० राम विलास शर्मा ने नागर जी की इस महत्वाकांक्षा को, यदि उसे महत्वाकांक्षा कहा जाय,– हौसलापस्त लोगों का हौसला [२] कहा है।

समग्रत नागर जी का लेखक व्यक्तित्व एक ईमानदार, सच्चे भारतीय लेखक का व्यक्तित्व है, जिसम कुण्ठायें कहा भी नहीं हैं, एक ऐसी लगन है जो उसे नई-नई ऊचाइयों की ओर अग्रसर कर रही हैं। यह उस लेखक का व्यक्तित्व है जो जितना ही व्यक्ति की गरिमा के प्रति सचेष्ट है, उतना ही सामाजिक दायित्व के प्रति भी। उसके साथ एक सजीव जनता है, उसकी पर परायें हैं, उसकी आशायें उसकी शक्ति, उसके सकल्प उसके विश्वास और उसकी असगतियां भी हैं। उसके पास वह आस्था है जिसके प्रकाश म वह अधकार के बीच भी अपनी राह पहचान लेता है। यही आस्था उसे जीवन के सारे विष को बरदाश्त करके भी उसके अमृत तत्व के प्रति समर्पित किय हुए है।

१—नीर क्षीर-अमृतलाल नागर अक-पृ० ६।
२— ,, , ,, पृ० ३३।

नागर जी के सामाजिक उपन्यास

(विस्तृत विवेचन)

(क)	महाकाल	(१९४७)
(ख)	सेठ बाकेमल	(१९५५)
(ग)	बूंद और समुद्र	(१९५६)
(घ)	अमृत और विष	(१९६६)

नागर जी के सामाजिक उपन्यास --

पिछले अध्याय में हम नागर जी की रचनात्मक कृतियो का उल्लेख कर चुके हैं। यद्यपि उन्होने पर्याप्त सख्या मे रेखाचित्र रिपोर्ताज तथा निबंध भी लिखे हैं परन्तु कहानीकार के अलावा मूलत उनकी ख्याति एक उपन्यासकार के रूप मे है। नागर जी की कहानिया अधिकतर हास्य और व्यग्य प्रधान हैं जिनके माध्यम स उन्होने युग जीवन की नाना समस्याओ पर दृष्टिपात किया है। जो कहानिया गम्भीर तथा विचारात्मक भूमिकाओ से सम्बद्ध हैं व सख्या म कम हैं। वस्तुत नागर जी का कथाकार रूप उनके उपन्यासो म ही अपनी सारी शक्ति के साथ अपने दर्शन देता है। उनकी कहानिया म जो शक्ति तथा क्षमताए हैं उनका परिचय हम उनके उपन्यासो के माध्यम से प्राप्त हो जाता है। अपने अनेक समकालीन सहयात्रियो की तुलना म उन्होने कम उपन्यास लिखे हैं परन्तु इससे नागर जी के कथाकार व्यक्तित्व का महत्व कम नही होता। उनके उपन्यास उनकी उपन्यासीय क्षमता का सम्पूर्ण परिचय देते हैं। इन उपन्यासो मे नागर जी ने वर्तमान युग जीवन के साथ साथ अतीत व इतिहास पर भी दृष्टिपात किया है। 'शतरज के मोहरे तथा 'सुहाग के नूपुर उनके एतिहासिक उपन्यास है। वर्तमान युग जीवन को उन्होन अपने सामाजिक उपन्यासो म चित्रित किया है। समकालीन जीवन के साथ साथ उन्होन निकट अतीत के समाज को भी अपन उपन्यासो मे पर्याप्त स्थान दिया है जो आज भले ही अवशेष मात्र रह गया हो परन्तु काल की दृष्टि स आधुनिकता की सीमाओ म ही आता है। 'महाकाल शीर्षक अपन प्रथम उपन्यास म उन्होन बगाल के प्रसिद्ध अकाल को केन्द्र मे रख कर तत्कालीन जीवन की सारी ऊहा-पोह चित्रित की है। सेठ बाकेमल म समाप्त होती हुई सामन्तवादी सस्कृति के एक वग विशेष की जीवनचर्या तथा व्यक्तित्व को सजीव किया गया है। बूद और समुद्र नामक अपन प्रसिद्ध उपन्यास म उन्होने लखनऊ के चौक मुहल्ले को केन्द्र म रखकर उसके माध्यम स भारतीय नागरिक जीवन तथा समाज के मध्य वग की समग्र आकृति को प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास म मिटती हुई सामन्तवादी सस्कृति तथा उभरती हुई पूजीवादी वग विषमता के

बीच, मध्यवर्गीय जीवन किस प्रकार पुरानी और नई भूमिकाओ से जुडा हुआ अपने हर्ष-विषादो के साथ गतिशील है इसे बडी पनी दृष्टि से परखते हुए चित्रित किया गया है। अमृत और विष' उनका नया उपन्यास है जो दोहरे कथानक को लेकर एक स्तर पर आज की व्यवस्था म एक स्वतन्त्र लेखक की स्थिति का सजीव दिग्दर्शन कराता है, और दूसरे स्तर पर आज के समाज की सम्पूर्ण आकृति का भी प्रस्तुत करता है, जिसमें अमृत और विष दोनों का ही अस्तित्व है। पुरानी पीढी और नई पीढी के द्वद्व को भी इस उपन्यास म आज के युग सत्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

अमृतलाल नागर के ये सामाजिक उपन्यास उनकी पनी दृष्टि, व्यापक अनुभव, स्वस्थ चितन तथा समर्थ लेखनी के प्रमाण है। प्रथम अध्याय में हमने अमृतलाल नागर को प्रेमचन्द की परम्परा का लेखक स्वीकार किया है। युग के यथार्थ को सच्चाई के साथ चित्रित करते हुए जीवन के स्वस्थ और समुन्नत आदर्शो पर आस्था रखने वाले अमृतलाल नागर के लिए यह परम्परा कितनी मूल्यवान है इसे उन्होंने इन उपन्यासो की रचना द्वारा सिद्ध किया है। अपने अगले विवेचन मे हम इन उपन्यासो की विस्तृत चर्चा करते हुए उनके महत्व को यथासम्भव उद्घाटित करने का प्रयत्न करेंगे।

'महाकाल' –

'महाकाल' सन १९४७ में प्रकाशित श्री अमृतलाल नागर का प्रथम उपन्यास है जो बंगाल के अकाल की हृदय द्रावक पृष्ठभूमि में लिखा गया है। जिस समय नागर जी का यह उपन्यास प्रकाशित हुआ, देश बटवारे के फलस्वरूप हुए साम्प्रदायिक दंगों की आग में जल रहा था। देश के सम्मुख तत्कालीन समस्या साम्प्रदायिकता की थी। परन्तु जैसा कि उपन्यास के 'समर्पण' मे नागर जी ने लिखा है "मेरे मत से इस समस्या की पृष्ठभूमि में भी पेट की समस्या ही प्रमुख है। राजनीतिक दाव-पेंचों के बल पर यह समस्या जन मन की वास्तविक अशान्ति और उससे उत्पन्न घृणा को झूठे रूप से भड़का रही है। समस्या अन्न की है, कपड़े की है, घर की है, चैन आराम की है जीने की है। व्यक्तिगत सत्ता का मोह सामूहिक रूप मे मानव की इस समस्या पर पर्दा डाल रहा है।" नागर जी ने अपने इस वक्तव्य मे युग जीवन की तत्कालीन अशान्ति की तह में जाकर उसके वास्तविक कारणो पर प्रकाश डाला है और उन्हे सबके समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किया है। 'महाकाल' उपन्यास नागर जी की इसी गहरी समझ का परिणाम है। सन १९४३ में बंगाल मे जो भयानक दुर्भिक्ष पड़ा वह एक साधारण घटना न थी। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि यह दुर्भिक्ष प्रकृति की देन न होकर मनुष्य कृत था। भारतवर्ष के तत्कालीन अंग्रेज शासकों ने देशी सामन्तवाद तथा पूंजीवाद से साठ-गाठ करके किस प्रकार चालीस लाख प्राणों का यह नरमेध रचाया, इस तथ्य को स्व० प० जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' नामक पुस्तक में लिखा है। ऐसा न था कि बंगाल में चावल की कमी हो, चावल भरपूर था परन्तु पूंजीपतियों और जमादारों के गोदामों में, न कि साधारण जनता के लिए। बंगाल के इस अकाल ने तत्कालीन बुद्धिवादियों को किस प्रकार यथार्थ जीवन की विरूपता से परिचित करा कर उन्हे नये रूप में अपने लेखकीय दायित्व के प्रति सजग किया, इसका प्रमाण देश के बुद्धिजीवी वर्ग की अकाल सम्बन्धी वे प्रतिक्रियाएं हैं जो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुई थीं। 'बंग दर्शन' की भूमिका मे हिन्दी के साहित्यकारों को उद्बोधित

करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा था —'बंगाल का पुनर्निर्माण प्रत्येक व्यक्ति का मुख्य कार्य है परन्तु कलाकार तथा लेखकों के निकट तो यह उनके आत्म-निर्माण की परीक्षा है। इस दुर्भिक्ष की वेदना का स्पर्श पाकर हमारे कलाकारों की लेखनी-तूलिका यदि स्वर्ण न बन सकी तो राष्ट्र को जाना पड़ेगा।'[1] हिन्दी की अनेक पत्रिकाओं ने बंगाल के अकाल के सम्बन्ध में अपने विशेषांक प्रकाशित किये थे। ये सारी बातें युग जीवन की एक खास घटना को लेकर हिन्दी के साहित्यकारों की जागरूकता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। नागर जी की यह कृति भी एक सजग यथार्थ द्रष्टा लेखक के रूप में उनके प्रगतिशील बोध तथा दायित्व चेतना का प्रतिफल है। इस कृति में नागर जी ने न केवल अकाल की रोमांचकारी घटनाओं का वर्णन किया है वरन अकाल के कारणों पर भी गहराई से प्रकाश डालते हुए उस साम्राज्यवादी, सामन्तवादी षड्यन्त्र का पर्दाफाश भी किया है जो इस अकाल का जन्मदाता था। इन सब कारणों से यह कृति निरी तथ्य परक न रहकर एक स्तर सामाजिक आशय की सूचना देती है। यह इस कृति का विशेष महत्व है।

संक्षिप्त कथावस्तु –

अकाल सम्बन्धी इतिवृत्त तथा अपने चिंतन को स्पष्ट करने के लिये नागर जी ने इस कृति में जिस कथा वस्तु की योजना की है वह अत्यन्त प्रभावशाली तथा यथार्थ परिस्थितियों का सही चित्र देता है। कथावस्तु का केन्द्र बंगाल का एक छोटा सा गाँव मोहनपुर है। पाँचू गोपाल इस गाँव के गोल्ला-बगानी स्कूल का हेडमास्टर है। समूचा गाँव अकाल की ज्वाला में धू-धू करते हुए जल उठा है। लोग दाने-दाने चावल के लिये तरस रहे हैं। पाँचू के सामने भी अपने लम्बे परिवार का पेट भरने की चिन्ता है। अकाल में दम तोड़ते हुए प्राणियों की यातनाएँ, लाशों पर मँडराते हुए गिद्धों, चीलों और कौओं की भीड़, मानवीय मूल्यों आदर्शों तथा नैतिक भावनाओं का सामयिक विघटन पाँचू को जीवन तथा परिवार के भविष्य के प्रति निराश कर देता है। एक ईमानदार शिक्षक के नाते अब तक संजोये गये उसके सारे आदर्शवादी संस्कार यथार्थ की कटुता से टकरा कर चूर चूर हो जाते हैं। परिवार की चिन्ता उसे चोरी के लिये विवश करती है और वह गाँव के बनिए, मोनाई केवट

१—बंग दर्शन-भूमिका-पृ० ७।

को स्कूल की डेस्कें बेच कर अपनी चिन्ता से क्षण भर को मुक्ति पा जाता है। उसका आदर्शवादी मन उसे इस कार्य के लिए धिक्कारता है परन्तु आपद्धर्म के नाते वह ऐसा करने में कोई अनौचित्य नहीं मानता। अकाल की छायाएं सघन होती जाती हैं। एक से एक रोमांचकारी दृश्य पांचू के नेत्रों के सामने से गुजरते चले जाते हैं, वह मन ही मन वस्तु स्थिति का विश्लेषण करता है किसी प्रकार कहीं से भी आस्था खोजने की कोशिश करता है, परन्तु वस्तु स्थिति की विकरालता उसके चिंतन को किसी स्थिर निष्कर्ष तक नहीं पहुँचने देती। गाँव वालों की व्यथा उसे रह रह कर झकझोर देती है, साथ ही जमीदार तथा बनिये मोनाई केवट की स्वार्थ लिप्सा उसके मन को एक अकल्पनीय घृणा से भर देती है। वह समझ नहीं पाता कि मनुष्य की यह स्वार्थ लिप्सा उसे कहां ले जायेगी।

अकाल की भयावनी छायाएँ जो अब तक समूचे गांव पर घिरी थीं अब पांचू के परिवार को भी अपनी लपेट में ले लेती हैं। अन्न के अभाव में उसके परिवार के सदस्य एक-एक करके मृत्यु का लक्ष्य बनते जाते हैं। भूख न केवल मौत तथा पागलपन को जन्म देती है, अनैतिकता को भी उभारती है। पांचू का बड़ा भाई माता पिता, छोटे भाई तथा परिवार के सारे सदस्यों के सामने अपनी पत्नी पर बलात्कार करता है। यह दृश्य पांचू का सिर से पैर तक हिला देता है। उसकी बुद्धि जवाब दे जाती है। वह घर से भाग जाने का निर्णय करता है। पत्नी मंगला बूढ़े पिता तथा जन्म भूमि का मोह उसे पीछे की ओर खींचता है, परन्तु पांचू आगे की ओर बढ़ता जाता है। अचानक बाईं ओर खण्डहर में उसे एक नवजात शिशु के रोने की आवाज सुनाई पड़ती है। बच्चे की मां दम तोड़ चुकी थी। मौत की सार्वत्रिक उपस्थिति के बीच जीवन की यह अभिव्यक्ति पांचू को एक नई आस्था देती है। आदमी के इस बेटे को बचाने के लिए वह एक बार फिर से शक्ति बटोरने का प्रयास करता है। वह निश्चय करता है कि वह उन सब लोगों से लड़ेगा जिनके पास सबकी भूख के साधन छीन कर जमा हैं। बच्चे को लिए हुये वह घर लौटता है। उसका बड़ा भाई चावल के लिए अपनी पत्नी को नूरद्दीन के हाथों बेच चुका था मां बेटे की अनैतिकता से त्रस्त होकर प्राण छोड़ चुकी थी, बाबा की आंखें भी बंद हो चुकी थीं केवल मंगला ही उसकी प्रतीक्षा में निराश शव रह गई थी। पांचू को देखकर उसकी मरी हुई चेतना वापस लौटती है। पांचू उसकी गोद में बच्चे को देकर एक नये जीवन की राह पर कदम रख देता है।

कथावस्तु का विवेचन –

'महाकाल' उपन्यास की कथावस्तु का सबंध बगाल के अकाल की लोम हर्षक परिस्थितियो से है। कथावस्तु की नियोजना मे नागर जी का प्रमुख उद्देश्य अकाल सबधी उक्त परिस्थितियो के साथ-साथ जन जीवन पर उनके प्रभाव का वर्णन रहा है। नागर जी ने यह काम एक इतिहास दृष्टा के रूप मे ही नही, एक सवेदनशील साहित्यकार की सम्पूर्ण सहृदयता तथा कलात्मक योग्यता के साथ सम्पन्न किया है। उन्होंने एक समाजशास्त्री की भाति दुर्भिक्ष के सामाजिक, राजनीतिक कारणो को भी परखा है और इस प्रकार सपूर्ण कथा को अधिक सार्थक और सोद्देश्य बनाकर प्रस्तुत किया है। इन सबके साथ साथ नागर जी का मानवतावादी दृष्टिकोण भी कथा मे आदि से अत तक मुखर है। बगाल के अकाल पर—नागर जी के अतिरिक्त हिन्दी के अन्य साहित्यकारो ने भी अपनी लेखनी चलाई है, परन्तु समीक्षा के अनुसार नागर जी की कथावस्तु उस मानिकता से सर्वथा अछूती है जिसका लक्ष्य उनके अनुसार कतिपय दूसरे कथाकारो की कृतिया बन गई हैं।[१] प्रस्तुत कथावस्तु के माध्यम से नागर जी ने व्यक्ति के अपने स्वार्थ पर कठोर प्रहार किया है और इस सबध मे श्री नरेन्द्र शर्मा की निम्नलिखित पक्तियो को शत प्रतिशत प्रमाणित किया है जो उपन्यास के आमुख के रूप मे उन्होने उद्धत की हैं—

स्वार्थ की छेनी लिये लेकर हथौडा लोभ का
मनुज ने निज पूर्ण पावन मूर्ति को खडित किया।

उपन्यास के प्रारम्भ मे ही नागर जी ने प्रश्न उठाया है —'व्यक्तिगत सत्ता का मोह सामूहिक रूप से मानव की इस समस्या पर (जान की समस्या) पर्दा डाल रहा है, परन्तु समाज की समस्या से व्यक्ति क्या किसी भी रूप मे अछूता बच सकता है? यह अशान्ति व्यक्ति के गलत स्वार्थ की कहानी कहती है। जीवनी शक्ति से जीवन का नाश करने का हठ — यह कैसा मोह है। बुद्धि का यह विरोधाभास क्या? एटम के युग मे व्यक्ति के स्वार्थ और समाज की आर्थिक गुलामी के युग मे – यह भयकर खून खराबी यह अमानविकता भूख का यह ताण्डव महामारी, दुर्घटनाए यह घृणा, यह निराशा, यह प्रलय ही सर्वथा शोभन और सभव है। यदि कुछ अशोभन है असम्भव है, तो विवेक, सद्बुद्धि सन्तान सदाचार, ऐक्य और प्रेम।

१— हिन्दी उपन्यास— डा० सुषमा धवन—पृ०— ६२।

यह "अशोभन असभव' ही महाकाल के रूप म आपके कर कमलो में साग्रह समर्पित है।"[१]

स्पष्ट है कि नागर जी ने महाकाल की कथा वस्तु का निर्माण करते समय अपन उक्त मतव्य को जोर देकर प्रस्तुत करने की चष्टा की है। युग की विभीषिकाओ से अथवा यथाथ की कटुताओ स वे परिचित न हो ऐसी बात नही, अपने इस परिचय के कारण ही उन्होंने पूरी ईमानदारी के साथ उनका चित्रण किया है और उनके कारणो की अपनी सही समझ के बल पर ही, वस्तु स्थिति के उपचार का रास्ता सुझाया है। कहा जा सकता है कि विघटन और ह्रास क सिर पर आदर्शो और ऊच मानवीय मूल्यो की प्रतिष्ठा का यह प्रयत्न यथार्थवाद न होकर सतही आदशवाद या कोरा मानवतावाद है–जसा कि एक लखक ने कहा भी है।[२] और इस सदभ म नागर जी की यथार्थवादी कला का खडित बताया है– परन्तु गहराई से देखन पर यह आरोप साथक नही मालूम पडता। वस्तुत नागर जी का यथार्थवाद प्रेमचन्द की परम्परा का यथार्थवाद है और यह सब विदित है कि प्रेमचन्द ने स्वत अपने यथार्थवाद को आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की सज्ञा दी थी। नागर जी न, यदि प्रमचन्द द्वारा दिये गये इस नय नाम को स्वीकार किया जा सके तो अपनी इस कृति मे यथाथ क इसी रूप को उभारा है। उन्होने इस कृति में युग के विघटन के अथवा विषमताओ के किसी काल्पनिक समाधान की ओर इशारा नहीं किया, और न ही उन्हे कथावस्तु को अनपेक्षित मोड देने की आवश्यकता प्रतीत हुई। यथार्थवादी कला के प्रति ईमानदार रहत हुए उन्होंने उन स्थितियो की ओर ही सकेत किया है जो भले ही आज का सत्य न हो, परन्तु एक सवेदनशील लेखक के रूप मे अथवा एक सहृदय व्यक्ति के रूप म जिनकी उन्हें आकाक्षा है। इस प्रकार 'महाकाल' की कथा वस्तु की परिणति सतही आदशवाद में न होकर यथाथ परिस्थितियों से साहस पूवक आँखें मिलाकर अभिव्यक्ति होने वाले ठोस चिन्तन म हुई है, जो यथाथ चिन्तन ही है।

'महाकाल' में कथा वस्तु का सम्बन्ध यद्यपि बगाल के एक छोटे से गाव मोहनपुर से है परन्तु गहराई से देखने पर उसकी व्याप्ति दूर-दूर तक प्रतीत होती है। वह पाचू गोपाल के अपने जीवन, उसके परिवार, समूचे

१– समपण—महाकाल।

२– हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास–डा० सुरेश सिनहा–पृ० ५०४।

गाँव, और गाँव के शोषक वर्गों के साथ समूचे शोषक समुदाय की कथा है। अन्ततः वह उस साम्राज्यवादी, सामन्तवादी पूँजीवादी षड्यन्त्र की कथा है जो न केवल बंगाल को ही अपने चंगुल में बाँधे था वरन जिसके क्रूर पंजों में तत्कालीन समूचा भारतीय समाज, समूचा देश सिमटा हुआ था। एक छोटी सी कथा की इतनी दूरवर्ती व्यंजना कथा नियोजना सम्बन्धी नागर जी के कौशल तथा उनके दृष्टिकोण की गहराई और व्यापकता का भी परिचय देती है, और भी आगे सोचें तो एक वाक्य में यह कहा सकते हैं कि महाकाल की कथा वस्तु यदि एक ओर मृत्यु की रोमांचकारी गाथा कहती है, तो दूसरी ओर जीवन की अपनी महत्ता का भी उद्घोष करती है। वह मृत्यु के सिर पर जीवन को प्रतिष्ठित करते हुए मानव समाज को जीने का नया सम्बल प्रदान करती है। नागर जी ने मृत्यु की भयावहता से आँखें ओझल नहीं की हैं, उसका अत्यन्त व्यापक और लोमहर्षक चित्र खींचा है, परन्तु मृत्यु का दर्शन उनकी जीवन सम्बन्धी आस्था को कमजोर नहीं कर पाया है। उसने उसे पुष्ट ही किया है।

कथा का प्रमुख आकर्षण उसकी सजीवता है। अकाल के यथार्थ चित्रों से कथा आदि से अन्त तक पूर्ण है। इन दृश्यों के चित्रण में कहीं भी कल्पना की अतिरंजना नहीं, कहीं कोई कृत्रिमता नहीं। लेखक की पैनी दृष्टि ने वस्तु स्थिति की एक एक रेखा को बहुत सफाई के साथ प्रस्तुत किया है। भूख, मौत नैतिक मूल्यों का विघटन ह्रास तथा विनाश के यथार्थ चित्रों से कथा-वस्तु को अधिक से अधिक प्रामाणिक तथा सजीव बनाने का प्रयत्न किया गया है। यथार्थ का जो भी चित्रण कृति में है वह किसी भी संवेदनशील पाठक को सिर से पैर तक झकझोर देने के लिये पर्याप्त है। चावल के दाने दाने पर झपटती हुई कुत्तों और गिद्धों के मुँह से अन्न के दाने तथा माँस छीनती हुई, नंगे और भूखे स्त्री पुरुषों की लम्बी भीड़ मुट्ठी भर चावल के लिए नारियों के शरीर के आखिरी वस्त्र को भी झपट कर छीनता हुआ पुरुष वर्ग परिवार के सदस्यों—माँ पत्नी तथा अपने छोटे छोटे बच्चों की हत्या करता हुआ मनुष्य, जीवित शिशु को आग में भूनकर भूख मिटाने वाला पागलपन पत्नी के शरीर का माँस काटकर खाता हुआ पति मुट्ठी भर चावल के लिए बेची जाती हुई नारियाँ, वेश्यालय आदि-आदि एक से एक रोमांचकारी चित्र उपन्यास में अकाल के यथार्थ का अंग बनाकर सम्पूर्ण मानवीय संवेदना तथा लेखकीय तटस्थता के साथ चित्रित किये गये हैं। ये दृश्य उपन्यास की कथा को यथार्थ का जीता जागता आधार प्रदान करते हैं। अकाल की उक्त दृश्यावलियाँ

नागर जी की पनी यथाथ दष्टि का ज्वलन्त प्रमाण हैं। ये सारे दृश्य मिलकर अकाल की भयावहता को उसके सारे घनीभूत प्रभावों के साथ प्रस्तुत करते हैं।

उपन्यास की कथावस्तु एक ओर तो जन सामान्य के दुख दैन्य को उभारती है दूसरी ओर जमींदार महाजनों के विलास तथा ऐश आराम के चित्र भी देती है। इन दो विरोधी स्थितियों ने एक दूसरे की सापेक्षता म कथानक के प्रभाव को बढ़ाया है, फलस्वरूप पाठक सरलता से कृति के मूल उद्देश्य को हृदयगम कर लेता है।

जैसा कि ऊपर निर्देशित किया जा चुका है यथाथ की सघनता के बावजूद समूची कथा की परिसमाप्ति एक नई जीवन भूमिका की ओर सकेत करती है जो एक आशावादी भूमिका है। लेखक का यह आशावाद जिसका सम्बन्ध उसके आदशवादी तथा मानवतावादी दष्टिकोण स है कथावस्तु को सतुलित तथा ग्राह्य बनाने के लिए आवश्यक था। मौत की काली छायाओं के बीच स फूटती हुई नई जिन्दगी की किरणें न केवल यथाथ के रग को अधिक गाढ़ा होने म रोकती हैं उसे सजीव और सम्पूण भी बनाती हैं।[१] "यूरोपियन लेखकों की नकल पर ह्रासोन्मुख मरणशील साहित्य का सजन करने वाले हिन्दी उपन्यासकारों और इस लेखक मे कितना अन्तर है। एक ओर अनुकरण करके मत्युजय निराशा अपनाई जाती है तथा दूसरी ओर मत्यु की काली छाया मे भी जीवन की चाह है।"[२] यदि उपन्यास की कथावस्तु इस प्रकार की आशावादी भूमिका से सम्बद्ध न होती तो निश्चित ही उस पर एक रसता का आरोप भी लगाया जा सकता था। नागर जी ने ऐसी किसी भी प्रकार की एकरसता से अपनी कथावस्तु को सजगतापूवक बचाया है। कथा-वस्तु घटना बहुल नहीं है, जो भी घटनाएं हैं, सब एक ही केन्द्रीय प्रभाव को

१– "अविश्वास के वातावरण में जीवन के प्रति विश्वास की इस दढता ने पति और पत्नी, दोनो को ही, अपूव धैय और बल दिया। स्वय पाचू को भी अपनी इस बात द्वारा अपने अन्दर की अदमनीय चिर विजयी, विकासमयी शक्ति का परिचय मिला। प्रलय में सष्टि के बीजाकुर फूटने लगे।' – महाकाल, पृ० २५०।

२– हिन्दी उपन्यास समाज शास्त्रीय अध्ययन डा० चण्डीप्रसाद जोशी पृ० ४४

जन्म देती हैं, और यही अकाल जैसे विषय को लेकर लिखे गए इस उपन्यास की कथावस्तु की सफलता है।

समग्रत कथा वस्तु के सम्बन्ध म हमारा अतिम निष्कर्ष यही है कि उसकी सष्टि, बावजूद लेखक की आदर्शवादी–मानवतावादी चितना के उस सामाजिक यथार्थ का ही पोषण करती है जिसका विरासत नए लेखकों को प्रेमचन्द से मिली था।

चरित्र–सृष्टि —

उपन्यास की कथावस्तु तथा अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिये नागर जी ने इसके अन्तर्गत तीन प्रमुख पात्रो की योजना की है–पाचूगोपाल जो मोहनपुर गाव के ऐंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल का हेडमास्टर है, मानाई केवट, जो गाव का महाजन तथा बनिया है और दयाल, जो गाव का जमीदार है। इन तीन पात्रो के अतिरिक्त कतिपय गौण पात्र भी हैं जो उपन्यास की कथा वस्तु तथा उक्त तीन पात्रो की अपनी गतिविधियो से सबद्ध हैं और कथावस्तु मे यथावसर तथा यथास्थान अपना महत्व रखते हैं। जहाँ तक प्रमुख पात्रो का सबध है, तीनो 'टाइप' या वर्गगत पात्र हैं और अपने अपने वर्गीय चरित्र, वर्गीय विशेषताओ तथा वर्गीय प्रवृत्तियो के साथ उपन्यास मे आये हैं। लगभग इसी प्रकार के पात्रो की सष्टि हमें प्रेमचन्द के उपन्यासो में दिखाई पडता है। वर्गीय भूमिका के अतिरिक्त इन पात्रो का अपना वैयक्तिक स्वरूप भी है, जिसे भी लेखक ने स्पष्ट किया है। वर्गीय भूमिका के इन पात्रो की योजना के द्वारा अपनी विशिष्ट तथा ऐतिहासिक कथावस्तु के सन्दर्भ में लेखक ने उस वर्ग-सघर्ष का स्वरूप भी स्पष्ट किया है जो अकाल की विनाशकारी भूमिका वाले उस युग का सत्य तो था ही आज का युग सत्य भी है। प्रेमचन्द की ही वस्तु – नियोजना सम्बन्धी टैकनिक तथा चरित्र निर्माण सबधी पद्धति का अनुसरण करने के कारण इस उपन्यास में भी किसी प्रकार की जटिलता अथवा अतिरिक्त बौद्धिकता नही आने पाई है और चरित्र सीधे ही उपन्यास के प्रयोजन को मूर्त कर देते हैं।

पाचू गोपाल उपन्यास का सबसे प्रमुख चरित्र है जो लेखक के अपने विचारो तथा चिन्तन का भी वाहक है। अकाल–सम्बन्धी तथा युग-जीवन सबधी अपनी अधिकाश मान्यताए नागर जी ने उसी के माध्यम से व्यक्त की हैं, फलस्वरूप उसका चरित्र एक प्रकार से सबसे अधिक बौद्धिक बन गया है।

परन्तु यह बौद्धिकता उसके चरित्र को इसी कारण बोझिल नहीं बना पाई है कि मूलत वह एक आदर्शवादी, भावुक तथा अत्यन्त संवेदनशील व्यक्ति है। उसके सारे विचार उसके भावनापूर्ण तथा आदर्शवादी व्यक्तित्व के परिवेश मे ही सामने आये हैं, उसके अपने अनुभवों का प्रतिबिम्ब हैं। वे न तो किताबी हैं और न ही बलात उसके मस्तिष्क मे ऊपर से थोप दिये गये हैं। उसका चिंतन और उसके माध्यम से स्पष्ट किया जाने वाला लेखक का चिंतन अस्वाभाविक प्रतीत न हो, इसी कारण नागर जी ने उसे स्कूल के शिक्षक का व्यक्तित्व दिया है, जो स्वभावत आदर्शवादी चिंतन का व्यक्ति होता है। परन्तु नागर जी का यह पात्र आदर्शवाद का पुतला नहीं है, नागर जी ने यथार्थ स्थितियों के सन्दर्भ म उसके समूचे व्यक्तित्व को भली भाँति परीक्षित किया है और अनेक स्थलो पर आदर्श तथा यथार्थ की टकराहट के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों पर भी निर्मम टिप्पणियाँ की हैं। पाचू के चरित्र का अन्तिम रूप तो आदर्शवादी ही ठहरता है परन्तु उसका यह आदर्शवाद यथार्थ की आंच म काफी तपा कर निखारा गया है। पाचू के चरित्र का सजीव रूप आदर्श तथा यथार्थ के इसी द्वन्द्व म स्पष्ट होता है। वस्तु स्थिति की विषमता उसके आदर्शों पर पहली चोट उस समय करती है जब बाध्य होकर चोरी से स्कूल की डस्कें थोडे से चावलो के लिए उसे मोनाई केवट के हाथ बेचनी पड़ती हैं। वह महसूस करता है कि जसे वह ससार का सबसे गिरा हुआ प्राणी हो। दूसरों की नजरो म वह भले ही अब भी गाव का 'नेपोलियन बोनापार्ट' हो 'शेक्सपियर' हो, एक महान व्यक्ति हो परन्तु अपने खुद की नजरों मे वह क्या हो गया है, इसे वही समझता है। उसके आदर्शवाद पर लगातार चोटें होती रहती हैं, उसे जमीदार की मुसाहिबी करनी पडती है, अनचाहे उसकी महफिलो म बठना पडता है और इस प्रकार वह खुद की नजरो मे निरन्तर नीचे गिरता जाता है। इन प्रसगों मे सम्बन्धित उसका आत्म चिंतन, जहा उसकी अपनी 'मानवीय चेतना खुद उसके मुह पर तमाचे लगाती हैं,' उपन्यास का तथा उसके चरित्र का सबसे सजीव अंग है।[१] पाँचू के चरित्र की ये कमजोरियाँ उसे एक सहज मानव के रूप म प्रस्तुत करती हैं, जो इन

१— 'सारा ससार मुझसे बडा है। हर शख्स मुझसे बडा है। दुनिया की हर चीज मुझसे बडी है। मुझे किसी को भी छोटा समझने का अधिकार नही—कोई नीच नही, कोई बुरा नही। सारी बुराई मुझी मे हैं। मैं सबसे बुरा हू। मैं ही बुरा हू।' —महाकाल—पृ०—१६२

परिस्थितियों में एकदम स्वाभाविक था। पाँचू की मानवीय चेतना यद्यपि यथार्थ की कटुताओं में आहत तो होती है परन्तु पूरी तरह निःशेष नहीं हो पाती। यह उसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में फिर से समूची वस्तु स्थिति का विश्लेषण करने को प्रेरित करती है। उसे लगता है कि जैसे ये मौतें, यह अकाल और यह सारा विनाश मनुष्य की दासता का परिणाम है। उसे अपने पिता के वचन याद आते हैं, "घृणा की गति है कहाँ? विनाश ही में न? तुम्हारा यह अकाल क्या है? मनुष्य की घृणा ही न? यह महायुद्ध क्या है? कौन सा आदर्श है इसमें? सत्य एक असत्य के साथ संधि करके दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिए युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीति कहकर अर्द्ध-सत्य का पोषण करता है। अर्द्ध-सत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल है। और प्रेम की गति है। निर्माण तक निर्माता तक।"[1] यही नहीं पाँचू भी महसूस करता है कि जिस 'स्वार्थ' के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है। वह समझ नहीं पाता कि 'यह स्वार्थ क्या है? और क्या है? अपने अस्तित्व की चेतना को मनुष्य सर्वव्यापी और सामूहिक रूप में क्यों नहीं रखता। वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि वस्तुतः यह व्यक्ति का अहं ही है जो दूसरे को गिराकर प्रसन्न होना चाहता है।' जब तक मनुष्य व्यक्ति और समाज को भिन्न मानकर चलता रहेगा तब तक मौत, भूख, अकाल और शोषण की छायाएँ इसी प्रकार मँडराती रहेंगी। वह चाहता है कि लोग स्वार्थ को छोड़कर सबके समान अधिकार को स्वीकार करें। पाँचू के ये विचार उसके स्वप्न-शील आदर्शवादी चरित्र का पूरा परिचय देते हैं। परन्तु जैसा हमने पीछे कहा है पाँचू अपने निष्क्रिय चिन्तन का ही पुतला नहीं है वरन् ज्ञान और गहरे उतरकर समस्या की तह में जाकर अपने आदर्शवाद को यथार्थ से पुष्ट भी करता है। वह समाज की ऊपरी सतह पर उतराते हुए वर्ग संघर्ष को पहचान लेता है और यह भी जान लेता है कि यह बड़प्पन चाहे मन या धन की गर्मी ही है जो सारी दुनिया को तबाह किए हुए है। परिवार में होने वाली मौतें तथा अन्य रोमांचकारी घटनाएँ उसे घर से आँगन का विरक्त कर देती हैं, परन्तु नश्वरता में सदसत्ता से उसका साक्षात्कार उसे जीवन पर नई आस्था देता है। वह निर्णय करता है कि आत्मा के वर का मूल्य और मौत की विनाशकारी छायाओं से बचाने के लिए वह उन सब लोगों से लड़ेगा जो दूसरों के जीवन के शोषण अपनी मुट्ठी में जकड़े हुए हैं। वह जनता को संगठित करेगा

---

[1] — महाकाल — पृ० — २१३।

और जनशक्ति के बल पर शोषक समुदाय का विरोध करेगा। पाचू की यह नई आस्था उसे पलायन की भूमिका से उबारकर ससार के रणमंच में संघर्ष करने के लिए फिर से खड़ा कर देती है और उपन्यास मे यही पाचू के चरित्र की आदर्श परिणति है।

स्पष्ट है कि पाँचू के चरित्र की यह भूमिका आदर्शवादी होने के बावजूद यथार्थ से विच्छिन्न नही है।

मोनाई केवल उपन्यास का सर्वाधिक यथार्थवादी चरित्र है और सबसे सजीव भी। पाचू के चरित्र निर्माण मे उनके सामने कतिपय सीमायें थी, विशेष कर इस बात को लेकर कि वे उसके माध्यम से स्वतः भी उपन्यास की भूमिका मे प्रविष्ट होना चाहते थे। मोनाई के संदर्भ मे ऐसी कोई सीमा उनके साथ नही रही है। उन्होने यथार्थ के अत्यन्त गाढे रगो से उसके चरित्र को चित्रित किया है। मोनाई का चरित्र, जहा तक कला का प्रश्न है इसी कारण सबसे प्राणवान भी बन सका है। पूजीवादी मनोवृत्ति का वह साकार प्रतीक है। उसके माध्यम से नागर जी ने इस व्यवस्था की विकृतियो को बडी सफाई से मूर्त किया है। अकाल उसके लिए वरदान बन कर आता है और वह अवसर से पूरा लाभ उठाकर अपनी तिजोरिया भरता है। स्वार्थ परता, मुनाफाखोरी, धूर्तता छलप्रपच, पाखण्ड का वह जीता जागता अवतार है। व्यावहारिक बुद्धि मे उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नही। साम-दाम दण्ड भेद चारो कलाओ मे वह उस्ताद है। मुह से जितना ही मीठा, भीतर से उतना ही कठोर। बातचीत की कला मे अत्यत निपुण है। कूट बुद्धि मे भी पूरा निष्णात है। उसके चरित्र को नागर जी ने व्यग्यात्मक शैली मे प्रस्तुत किया है। पाचू को वह देवता कहता है, ऊपर-ऊपर से आदर और सम्मान भी देता है परन्तु झोली भर चावल तभी देता है जब स्कूल की चाभी उसके हाथ मे आ जाती है। गाव वालो की मौत, सहानुभूति के दया माया और ममता के ढेरो शब्द उसके मुख से कहलाती हैं, परन्तु मुट्ठी मुट्ठी भर चावल वह गाँव वालो को तभी देता है जब उनकी गृहस्थी का एक एक चीज यहा तक कि उनकी स्त्रियो के लज्जा-वसन तक अपने हाथ मे कर लेता है। जमीदार के आदमी उसके गोदाम मे आग भी लगा देते हैं। परन्तु वह धीरज नही खोता आगे की लाभ की सभावना मे सारी चोट सह जाता है। उसका धर्म-कर्म भी चलता रहता है और लूट भी। लूट के लिए धर्म के आवरण को वह अनिवार्य मानता है। उसे वह सारी विद्या मालूम है जिसके बल पर आराम से दूसरो का शोषण करते हुए अपनी थैली

भरी जा सके। चावल का धंधा ही नहीं मौका पड़ने पर वह गाँव की बहू बेटियों का व्यापार भी करता है और इसके लिए भी धर्म और शास्त्र के प्रमाण ढूंढ लेता है—"यों भूखी मर रही हैं बेचारी सबेरे कम से कम खाने पहनने को तो मिलेगा। दो सुभा होंगी और दो पैसे मुझको भी मिल जायेंगे। भगवान जी ने अगर इस नये व्यापार में अच्छे पैसे बनवा दिये तो आगे चल-कर एक अनाथालय और आसरम भी खुलवाय दूंगा। यही तो धरम की महिमा है।"[१] वह विशुद्ध रूप से पूंजीवादी मनोवृत्तियों का प्रतिनिधि चरित्र है जिसका न कोई धर्म है न ईमान। यदि धर्म है तो केवल पैसे कमाना। वह पैसे कमाने के लिए ही साम्प्रदायिक आग भी भड़काता है और अपने चेलों को समझाता हुआ कहता है—"और सच्ची पूछो तो तेठा न तो तुम्हारा और नवाब साहब का धरम एक है न मेरा और दयाल का। असल्ला धरम तो हमारा तुम्हारा एक है। हमारे लिये दयाल और नवाब दोनों ही समुर विधर्मी हैं। अरे कल्युग में धरम काहे का? स्वारथ है। और स्वारथ हमारा तुम्हारा एक है। हमारा स्वारथ इसी में है कि ये बड़े लोग आपस में जूझें और हम मिल कर नफा उठायें।[२]

उसके चरित्र की सजीवता इसी बात में है कि वह अपने खुद के व्यक्तित्व को समझने में कहीं गलती नहीं करता। वह जानता है कि उससे गिरा हुआ प्राणी संसार में कोई दूसरा नहीं है। परन्तु इसी को अपनी सबसे बड़ी सफलता और उपलब्धि मानता है। वह दूसरों के सामने अपने को धिक्कारता भी है, ऊँचे से ऊँचा तत्व चिंतन भी करता है परन्तु यह भी समझता है कि इसी के बल पर वह अपनी थोथी भर सकता है। आदि से अन्त तक एकदम यथार्थवादी रंग रेशे से उसका चरित्र निर्मित हुआ है। 'मुंह में राम बगल में छुरी' वाली कहावत उसके चरित्र पर राई रत्ती खरी उतरती है। नागर जी ने अपने सम्पूर्ण लेखन में विशुद्ध यथार्थवादी भूमिका पर जिन थोड़े से अविस्मरणीय चरित्रों की सृष्टि की है, मोनाई उनमें से एक है। मनुष्य को परखने और पहचानने की क्षमता नागर जी में कितनी है। मोनाई का जीवित चरित्र इस बात का एक समर्थ प्रमाण है।

दयाल के चरित्र के लिए सुषमा धवन ने ठीक ही लिखा है कि उसका

१– महाकाल–पृ० १७६।
२– वही " १८५।

रेखायें "सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल अधिक हैं।"[१] मोनाई की भांति उसका सबध भी समाज के शोषक वग से है। अन्तर इतना है कि जहां मोनाई पूजीवादी मनोवृत्ति का प्रतिनिधि है वहाँ दयाल के चरित्र म सामतवादी प्रवृत्तिया मुखर हुई हैं। परतु मोनाई का चरित्र व्यग्य की जिस तेज धार से गुजारा गया है उसका दयाल के चरित्र म अभाव है। सामतवर्गों की विलासिता, अहकार, स्वाथ परता आदि का प्रत्यक्षीकरण उसके माध्यम से हुआ है। भूखो की भीड पर बिना किसी झिझक के वह गोलिया चलवा सकता है, अग्रेज परस्त हाकिमो से मिलजुल कर अपना खजाना भर सकता है, लोगो की विपन्नावस्था से लाभ उठाकर उनकी बहू-बेटियों की इज्जत लूट सकता है, चकले कायम कर सकता है शराब और नाचगानें की महफिलें जुटा सकता है। उसके चरित्र के माध्यम से नागर जी न तत्कालीन राजनीति पर भी प्रकाश डाला है और उसके क्रम में उसकी चारित्रिक प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया है।[२] वह और मोनाई दोना ही यद्यपि शोषक वग से ही सम्बन्धित हैं परन्तु अपने लाभ क लिए वह मोनाई स भी विश्वासघात करता है। दयाल और मोनाई के इस सघष के द्वारा लेखक ने लाभ के सम्भ म होने वाली शोषक वर्गों की आपसी टकराहट को भी गहरी राजनीतिक समझ के साथ चित्रित किया है। कुल मिलाकर दयाल का चरित्र भी मोनाई की भांति यथाथवादी तूलिका से अकित है, परन्तु स्थूल अधिक होने क कारण उतना सजीव नही बन सका है।

उक्त पात्रो क अतिरिक्त गौण पात्रो के चरित्रा की रखायें भी कुशलता पूवक उभारी गई हैं। इन पात्रा म पाचू गोपाल क पिता केशव बाबू, अजीम नूरद्दीन, पावती मा, मगला और शिबू की गणना की जा सकती है। जहा तक केशव बाबू का सम्बध है उपयास के अतगत व एक विचारशील व्यक्ति क रूप म सामने आय है। वे पाचू की अनेक जिज्ञासाओं का समाधान अपने चितन के द्वारा करत हैं। पाचू पुत्र स भी अधिक उनका शिष्य है जिस विरासत मे पिता के पाडित्य की गहरी प्रेरणाए मिली हैं। प्रत्यक्षत उनका चरित्र भी आदशवादी चरित्र है परतु नागर जी ने केशव बाबू के जीवन का एक अय पक्ष भी अप्रत्यक्ष रूप मे उपयास के अतगत प्रस्तुत

१– डा० सुषमा धवन–पृ० ६२।

२– महाकाल–पृ० १२८।

लिया है, जो व्यक्ति केशव बाबू का निजी यथार्थ है। उन्होंने यही हो वस्तु परक भूमिका में केशव बाबू की सामन्तवादी प्रवृत्तियों का परिचय दिया है, विशेषतः नारी-पुरुष सम्बन्धों का स्तर। शिवू की अनतिकता का स्रोत उन्होंने केशव बाबू के दाम्पत्य जीवन की अनियमितताओं में दिखाया है। जिस प्रकार केशव बाबू के लिए पार्वती माँ सहज भोग्या थी उनकी अपनी सम्पत्ति, उनकी काम तृप्ति का एकमात्र साधन उसी प्रकार शिवू के लिए उसकी पत्नी भी थी। उनके दो पुत्रों में पाँचू ने उनके पाण्डित्य की विरासत पाई और शिवू ने उनके जीवन के इस पहलू को ग्रहण किया। समग्रतः केशव बाबू के जीवन का यथार्थ रूप एक ओर और उपन्यास के अन्तर्गत प्रत्यक्षतः सामने आने वाला उनका दूसरा रूप, दोनों मिलकर उनके चरित्र की पारस्परिक सापेक्षता में सजीव ही बनाते हैं। पार्वती माँ पति परमेश्वर के सम्मुख समर्पिता नारी हैं। उन्होंने वस्तुतः केशव बाबू के साथ यही समझौता किया। अपने पण्डित पति की कामेच्छा को एक दायित्व समझकर तृप्त किया और इसके एवज में परिवार के ऊपर जीवन भर अखण्ड शासन किया। उनके जीवन का अन्त लेखक ने बड़ी ही मार्मिक परिस्थितियों में दिखाया है। शिवू माता पिता छोटे भाई तथा परिवार के सारे सदस्यों के सामने पागलपन के आवेश में अपनी पत्नी पर बलात्कार करता है। पार्वती माँ इस अनतिकता को बर्दाश्त नहीं कर पाती। वह शिवू को रोकती हैं परन्तु शिवू उन्हीं के मुँह पर अपनी काम वृत्ति को उन्हीं का दान बताता है। माँ बेटे का यह वार्तालाप माँ के प्राणों की बलि ले लेता है। शिवू का चरित्र बहुत सशक्त रूप में उभरा है और अकाल की परिस्थितियों के सन्दर्भ में उसकी सहज कमजोरियों का साक्षी है। भूख, पागलपन और अनतिकता को भी जन्म देती है शिवू का चरित्र इसका प्रमाण है। समग्रतः उसे पाठक की करुणा ही प्राप्त होती है, आक्रोश नहीं। अजीम और नूरहसन गाँव के उन गुण्डों के प्रतिनिधि हैं, जो अकाल की परिस्थितियों से लाभ उठाकर गाँव की बहू बेटियों की इज्जत लूटते हैं पैसा कमाते हैं और शोषक वर्गों के हाथ का औजार बनते हैं।

कुल मिलाकर उपन्यास की चरित्र सृष्टि पर्याप्त सजीव है। पाँचू गोपाल के चरित्र का आदर्शवादी उठान के बावजूद सम्पूर्ण चरित्र सृष्टि को यथार्थवादी कला की उपज ही कहा जायेगा।

'महाकाल' उपन्यास की उक्त कथा वस्तु तथा चरित्र सृष्टि के माध्यम से लेखक ने बंगाल के अकाल की ओर तत्सम्बन्धी सारी आर्थिक,

राजनीतिक एवं सामाजिक भूमिका की विविधता के साथ प्रस्तुत किया है। अकाल सम्बन्धी उनका चिन्तन कृति में पूरी तरह मुखर है। प्रस्तुत उपन्यास अकाल की वस्तु स्थिति के साथ-साथ व्यापक परिप्रेक्ष्य में उसकी सारी विनाश मूलक परिणतियों का विवेचन करता है। व्यक्ति और समाज का पार्थक्य, व्यक्ति की खुदगर्जी, ह्रास मनोवृत्ति, अहंकार, वर्ग विषमता आदि वे कारण हैं जिन्हें नागर जी ने आज के युग की विभीषिका का उत्तरदायी माना है। उन्होंने एक कलाकार की सम्पूर्ण निष्ठा के साथ, कला के आवरण में इन कारणों को प्रस्तुत करते हुए एक सजीव कथानक तथा सफल चरित्र सृष्टि के माध्यम से अपने उद्देश्य को प्राप्त किया है। 'महाकाल' उपन्यास नागर जी की रचनात्मक क्षमता का एक उत्कृष्ट प्रमाण है। पहली रचना होने पर भी नागर जी के कृतित्व में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

———

अध्याय-४

सेठ बांकेमल (१९५५)

•

"मेरा काम काज तो भैयो, यई है कि अपने को खुस रक्खो। सदा मौज में रहो। खसकैंटी में मजा नई है प्यार और सच्ची पूछो, तो जिन्दगी के माने भी यही है। एक सायर ने कई है"

"जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है
और मुरदा दिल साले, खाक जिया करते है।"

—'सेठ बांकेमल' पृष्ठ १११-११२।

सेठ बांकेमल —

'सेठ बांकेमल' 'महाकाल' के पश्चात नागर जी का दूसरा उपन्यास है। हिन्दी के कतिपय समीक्षकों ने[1] नागर जी के इस उपन्यास को प्रयोगात्मक उपन्यास कहा है, कारण इसमें नागर जी ने उपन्यास-लेखन की परम्परागत पद्धति से हट कर अभिव्यक्ति का एक नया रूप उपस्थित किया है। यह उपन्यास बातचीत की शैली में लिखा गया है जिसका अधिकांश सेठ बांकेमल नामक पात्र से सम्बन्धित है, जो इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। सेठ बांकेमल अपने दिवगत जिगरी दोस्त चौबे जी के साथ गुजारी गई अपनी जिन्दगी के एक से एक लच्छेदार किस्से, दुकान पर बैठे हुए चौबे जी के पुत्र को सुनाते हैं। किस्सा की सख्या के साथ साथ उपन्यास की कथा आगे बढ़ती रहती है। दुकान बंद करने के साथ ही किस्से भी समाप्त होते हैं और उपन्यास भी। हिन्दी में इस प्रकार का शैली का लिखा गया कदाचित यह अकेला उपन्यास है। इस उपन्यास के प्रयोगात्मक उपन्यास' कहलाने की एक भूमिका यह है जिसका सम्बन्ध कथन की शैली अथवा भंगिमा से है। प्रयोग की दूसरी भूमिका का सम्बन्ध उपन्यास की वस्तु से है। जैसा कहा गया इस उपन्यास में न तो कोई धारावाहिक कथा है, और न ही सुनियोजित चरित्र।—कथा के नाम पर छोटे-छोटे तमाम रोचक प्रसग हैं जिनका सम्बन्ध सेठ बांकेमल तथा उनके स्वर्गीय मित्र की बीती हुई जिन्दगी से है। चरित्र केवल दो हैं, प्रत्यक्ष रूप में सेठ बांकेमल का, और परोक्ष रूप में उनके दिवगत मित्र चौबे जी का। दोनों ही इस उपन्यास के कथानायक हैं। भांति-भांति के रोचक और एक दूसरे से असम्बद्ध प्रसगों तथा अन्य चरित्रों को लेकर उपन्यास विधा के रूप में सामने आने वाली यह अकेली कथाकृति है। यह इस उपन्यास की दूसरी प्रमुख विशेषता है।

१- आलोचना-(जनवरी १९५६)-हिन्दी उपन्यास में नये प्रयोग-
—श्री ब्रजविलास श्री०-पृ० ४७।

उपन्यास की प्रयोगात्मक भूमिका का एक आयाम उनकी भाषा में भी सूचित होता है। नागर जी भाषा के अद्भुत पारखी हैं। उनके उपन्यासों में हमें समाज के विविध वर्गों की अपनी बोलियों के बड़े सजीव उदाहरण प्राप्त होते हैं। इस उपन्यास में उन्होंने अपने पात्र द्वारा मागरे तथा आगरे के व्यापारियों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली बोली में हो ... जिसका अपना अलग आकर्षण है। अभिव्यक्ति वस्तु-योजन तथा भाषा की अपनी विशिष्ट भूमिका के कारण नागर जी के इस उपन्यास को यदि प्रयोगात्मक उपन्यास कहा गया है, तो वह सार्थक ही है। किसी भी प्रयोगात्मक भूमिका के साथ सफलता तथा असफलता दोनों की सम्भावना रहती है। जहाँ तक नागर जी के प्रस्तुत उपन्यास का प्रश्न है नागर जी का प्रयोग पूर्णत सफल कहा जा सकता है।

'महाकाल' उपन्यास में बंगाल के अकाल की रोमांचकारी घटनाओं के सन्दर्भ में बड़ी ही गहन मानवीय संवेदनायें लिए हुए नागर जी ने उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया था। जितनी हृदय द्रावक उपन्यास की कथा वस्तु थी उतनी ही गहरी उसकी प्रभाव-क्षमता भी। इस उपन्यास में एक बिल्कुल विपरीत भूमिका के साथ नागर जी ने अपने कथाकार का परिचय दिया है। सेठ बांकेमल नागर जी की हास्य व्यंग्य प्रधान कृति है। इस उपन्यास के द्वारा उन्होंने सिद्ध किया है कि वे जितना ही गहन तथा गम्भीर मन स्थितियों के कुशल चितेरे हैं उतने ही सक्षम हास्य तथा व्यंग्य के लेखक हैं। वस्तुत नागर जी हास्य और व्यंग्य के क्षेत्र में अपनी सानी नहीं रखते। बहुत पहले स्वर्गीय बलभद्र दीक्षित पढ़ीस के कविता संग्रह 'चकल्लस' के नाम पर उन्होंने हास्य-रस का अभूतपूर्व साप्ताहिक चकल्लस निकाला था। उसमें 'नवाबी मसनद' नाम के स्तम्भ में धारावाहिक रूप से नवाब साहब और उनके आस पास के लोगों के सजीव रेखा-चित्र निकलते रहते थे। इन रेखा चित्रों में नागर जी ने लखनऊ के चौक मुहल्ले अर्थात पुराने लखनऊ के साधारण जनों की बोली बानी का ऐसा सजीव और रोचक उपयोग किया था जैसा रतननाथ सरशार के अतिरिक्त हिंदी उर्दू में अन्यत्र दुर्लभ था।[1] नागर जी की रचनागत विशेषताओं का परिचय देते हुए डा० रामविलास शर्मा आगे लिखते हैं वे हास्य रस के जाने माने लेखक हैं। हास्य के लिए वे आस पास के सामाजिक

जीवन स आलम्बन ही नही चुनते, पौराणिक गाथाओ और भटियारिनो के किस्से कहानियो का भी सहारा लेते हैं।"[१] हास्य और व्यग्य उभार के रूप में नागर जी की क्षमताओ का पता राजेन्द्र यादव के निम्नलिखित कथन से भी लगता है, जहा राजेन्द्र यादव ने नागर जी की इस क्षमता का सम्बन्ध प्रख्यात रूसी कथाकार चेखव से जोडा है। राजेन्द्र यादव के अनुसार 'सामन्तवाद की सिमटती समाप्त होती संस्कृति भाषा बोली और समग्रत वह जीवन, नागर जी के कथाकार का प्रिय विषय रहा है। उसका अध्ययन उन्होने बडी लगन और फुरसत से किया है, बड स्नेह और चाव से उसकी बातें सुनी हैं। नागर जी को मैं इसीलिए भारत का अद्वितीय हास्य लखक मानता हू कि वे कभी हास्यास्पद परिस्थितिया नही गढते। उनका हास्य एक विशेष सस्कृति और समाज में पली मानसिकता और मनोविज्ञान की वह मजबूरी है, जिस पर हम हसते हैं। लखक को हमारे हसने पर कोई आपत्ति नही है, लेकिन वह मजबूरी से सहानुभूति रखता है, इसलिए खुद नही हसता।--चेखव स जहा नागर जी की बहुत सी बातें मिलती हैं वहा हास्य का यह तरीका भी मिलता है।'"[२]

य उद्धरण नागर जी के उपन्यासो की हास्य और व्यग्य सबधी सफलता पर सार्थक टिप्पणी करते हैं। 'सेठ बाकेमल' हास्य और व्यग्य के ताने बानो से बुना हुआ एसा ही सफल उपन्यास है, जो नवाबी मसनद, 'तुलाराम शास्त्री,' 'एटम बम' जसी कृतियो के रचयिता नागर जी की हास्य और व्यग्य-क्षमता को दो कदम आग जाकर स्पष्ट करता है। इस उपन्यास में भी, इस भूमिका की नागर जी की अन्य कृतियों की भाति, हास्य और व्यग्य ही लेखक का साध्य नहीं है, वरन इस हास्य और व्यग्य के माध्यम स एक नष्ट होती हुई पीढी और उसकी सस्कृति को अमर कर दिया गया है। नागर जी का यह वह उपन्यास है जिसमे उन्होने सेठ बाकेमल अर्थात बीते हुए सामतवाली युग की सामाजिक सास्कृतिक परम्पराओ के साथ उसके अपने खुद के व्यक्तित्व को भी साकार कर दिया है।-इसी सदभ में राजेन्द्र यादव का यह कथन सार्थक लगता

१– आस्था और सौंदर्य–डा० रामविलास शर्मा–पृ० १३३।

२– विवेक के रग–स०–डा० देवीशकर अवस्थी–दो आस्थायें– लेखक राजेन्द्र यादव–पृ० २५८

३— आस्था और सौंदर्य–डा० शर्मा– पृ० १३३।

है कि जहाँ सेठ बाँकेमल में हम "एक युग अपनी सारी विशेषताओं के साथ देखते हैं, वहा वे बहुत ही साधारण लेकिन बेजोड़ आदमी भी हैं। बाँकेमल और बलचनमा (नागार्जुन) अपने पुराने संस्कारों के साथ नई सभ्यता का ऐसा गंगा जमुनी समन्वय देते हैं कि दो अद्भुत व्यक्तित्व सामने आते हैं।"[1] हास्य और व्यंग्य के साथ सामाजिक सोद्देश्यता का गहरा समन्वय नागर जी की इन कृतियों की वह उल्लेखनीय विशेषता है, जो इन्हें सस्ते प्रकार की हास्य व्यंग्य रचनाओं से सहज ही अलग कर देती है। 'सेठ बाँकेमल' उपन्यास के हास्य और व्यंग्य का यह महत्वपूर्ण सामाजिक सन्दर्भ ही है, जो उसे विशिष्टता देता है।

संक्षिप्त कथावस्तु –

हम कह चुके हैं प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु एक दूसरे से असंबद्ध, परन्तु दो घनिष्ठ मित्रों के व्यतीत जीवन से जुड़े हुए कतिपय रोचक प्रसंगों का एकत्र रूप है। ऐसी स्थिति में उसका कोई तारतम्य प्रस्तुत करना बहुत आवश्यक नहीं है।

सेठ बाँकेमल आगरे के एक व्यापारी हैं। अपनी समझ में उन्होंने एक शानदार जिंदगी बितायी है। उस जिन्दगी की यादें इस प्रौढ़ावस्था में भी उन्हें भूली नहीं हैं यद्यपि जमाना बदल गया है। स्वभावतः जमाने की ये बदली हुई भूमिकाएं उनकी अपनी जीवन पद्धति तथा चिंतन मनन के अनुकूल नहीं हैं, परन्तु अवसर पाते ही सेठ बाँकेमल अपनी बितायी हुई जिन्दगी के बीच पहुंच कर जैसे आगे जीने का एक सहारा खोज लेते हैं। उनके सामने भविष्य का कोई सवाल नहीं है। वर्तमान से उन्हें बहुत असंतोष है यह तो उनके द्वारा भोगा गया वह शानदार अतीत ही है जो उन्हें वर्तमान की सारी विरसता के बीच जीने का सहारा दिये हुए है। सामंतवाद की मिटती हुई आकृति और सामंतवादी जीवन व्यवस्था में पलने वाले एक वर्ग विशेष की वे जीती जागती प्रतिमूर्ति हैं। यही बात उनके दिवंगत साथी चौबे जी के बारे में भी कही जा सकती है, जिनका उल्लेख अपनी बातों के बीच सेठ बाँकेमल बार बार करते हैं। अपने दिवंगत मित्र चौबे जी के लड़के को देखते ही उनकी आंखों

१— आलोचना-अंक-हिन्दी के सामाजिक कथानायकों का विकास— राजेन्द्र-यादव— पृ०-४८।

के सामने उनका पुराना जीवन नाच उठता है, और वे उसे अपने जीवन के वे रगीन किस्से अपनी खास भाषा और खास अदाज मे सुनाने लगते है। किस प्रकार व तथा चौबे जी बम्बई गये दोनो ने मिलकर बम्बई के सेठो को ठगा और हजारो की पूजी बनाकर लौटे किस प्रकार दिल्ली जाकर राजाओं और नवाबो को बेवकूफ बनाया, गाकुल पहुचकर किस प्रकार पनिहारिनो से छेड छाड की कृष्ण कन्हैया बने और चतुराई मे प्राण बचा कर वहां से छुटटी पाई, कसे उनके दोस्त और गुरु चौबे जी ने पजाब के गडा सिंह पहल्वान को आस मान दिखाया, कसे खानदानी रडियो के कोठो मे दोनो दोस्तो ने ऐश आराम किये, कस शाहजहां बादशाह ने अपना कलजा कूटा कृष्ण जी मोहम्मद बने, मूगा राम डाक्टर ने भूखे बगाली के पेट की आतो में चिपके हुए कनखजूरो को मुह के जरिये छिपकली भेजकर बाहर निकाला और नाम पैदा किया कसे उसने लाटिनो की छीकें बद की, आदि रोचक से रोचक किस्सा, गप्पो और खुद बांकेमल के शब्द मे 'तरकटी' बाता से उपन्यास की कथावस्तु भरी हुई है। यही नहीं तीर तल्वार की आशिक माशूकी जसे और किस्से भी हैं जो मिल जुलकर उपन्यास को न कवल एक व्यक्ति वरन एक समूचे के समूचे वग और उसकी मिटती हुई सस्कृति का यथाथ चित्रागार बनाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के किस्सा की सजीवता और उन किस्सा के बीच से झाकता हुआ मिटत सामतवादी जीवन का यथाथ कथावस्तु की सबसे आक-पक विशेषता है। किस्से भले ही कपोल कल्पित हो, कोरी गप्पो पर आधारित हों परन्तु इन कपोल कल्पना तथा गप्पो क मूल में निहित बीत हुए सामाजिक जीवन के यथाथ को नहो भुलाया जा सकता। मीठी चुटकिया लने में भी नागर जी उस्ताद हैं। और वस्तुत यथाथ का एक बडा अश वे इस माध्यम से भी उभारत हैं। नागर जी की यह कला भी इस उपन्यास मे पूरी विविधता के साथ प्रत्यक्ष हुई है। नागर जी की 'नवाबी मसनद' कृति की भूमिका में डा० राम विलास शर्मा ने लिखा था गप्प लिखना भी एक आर्ट है और कल्पना की तगडी कसरत पर निभर है। लेकिन ये गप्पें सब कल्पना पर निभर नहीं, यथाथ की इतनी एसी तगडी बक ग्राउण्ड है कि गप्प मारने वालो पर आप कभी शक नही कर सकते। पात्र सभी अपनी विशेषताए लिए सजीव और विचित्र पाठक के सामने उपस्थित होते हैं। [१]

१— नवाबी मसनद – भूमिका – डा० रामविलास शर्मा।

सजीवता रोचकता तथा उनके मूल म गहरे यथार्थवादी सन्दर्भ सबके सम्मिलित प्रयत्नों से उभरता हुआ उतना ही गहरा सामाजिक आशय, पुराने और नये युग तथा उनकी अपनी जीवन पद्धतियों का सघर्ष साथ ही कतिपय सजीव चरित्रों की स्थिति, सेठ बाँकेमल' उपन्यास की कथावस्तु की आकर्षक विशेषताए हैं।

चरित्र सृष्टि –

उपन्यास म दो ही चरित्र प्रधान हैं—सेठ बाँकेमल और चौबे जी। ये दोनो चरित्र वस्तुत एक ही हैं और मिल जुल कर सामतवादी व्यवस्था के एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के बावजूद दोनो वस्तुत टाइप चरित्र ही हैं। इन चरित्रों के माध्यम से नागर जी ने पुराने युग को आज के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। सेठ बाँकेमल एक दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दी उपन्यास का एक अद्भुत चरित्र है जो बड़ ही सहज तरीके स अपने युग की, जिसमें उसकी जिंदगी का अधिकांश बीता है, प्रगतिशील तथा प्रतिक्रियावादी दोनो भूमिकाओ को स्पष्ट करता है। उसम प्राचीनता क प्रति अंध भक्ति है लोगों को मूर्ख बनाने और ठगने म उसे कमाल हासिल है, नाच गाने, महफिल भाग-बूटी, यहा तक कि आज की भाषा म जिसे गुण्डागर्दी, छलापन या आवारापन कहते हैं ये सब बातें भी उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग हैं। 'खाओ पियो और मौज उड़ाओ' जसे सिद्धात पर उसकी आस्था है।[१] आशिक माशूकों के किस्से उसकी जबान पर हैं। गोकुल में गाव की पनिहारिनो से छेड़छाड करने म भी वह नहीं चूकता। नये जमाने तथा नई रोशनी का वह कट्टर विरोधी है। इस प्रकार की और भी बहुत सी बातें हैं, जो उसे एक पुरानी जीवन व्यवस्था का प्रतिनिधि बनाती हैं, परन्तु उसके चरित्र का एक दूसरा पक्ष भी है —और यह पक्ष भी उसके साथ-साथ पुरानी जीवन व्यवस्था स ही सम्बन्धित है। पहले की तुलना म यह पक्ष सेठ बाँकेमल और उसके युग को एक नये और उज्ज्वल रूप म भी प्रस्तुत करता है कहा जा सकता है कि जिसका आज की जीवन व्यवस्था और आज के मनुष्य म बहुत कुछ अभाव है। यदि एक स्तर पर सेठ बाँकेमल निठल्ला छला, शोहदा ठग, फक्कड मस्त तथा अपनी ही रंगीनियों म डूबा हुआ व्यक्ति है

१— सेठ बाँकेमल— पृ० १११।

तो दूसरे स्तर पर वह घोर मानवतावादी यहा तक कि प्रगतिशील भी है। व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो भूमिकाओ पर उसका मित्र प्रेम आदर्श है। जितने उत्साह म, भावनाओ के तल मे डूबकर वह अपने मित्र चौबे जी के क्रिया-कलापो का बखान करता है, उसकी इस भावना का अपना महत्व है। गरीबो तथा दीन दुखियो पर वह हजारो रुपया आसानी स जुटा सकता है, उसे उनसे हार्दिक सहानुभूति है। देवीदयाल की लडकी के विवाह के अवसर पर पुराण-पथियो का वह जमकर विरोध करता है और देवी दयाल की दरिद्रता के बाव जूद उसके आत्मसम्मान की रक्षा करता है। वह साम्प्रदायिक भावना से ऊपर उठा हुआ आदमी है। मुसलमान बादशाह शाहजहा के दु ख की याद करते हुये उसकी आखें गीली हो जाती हैं।—अग्रजो तथा अग्रज परस्त हिन्दुस्तानियो से उसे सख्त नफरत है। सेठ बाकेमल तथा उसके मित्र चौबे जी के चरित्र का यह पक्ष अनूठा है। इनके चरित्र की ये विशेषताए वस्तुत इनके अपने भोगे हुए युग की विशेषताए हैं। इन विशेषताओ तथा इनके चरित्र के पहले पक्ष के कारण इनके समूचे चरित्रो मे जो अन्तर्विरोध दिखाई पडता हैं वह भी उस युग का अन्तर्विरोध है जो गुजर चुका है और अब जिसके अवशेष मात्र रह गये हैं। कुल मिलाकर सेठ बाकेमल और उनके मित्र चौबे जी के चरित्र, नागर जी की लेखनी द्वारा उपजे हुये वे चरित्र हैं जो हिन्दी उपन्यास म विरलता से प्राप्त होगे। राजेन्द्र यादव ने तो यहा तक कहा है कि "वर्णनात्मक शैली की सजीवता की दृष्टि से भारतीय साहित्य के बाहर भी ऐसा मस्त चरित्र मिलना मुश्किल है।"[१]

'सेठ बाकेमल' उपन्यास की सजीवता का सबसे बडा प्रमाण उसकी सवादगत तथा भाषा गत रोचकता है। वर्णनात्मक शैली का आश्रय लेकर भी नागर जी ने उक्त विशिष्टता को प्राप्त कर लिया है। भाषा तथा शैलीगत रोचकता तथा सजीवता ही उपन्यास के चरित्रो को भी उनके अपने व्यक्तित्व के साथ उभारने में सफल रही है। सामान्य भाषा और सामान्य शैली म अपनी सारी विशेषताओ के साथ भी उपन्यास के चरित्र उतने सजीव न बन सकते थे। चरित्रो की रेखाओ को उभारने म नागर जी की वर्णन शैली तथा आचलिक भाषा कितनी दूर तक सहायक हुई है इसका प्रमाण वे रेखा चित्र हैं जो उपन्यास के सक्षिप्त कलेवर म भी यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं।

१— आलोचना-अक-हिन्दी मे सामाजिक कथानायको का विकास—पृ० ४८।

कतिपय उद्धरणों द्वारा हम प्रस्तुत उपन्यास की वर्णन शैली, भाषा तथा चरित्रों की मनःस्थितियों को प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। ये उद्धरण इस उपन्यास की समग्र विशेषताओं का जिनका उल्लेख अपने विवेचन में हमने किया है, आसानी से स्पष्ट कर देंगे

"हाय मेरे प्यारे तुमसे क्या कहू, देखने लायक फैसन विस दिन चौबे जी का। शानदार मखमली तो जूता मारा मखमली पाड की कलकत्ते की चुन्नटदार धोती। चिकन का भर्रोटदार कुर्त्ता। विसपे भइयो, नीले मखमल पे काम की हुई वास्कट डाटा। और फिर जो जोधपुरी साफा लगा के चला है मेरा यार अकडता हुआ, तो सडको पे हटो बचो होने लगी भइयो, तुझसे झूठ नही कहू हू। (पृ० ७)

फिर तुमसे क्या कहू भयो जोमे जवानी की बात है। ससुरे आसिकों मासूको की नाव पर तरने लग हम लोग। तू यकीन मानिये भइयो, गद्दी पर बैठा हू, मथा का वखत है जो झूठ बालू तो दुकान म आग लग जाय इसी दम। एक पैसा नही लिया और आने न दे। होटल म सामान मगवा लीना भइयो। आठ दिन तक विस्के घर रहे। चौबे जी मेरे यार ने वो हजारो रुपये वहा फूक दीने। और ऐसी चादी काटा कि बडे-बडे मुगल बाद साही को भी नसीब न होवे। अब तो भइयो, क्या कहू ये ससुरी पर म गठिया हो गई है कि टाग साली फिरगी हुई चली जाय है। न वे उमरें रही, भइयो, न वह जमाने रहे न वह चौबे एसा मेरा यार। हाय मेरे प्यारे, अरे साले तू मुझे छोड कर चला गया रे।" (पृष्ठ–१६)

'मुझे तो छिमा करियो बडा गुस्सा आवे है आज कल के लौंडो प। साला की नसा मे खून ही नही, पानी दौडे है पानी। लौंडे थाड ही हैं, लौंडिया हैं लौंडिया। रडियो की तरह से ससुरी माग पटिटया निकाल लीनी और चल मव मूछ मुडा के सिगरेट पाते हुए। बडी तोपची समझते हैं–ससुरे। होगा क्या अभी म्हराज अगरेज हार जाय हिटलर यही आवे दन स पहुचेगा और जहा देखा साब मूछें-फूछें तो हैं ही नहा कोई के ससुरी भारतवर्ष म लौंडिया हैं। मजा करो यार। पिल पडगा साला पिल पडगा। कोच्छ नही आई योप डमफूल, खुस कट साले, फौवम।' (पृ० ४३)

'अबे जा, जा। बडा आया है अगरेजो की हिमायत करने वाला' सेठ बांकेमल जरा अकड के एक हाथ पीछे हटते हुए तन म आकर बोल

"तोप-बदूक क्या है म्हराज, जहा एक मन्तर पढ के तीर फेंका, तो देख लो फिर कहीं इनका पता भी नहा चल सकेगा। म्हाभारत मे लिखा है कि नही, कसे कसे तीर थे ससुरे कि अग्नि बान छोड दीना, सारा बिरमाड खाक हो गया ससुरा। तिराह-तिराह मच गई। साब, भगवान खुसकैट बने हुए खुद हाथ जोड के आये थे, अजुन के पास कि अबे जाने दे पट्ठे जाने दे। भौत हो गई। अजुन ने भी कही, भयो, अच्छा तुम कहो हो तो तुम्हारी खातिर छोड दू हू, नही तो म्हराज, ये महादेव जी का तीर है, ससुरा ज्हेर में बुझा हुआ—और मैं तो जानू हू भया देख" (पृ० ४२-४३)

"पहले भयो, कुयें थे और हाथ की चक्की का आटा था। घर म बहू-बेटियो न मिल क पानी खीचा, आटा पीसा। ताजामाल भैयो, रोज का रोज खान को मिले था। और औरतें ससुरी गडा बनी रहते थी। खुद ही देख लो, बडी बूढिया अब भी जो काम करके पटक देंगी वो आजकल की लमडिया से कहा होग भया ? मिनट मिनट में तो ससुरा हिस्टीरिया किहें घर दबावे है। काञ्छ नही खुसकैट ससुरी। फैसन हैं साले, जार्जेट की साडिया बनगा साब, जिसम साला सब बदन उघाडा दीखे। जब एसी मतें बिगड गई हैं ता हिस्टीरिया न होंग और ससुरे क्या होगे साले ? ससुरे लडके पदा होवे हैं आजकल ? साले चूहे के बच्चे। किस जमाने मे मा-बाप तन्दुरस्त होवें थे भयो—औलाद साली पैदा होने ही साल भर की मालुम पडे थी।" (पृ० ५४-५५)

इसी हमारे भारतवर्ष मे औरतें सती होवें थी, तिनको देवी मान के पूजे थे। अपनी इज्जत बचाने के लिए ससुरिया आग मे जल के भसम हो जाया करें थी और अब ये जमाना आन लगा है के घर के घर में सब औरतें-लडकिया ऐसे ऐस बाईसकोप देख देख के रंडिया हुई चली जाय साली। —नई मैं जे नई - कऊ हू के पेले के जमाने म सुद्ध पवित्तर ही थे, ऐसी कोई वारदता होवेई नही थी। नई, होवें थी जरूर पर बहुत कम-और सो भी बडी दबी-ढकी भयो।' (पृ० १००)

उक्त उदाहरण सेठ बाकेमल उपन्यास के समग्र वस्तु तथा रचना सौंदय को स्पष्ट कर देते हैं। सामाजिक यथाथ के सजीव चित्रण की जो भूमिका महाकाल उपन्यास मे है वह यहा भी अपने पूरे निखार पर है। जैसा हम कह चुके हैं एक मिटते हुए वग और एक मिटती हुई सस्कृति को हास्य और व्यग्य की धार से गुजारते हुये यथाथ की सजीव छवियो के साथ प्रस्तुत

करने के कारण, अपने छोटे कलेवर के बावजूद यह उपन्यास नागर जी के कृतित्व म महत्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है। हिन्दी म हास्य और व्यग्य की, गहरे सामाजिक आशयो स पूर्ण कथा कृतियो का लगभग अभाव है। भिन्न भिन्न लेखको के उपन्यासो म हास्य और व्यग्य की यत्र तत्र झाकिया जरूर मिलती हैं, परन्तु एसी समूची कृति उपलब्ध नही होती। इस दृष्टि से भी नागर जी की इस कृति का महत्व है। यह नागर जी के कृतित्व का सम्बन्ध सीधे भारतेन्दु और उनके युग के लेखको की उस परम्परा से जोडती है, जो अपने हास्य और व्यग्य के लिए प्रसिद्ध था।

अध्याय-६

बूंद और समुद्र (१९५६)

●

"व्यक्ति व्यक्ति अवश्य रहे, पर उसके व्यक्तिवादी चिन्तन में भी सामाजिक दृष्टि-कोण का रहना अनिवार्य हो। मैं अकेला भी हू, पर वहुजन के साथ में हू। दुख-सुख, शाति-अशांति आदि व्यक्तिगत अनुभव ह, पर ये समाज में प्रत्येक व्यक्ति के ह, अतएव हमें यह मानना चाहिये कि समाज एक है—व्यक्ति तो अनेक ह। सूय, चद्रमा, धरती यह सब एक ह—भले ही अनेक तत्वो से इनका निर्माण हुआ हो।"

—'बूद और समुद्र' पृ० ६०३

"बूँद और समुद्र"

'महाकाल' और 'सेठ बाँकेमल' के पश्चात् नागर जी का यह तीसरा उपन्यास है, जो अपने आकार में ही नहीं अपने उद्देश्य तथा महत्व में भी उनके दोनों उपन्यासों की तुलना में अधिक व्यापक तथा अधिक गम्भीर भूमियों का परिचय देता है। प्रथम बार नागर जी ने इतने विस्तृत कलेवर में किसी उपन्यास की रचना की है। प्रस्तुत उपन्यास में नागर जी ने जिस व्यापक सामाजिक जीवन का चित्रण किया है वैसा व्यापक चित्रण उनके पूर्व के उपन्यासों में नहीं मिलता है। सामाजिक जीवन के साथ साथ व्यक्ति-जीवन और युग-जीवन को भी नागर जी ने अत्यन्त गहराई में जाकर उपन्यास में प्रस्तुत किया है। अपने इस विराट सामाजिक भावों के चित्रण के कारण तथा व्यक्ति व युग जीवन के यथार्थ को उसकी अधिकाधिक सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने के कारण इस उपन्यास को हिन्दी के लगभग प्रत्येक मान्य समीक्षक ने नागर जी के उपन्यासकार की बहुत बड़ी उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया है। कतिपय समीक्षकों ने इसे क्लासिकल परम्परा का उपन्यास माना है[1] और कुछ ने इसे महाकाव्यात्मक भूमिका का उपन्यास कहा है।[2] हिन्दी समीक्षकों का बहुमत इसे आंचलिक उपन्यास की कोटि में रखने का आग्रही है।

अब तक हिन्दी में जितने भी आंचलिक उपन्यास रचे गये हैं वे सब ग्राम्य जीवन से ही सम्बन्धित रहे हैं। किसी एक विशिष्ट ग्राम्य-अंचल की अपनी बोली-बानी में वहाँ के रहन-सहन, रीति रिवाज, आचार विचार,

---

१– माध्यम-मई १९६५ 'व्यक्ति और समाज के बीच एक निष्क्रिय प्रतिक्रिया' –डा० रघुवंश–पृ० १००।

२– (क) आस्था और सौन्दर्य–डा० रामविलास शर्मा–पृ० १३४।
(ख) विवेक के रंग–दो आस्थाएं–राजेन्द्र यादव–पृ० २५१।

त्योहार-उत्सव मतलब सम्पूर्ण सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को, उस ग्राम्य अचल की अपनी प्रकृति अपने दुख-दर्द, हर्ष-उल्लास तथा अपनी खास समस्याओं को इस प्रकार उसके समूचे व्यक्तित्व को यथार्थ की गहराई मे आकर्षक रगो में प्रस्तुत करना इन आचलिक उपन्यासो की प्रमुख विशेषता रही है। नागार्जुन तथा रेणु के उपन्यास इस कथन के उदाहरण माने जा सकते हैं। 'बूद और समुद्र' पहला प्रमुख उपन्यास है जिसमे आंचलिकता का सम्बन्ध नागरिक जीवन से है। इस उपन्यास म नागर जी ने लखनऊ के प्रमुख तथा पुराने मुहल्ले चौक में केन्द्रित रहकर उस मुहल्ले की अपनी खास रेखाओ को वहा क समूचे सामाजिक जीवन को वही की बोली-बानी में, एक सजीव व्यक्तित्व देने की चेष्टा की है। लखनऊ नगर के इतर जीवन तथा हिन्दुस्तानी समाज के व्यापक सामाजिक जीवन को भी व अधिकाशत कलापूर्ण ढग से चौक की अपनी सीमाओं मे ले आये हैं। उनके इस प्रयास का ही परिणाम है कि बावजूद एक नागरिक परिवेश के उपन्यास अपनी आंचलिकता में वसा ही सजीव, आकर्षक तथा पुष्ट बन सका है जसा ग्राम्य जीवन की भूमिकाओ को लेकर लिखे गये अन्य आचलिक उपन्यास।

प्रस्तुत उपन्यास म एक खास मुहल्ले के माध्यम स सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक जीवन को लेखक ने बडी ही कुशलता स प्रस्तुत किया है। चौक मुहल्ले का अपना सामाजिक जीवन बूद का स्थानापन्न है, तो वृहत भारतीय समाज को समुद्र की सज्ञा दी जा सकती है। उपन्यास के नायक की एक साथकता तो यही है। इस उपन्यास मे नागर जी ने व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धो की समस्या को भी उठाया है और दोनो के अपने विशिष्ट महत्व का प्रतिपादित किया है। उनका कहना है कि कोई भी समाज सार्थक व्यक्ति के अभाव में न तो सुदृढ ही बन सकता है, और न ही उसका विकास हो सकता है इसी प्रकार बिना एक गहरे सामाजिक आधार के व्यक्ति का अपना अस्तित्व भी सदिग्ध है। व्यक्ति से समाज की महत्ता है और समाज स व्यक्ति की। उपन्यास के शीर्षक का एक महत्व व्यक्ति और समाज सम्बन्धी लेखक की इस विचारणा म निहित है। व्यक्ति यदि बूद है तो समाज समुद्र। बूद-बूद जुडकर ही महासागर बनता है, और व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर समाज बनाते हैं। बूद से भिन्न सागर का कोई अस्तित्व नही, सागर से निरपेक्ष बूद की अपनी कोई महत्ता नहीं। सागर एक भूमिका पर यदि बूद है, तो दूसरी भूमिका पर समुद्र। यही बात व्यक्ति और समाज के लिए भी कही जा सकती है। दोनो परस्पर अभिन्न होते हुए

भी अलग है और अलग होने हुए भी अभिन्न कम स कम सही स्थिति यही है, जिसका नागर जी ने दृढ़ता स प्रतिपादन किया है। बूद का महत्व अपनी जगह है, और समुद्र का अपनी जगह। व्यक्ति अपनी भूमिका पर सार्थक है, समाज अपनी भूमिका पर और दोनो मिलकर अपने आप म सार्थक सजीव तथा सपूर्ण हैं।

प्रस्तुत उपन्यास क सम्बन्ध म मान्य समीक्षकों क बीच पर्याप्त चर्चाए हुई हैं। अपनी व्यापक भूमिका गहरी सोद्देश्यता यथार्थ दृष्टि तथा सम्पन्न चित्रण क कारण समीक्षको ने इस मात्र महत्वपूर्ण ही नहीं महान् उपन्यास भी माना है। डा० रामविलास शर्मा न बूद और समुद्र' को 'पुरानी समाज व्यवस्था क टूटत बिगडते और बदलते हुए भारतीय परिवार का महाकाव्य कहा है।[१] श्री राजेन्द्र यादव इसी महाकाव्यात्मक भूमिका की ही दृष्टि स अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करत हैं—'गोदान के बाद बूद और समुद्र को उत्तर भारतीय जीवन का दूसरा महाकाव्य कहा जा सकता है।[२] प्रस्तुत उपन्यास क महत्व का आकलन करते हुए श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी कहत हैं—'नागरिक जीवन के केन्द्र मुहल्ले को लेकर इतना सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक अध्ययन अभी तक नहीं हुआ। सच तो यह है कि एक विशेष क्षेत्रीय जीवन को उभारने की दृष्टि स हिन्दी में जो उपन्यास लिखे गये हैं उनमे नागर जी की यह कृति शीर्षस्थ है।'

इस प्रकार बूद और समुद्र' अपने व्यापक रंगमंच तथा उस रंगमंच म प्रस्तुत किए जाने वाले इतने ही व्यापक तथा विस्तृत जीवन चित्रण व्यक्ति और समाज के समन्वय की गभीर समस्या को उठाने और एक सही समाधान इंगित करने वाले उपन्यास के रूप में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों की प्रथम पंक्ति का अधिकारी घोषित किया गया है।

सक्षिप्त कथावस्तु –

हम कह चुके हैं कि प्रस्तुत उपन्यास अपने आकार-प्रकार में अत्यंत

१— आस्था और सौन्दर्य– डा० रामविलास शर्मा– पृ० १३४।
२— विवेक के रंग (स० देवीशंकर अवस्थी) दो आस्थाएं'– राजेन्द्र यादव– पृ० २५१।
३— हिन्दी नव लेखन– डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी– पृ० ११८।

वहृत है और आकार प्रकार में ही नही अपनी वस्तु मे भी पर्याप्त सपन्न। बूद तथा सरिताओ के समान छोटी-बडी कथाओ रेखा चित्रों तथा सबद्ध प्रसगा की तमाम धाराए मिल जुल कर उप यास के उद्देश्य रूपी महासागर को सपन्न करती हैं। प्रमुख तथा गौण सभी कथाओ का उपन्यास के प्रयोजन से किसी न किसी रूप मे सम्ब ध है और सब प्राय एक दूसरे से भी सम्बन्धित हैं। इन सारी कथाओ, उपकथाओ तथा कथा प्रसगो को सक्षेप मे प्रस्तुत करना स्थानाभाव के कारण सभव नही है। यहा हम कथानक के प्रमुख सूत्रो को ही स्पष्ट करते हुए उनके माध्यम से कथावस्तु का परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

उपन्यास की कथा का मुख्य सम्बन्ध यो तो लखनऊ के चौक मुहल्ले से ही है पर तु इस मुहल्ले के अपने चित्रण के माध्यम से लेखक ने लखनऊ नगर के अलावा सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया है। इस काय के लिए अनेक भूमिकाओ के अनेक प्रमुख चरित्र तथा गौण पात्रों की एक समूची की समूची सष्टि ही खडी करनी पडी है। उपन्यास की कथाओ और उपकथाओ का सम्बन्ध इसी सपूर्ण चरित्र सष्टि से है। चौक मुहल्ले से लकर, उपन्यास के प्रमुख अप्रमुख सभी चरित्रो का अपना एक इतिहास है, उनके क्रिया कलाप हैं, जिन्होने उपन्यास की कथावस्तु को आकार प्रदान किया है।

ताई का चरित्र और उनकी कथा उपन्यास की पहली प्रमुख कथा है। वे राजाबहादुर सर द्वारिकादास का परित्यक्ता पत्नी हैं और पति से अलग राजाबहादुर के पुरखा की अपनी हवली म रहती हैं। राजाबहादुर लखनऊ के रईसो की नाक हैं। उनके जीवन म जब पत्नी के रूप मे ताई का प्रवेश हुआ था, उन्ह खाने के लाल पड हुए थ। ताई लक्ष्मी स्वरूपा बन कर उनके घर आई। विवाह क बाद राजाबहादुर का भाग्य पलटा और उनके वभव क दिन आये। कि तु अनेक कारणो से ताई सास की नजरो में न चढ न सकी। उन्हें सास की घणा ही नसीब हुई। इसी बीच व एक लडकी की माँ बनी, परन्तु सास तथा घर क अय सदस्यों के ताने उन्ह सुनने पडे। उन्हें कुछ ऐसा सदेह हुआ कि जैसे घर वाले उनकी लडकी को मार डालना चाहते हैं, फलस्वरूप व घर वालों से अलग, घर के ही एक कमरे म उसी को अपना ससार समझ अपनी पुत्री के साथ रहने लगी। ताई की लडकी आठ महीने की होकर चल बसी। ताई का प्रारम्भिक शोक धीरे धीरे एक भयानक प्रतिहिंसा-में बदला जिसने उनके समूचे व्यक्तित्व और समूची जीवन धारा क। अवांछित

दिशाओं की ओर मोड दिया। वे घर की सम्पूर्ण शांति को खा बैठीं। राजा बहादुर द्वारकादास ने दूसरा विवाह करने का निश्चय किया और जिस दिन उनकी नई पत्नी घर मे उतरी, ताई ने उसी दिन घर छोड दिया और द्वारकादास के पुरखो की पुरानी हवेली में चली गई। अब ताई न केवल घर की ताई वरन सम्पूर्ण चौक मुहल्ले और सारे शहर की ताई बन गई। उनका स्वभावगत प्रतिहिंसा राजाबहादुर और उनके परिवार पर ही नही समूचे-मुहल्ले पर टूटने लगी। लडाई झगडा, टोना टुटका, आटे के पुतले बना बना कर लोगो के घर रखना ही जैसे उनका लक्ष्य बन गया। इसी बीच उनके जीवन में सज्जन का प्रवेश हुआ, जो लखनऊ के ही रईस घराने का व्यक्ति था। चित्रकार होने के नाते उसकी अपनी विविधि रुचियां थीं। वह मुहल्लों के लोगो के जीवन का अध्ययन करने के लिए अपनी हवेली छोड कर चौक मुहल्ले में ताई के घर किरायेदार बना। सज्जन पहला व्यक्ति था जिसे ताई का प्यार मिला। ताई के जीवन के अनेक छोटे बडे महत्वपूर्ण प्रसंग इस चौक मुहल्ले मे घटित हुये। स्वभाव से कठोर, मुहल्ले भर के लोगों की मृत्यु की मनौतियां मनाने वाली, नारी सुलभ-ममता से सर्वथा शून्य ताई अन्तत अपनी समूची मानवीयता लिये हुए स्वर्ग मृत्यु की गोद में चली गई। उनकी मृत्यु ने समूचे मुहल्ले को शोक मग्न कर दिया। ताई के सम्पूर्ण जीवन की यह कथा उपन्यास की एक प्रमुख तथा सबसे महत्वपूर्ण एवं मार्मिक कथा है।

उपन्यास की दूसरी प्रमुख कथा सज्जन से सम्बन्ध रखती है। सज्जन एक चित्रकार है जिसे विरासत के रूप में पूर्वजों की अपार धन सम्पत्ति प्राप्त हुई है। सामान्य जन-जीवन से अपरिचित वह उससे परिचय प्राप्त करने के लिए चौक मुहल्ले मे ताई का किरायेदार बनता है। उसके मन मे सामाजिक जीवन में सक्रिय भाग लेने की इच्छा है। उसकी अपनी एक मित्र-मंडली भी है। घटना क्रम का विकास सज्जन का परिचय इसी बीच वनकन्या नामक प्रगतिशील विचारों की एक लडकी से कराता है वनकन्या अपने पारिवारिक वातावरण से भयानक रूप से विक्षुब्ध है। परिवार की समूची अनैतिकता के बीच अपनी प्रगतिशील आस्थाओं को वह सम्भाले रहती है परन्तु उसके प्रगतिशील विचार उस अनैतिकता से अपना सामंजस्य नहीं बिठा पाते। वह अपने पिता तथा परिवार वालो से विद्रोह करती है और अपने अपराधी पिता के खिलाफ जनमत का सहारा लेकर मुकदमा लडती है। सज्जन तथा उसके मित्र कर्नल और महिपाल वनकन्या की सहायता करते हैं। वनकन्या के साहचर्य से सज्जन के जीवन को एक नई दिशा मिलती है। अब तक काम और

विवाह के प्रश्न पर उसकी अपनी स्वच्छन्द धारणाए थी, और इन धारणाओ के कारण ही वह अनेक नारियो के सम्पर्क मे आ चुका था। वनकन्या उसे प्रेम और विवाह के सम्बन्ध मे नई धारणा देती है। वनकन्या और सज्जन के पारस्परिक सम्बन्धो को लेकर कथा मे अनेक प्रकार के उतार चढाव आते हैं परन्तु अन्तत दोनो एक सूत्र मे बध जाते है। सज्जन का परिचय इसी बीच पागलों की सेवा करने वाले साधु बाबाराम जी से होता है। बाबाराम जी का व्यक्तित्व सज्जन को गहराई से प्रभावित करता है और वह सामाजिक कल्याण के लिए अपने जीवन तथा अपनी सम्पत्ति का उपयोग करने का व्रत लेता है।

कथा का तीसरा प्रमुख सूत्र महिपाल, उसकी पत्नी कल्याणी तथा प्रेमिका डा० शीला स्विग को लेकर गतिशील होता है। महिपाल प्रगतिशील विचारो का, साथ ही मध्य वर्गीय सस्कारो से बधा लेखक है। उसका भरा पूरा परिवार है परन्तु पेशे के रूप मे अपनाया गया लेखन धर्म उसकी आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति नही कर पाता। वह प्राय धन का अभाव रहता है। अपनी दृष्टि मे तथा अपने मित्रो की दृष्टि मे भी महिपाल एक प्रतिभा-सम्पन्न बडा लेखक है, परन्तु उसके घर मे उसके इस बडप्पन का कोई महत्व नही। उसकी पत्नी कल्याणी परम्परागत मान्यताओ तथा आदर्शों को मानने वाली, एक पतिव्रता, अशिक्षित और रूढिवादी पत्नी हैं। उसके मन मे अपने लेखक-पति को लेकर महत्व तथा गरिमा की कोई भावना नही। महिपाल किसी प्रकार अपने परिवार तथा पत्नी से सामजस्य बिठाता है, परन्तु भीतर ही भीतर वह कुण्ठा ग्रस्त भी हो जाता है। शीला स्विग उसकी प्रेमिका है। वह महिपाल को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ प्रेम करती है, यह जानते हुये भी कि महिपाल का अपना भरा-पूरा परिवार है, वह महिपाल के जीवन से अपने को अलग नही कर पाती, और न ही महिपाल को अपनी पत्नी तथा परिवार से अलग हो जाने को प्रेरित करती है। महिपाल समूची कथा के दौरान दो नावो पर सवार आगे बढता जाता है। घटना क्रम उसे अपना परिवार छोडने को विवश करता है परन्तु सामाजिक लोक लाज उसे शीला को भी अपनाने नही देता। मित्रो के प्रयत्न से वह पुन घर आता है। अपनी भाजी के विवाह के अवसर पर उसके जीवन का एक रहस्य (ननिहाल मे उसके द्वारा की जाने वाली चोरी) जब भरी सभा के बीच लाला रूपरतन द्वारा उदघाटित कर दिया जाता है, महिपाल उस चोट को नही सह पाता और अन्तत नदी मे डूब कर आत्म हत्या कर लेता है। महिपाल के अन्तर्विरोधी चरित्र की यह परिणति कथा की सबसे मार्मिक परिणति है।

उपन्यास की उक्त प्रमुख धाराओं के अतिरिक्त और भी अनेक छोटी कथाएं हैं जो उपन्यास के उद्देश्य का तथा व्यापक सामाजिक जीवन के चित्र को पूरा करने में अपना योग देती हैं। चौक मुहल्ले के भीतर ही भीतर विकसित होने वाली भभूती सुनार के घर और परिवार की कथा है, जिसके माध्यम से लेखक ने कम पढ़े लिखे मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन पर प्रकाश डाला है। भभूती सुनार की बड़ी बहू और कवि विरहेश का एक कथा-प्रसंग भी उपन्यास का कुछ भाग घेरता है। चौक मुहल्ले में ही रहने वाले तारा-वमा दम्पति की अपना एक छोटी सी कहानी भी है और इसी प्रकार मुहल्ले के कतिपय अन्य व्यक्तियों से सम्बन्धित छोटी छोटी कहानियां भी मुहल्ले के जीवन का अंग बन कर उपन्यास में आई हैं। बाबा राम जी दास और पागलों के उनके आश्रम की कथा भी उपन्यास के उत्तरार्द्ध में वर्णित की गई है। जैसा कहा जा चुका है उपन्यास की इन समस्त छोटी बड़ी कथाओं का अपना महत्व है और जहां तक वर्णनशैली का प्रश्न है वे रोचकता के साथ प्रस्तुत की गई हैं।

कथावस्तु का विवेचन —

जैसा कि उपन्यास की कथावस्तु के ऊपर दिये गये संक्षिप्त रूप से स्पष्ट है नागर जी ने इस उपन्यास में बूंद के समान चौक मुहल्ले में समुद्र की तरह विशाल भारतीय सामाजिक जीवन के दर्शन कराये हैं। जिस प्रकार नागर जी की दृष्टि में बूंद और समुद्र दोनों का महत्व है उसी प्रकार उपन्यास की कथावस्तु के भीतर जितना सजीव लखनऊ का चौक मुहल्ला है उतना ही सजीव उससे बाहर के समाज का अपना जीवन है। चूंकि उन्होंने बूंद के माध्यम से ही समुद्र को देखा और दिखाना चाहता है इस कारण उनकी दृष्टि चौक मुहल्ले और उसकी गतिविधियों पर विशेष केन्द्रित रहा है। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश इसी मुहल्ले में इसी मुहल्ले के लोगों के बीच जिया है इस मुहल्ले की एक-एक गली, एक एक मकान और एक एक व्यक्ति उनका जाना पहचाना है, यही कारण है कि बड़े अधिकार के साथ वे चौक मुहल्ले और उसके जीवन को उपन्यास में प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। उपन्यास का पाठक भी कथावस्तु के इसी अंश के साथ सबसे ज्यादा जुड़ता है। किसी भी कथाकार की सबसे बड़ी सफलता इस बात में निहित होती है कि वह अपने पाठक को अपने उपन्यास में चित्रित जीवन का कितने अंशों तक भागीदार बना पाता है। जहां तक चौक मुहल्ले और उसके जीवन का प्रश्न है,

नागर जी ने उसके गली-कूचो क वणन, तथा उसकी अपनी जिन्दगी की एक-एक रेखा को इतने सहज स्वाभाविक रूप मे, इतनी विविधता तथा सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है कि पाठक इस समूचे वणन के दौरान जसे उनके साथ ही चौक की अपनी गलियो, बाजारो और चौराहो मे घूमने लगता है, यहाँ तक कि वहा के लोगा से अपना निकट का सबध जोड बठता है। नागर जी की इस क्षमता की प्रशसा 'बूद और समुद्र' पर लेखनी चलाने वाले प्रत्यक समीक्षक न की है। इतने ग्रफिक' चित्रण की भूमिका पर उपयास की रचना करने वाले वे अकले उप यासकार हैं।

चौक मुहल्ले की सीमा मे नित्य प्रति घटने वाला प्रमुख अप्रमुख सभी घटनाए वहा के गली कूचो में बसने वाले परिवारो का अपना भीतरी जीवन, उनकी अथ और काम जय कु ठायें, उनके सामाजिक आचार विचार, आय दिन होने वाले लडाई झगडें जिनमें स्त्रिया प्रमुख भूमिका अदा करती हैं, गाली गलौज, टोना टुटका तथा भाति भाति के अय धार्मिक पाखण्ड, "पीपल क नीचे का चबूतरा, हुक्के, नीम की दातूनें, अखबार, गजक और मूगफली वेचने वाल, मक्खन की तारीफ, कोन पर पाँच पाँच रुपय रख दो और भाग न दवे, कुल्फी की तारीफ, गोल दरवाजे मे खरीदो और रानी कटरे म जाकर खाओ और तारीफ य कि जरा भी न गले, तीतरा को चुगाता हुआ परसातम सेक्रटे रियट के बाबू गुलाबचद्र, लखनऊ की खास गाली का उपनाम की तरह अपन वाक्यो म जडने वाले लाला मुकु दीमल, मुहल्ले से लेकर विश्व तक की समस्याओं पर वाद विवाद, कथा बाचते हुए पडित जी"[१] आदि-आदि एक से एक सजीव चित्र इतनी स्वाभाविक भूमिका के साथ कथावस्तु का अग बने है कि डा० रामविलास शर्मा का यह कथन सवात सत्य प्रतीत होता है— "वातावरण के छोटे वडे तथ्य जो मनुष्य की दु ख पूण या मनोरजक स्थिति की ओर सकेत करत हैं, लेखक की निगाह से बच नही पात। वह वास्तव म शहर के गली-कूचा का कवि है।'[२] डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी क अनुसार 'मध्यवर्गीय जीवन को उसक व्यापक परिवश म दखने का जितना बडा और सफल प्रयास 'बूद और समुद्र' मे नागर जी न किया है, उतना शायद ही किसी

१— आस्था और सौंदर्य— डा० रामविलास शर्मा— पृ० १३१।
२— वही— पृ० १३६।

अपना और आपका–अपन देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण दोष भरा चित्र ज्यो का त्यों आकने का यथा मति, यथा साध्य प्रयत्न किया है।[१] उपन्यास की कथावस्तु अपनी सम्पूर्णता मे मध्यवर्गीय जीवन के ही ताने-बाने से निर्मित हुई है परन्तु जब हम गहराई से उपन्यास की कथावस्तु का अध्ययन करते हैं तो हमे लगता है कि जैसे उपन्यास म चित्रित होने वाले मध्यवग की कई भूमिकाए हैं। एक ओर कथावस्तु की प्रमुख धाराए हैं जिनका सम्बन्ध उपन्यास क प्रमुख पात्रो से है। लेखक के अनुसार ये पात्र भी म यवर्गीय है और उनकी कथा भी मध्यवर्गीय जीवन की कथा है। दूसरी ओर उपन्यास के गौण कथा प्रसग हैं, और उन कथा प्रसगो के माध्यम से उभरन वाला अत्यत सपन्न सामान्य मनुष्यो का अपना जीवन, जिसे मुहल्लो के गली कूचो म बसने वाले परिवारो और लोगो का जीवन कहा जा सकता है। यह भी मध्यवर्गीय जीवन ही है। इस प्रकार कथावस्तु क अन्तगत मध्यवर्गीय जीवन की दो भूमिकाएँ स्पष्ट हैं। जहा तक उपन्यास के प्रमुख पात्रो और उनके जीवन का सबध है, वह यहा तक सचमुच आज के मध्यवग का जीवन है, इस तथ्य को लाकर नागर जी के प्रशसको तक ने प्रश्न उठाया है। उनके अनुसार उपन्यास के ये पात्र आज के मध्यवग के प्रतिनिधि नही माने जा सकते और न उनकी अपनी समस्याए आज के मध्यवग की समस्याए है। ताइ को छोड दिया जाय, जो राजाबहादुर की पत्नी होते हुए भी, परित्यक्ता होने के कारण सामान्य मध्य-वग मे घुल मिल गई हैं, तो उपन्यास के शेष प्रमुख पात्र सज्जन, कनल, महिपाल वनकन्या, डा० शीला स्विग या तो लखपति हैं या आज भले ही सपन्न न हो, किसी समय सम्पन्नता से उनका नाता रहा है। इन पात्रों की, जो व्यापक भारतीय समाज म बूद के समान अस्तित्व रखते हैं, उस समाज के साथ ठीक प्रकार से सामजस्य स्थापित कर पाने की अपनी समस्याए जरूर हैं परन्तु मुख्यत उनका जीवन अपनी वयक्तिक परिधियो मे ही सिमटा हुआ है। कुछ पात्रों के लिए तो प्रेम ही बहुत बडी समस्या बन गया है, कुछ समाज मे अधिक से अधिक सम्मान पाने की फिक्र म हैं। आज का सामान्य मध्यवग जिस प्रकार की तनावपूर्ण विषम जिन्दगी जी रहा ह उसस उनका बहुत सबध नहीं ह। महिपाल आर्थिक अभावों से जरूर परेशान ह परन्तु प्रेम वह भी करता ह, शराब पीने की उस भी आदत ह और उसकी प्रेमिका भी लखपति ह।

१— बूद और समुद्र– पृ० ३।

कुल मिलाकर ये समूचे पात्र और उनके अपने क्रिया कलाप, परेशानियाँ तथा समस्याएं आज के सामान्य मध्यवर्गीय जीवन में अलग मालूम पड़ती हैं इसी लिए श्री राजेन्द्र यादव ने लिखा है– 'यह मध्यवर्गीय जीवन वह नहीं है जिसमें हम अर्थात आज की पीढ़ी जीती है यह मध्यवर्ग वह है जिसमें हम जी चुके हैं अर्थात जो हमारे सामने चुक रही है, समाप्त प्राय हो गई है यह द्वितीय महायुद्ध से पहले का मध्यवर्ग है। सारे उपन्यास में प्राय एक भी नौकरी पेशा वाला आदमी नहीं है, सभी खाने पीने की चिन्ता से मुक्त या फ्रीलान्सर हैं यह जीवन की जद्दोजहद में रिटायर्ड लोगों का मध्यवर्ग है जिनकी पेंशनें आती हैं किराये आते हैं, दूकानों पर नौकर काम करते हैं या जो अपने पेशे में भली प्रकार जमे हैं।'[1] नागर जी ने मध्यवर्ग के इस अंश के भी जीवन को कथावस्तु के अन्तर्गत बड़ी यथार्थ भूमिका पर प्रस्तुत किया है।

कथावस्तु का जो भाग आज के मध्यवर्ग की अपनी जिन्दगी से सबंधित है वह भी यथार्थ की पूरी सजावट लिये हुये है। जिस प्रकार ऊपर वाले मध्यवर्ग के पुरुष और स्त्रियों की अपनी व्यक्तिगत समस्याएं तथा जीवनचर्याएं हैं, उसी प्रकार इस मध्यवर्ग के स्त्री-पुरुषों का भी अपना व्यक्तिगत जीवन है। यहाँ ताई का अंध विश्वास और धार्मिक पाखण्डों से भरा जीवन है, नदो जैसा भभूती सुनार की लड़कियों के अनैतिक क्रिया कलाप हैं, उसकी छोटी बड़ी बहुओं की अपनी काम कुण्ठायें हैं, प्रेम विवाह करने वाली तारा जैसी नारियाँ हैं "एटमबम की तरह बीच चौक में फूटकर भभूती के घर को हिरोशिमा बनाने वाली लाले की घर वाली है सेक्रेटेरियट के बाबू हैं, दूकानदार, फेरी वाले आदि २ हैं जो मिलजुल कर निचले मध्यवर्ग की अपनी आर्थिक समस्याओं, अशिक्षा अंधविश्वास रूढ़ियों कुण्ठाओं, भ्रष्टाचार, व्यभिचार आदि के साथ साथ समाज के बीच जिन्दा रहने के लिए उनके अपने संघर्षों उनकी मानवीयता, आस्थावाद यहाँ तक कि प्रगतिशील आस्थाओं तक का परिचय देते हैं।

इस प्रकार मध्यवर्ग के ये दोनों रूप कुल मिलाकर समूचे उपन्यास में व्यापक मध्यवर्ग का एक अच्छा-खासा चित्र उपस्थित करते हैं। मध्यवर्गीय

१– विवेक के रंग (स० देवीशंकर अवस्थी) दो आस्थाएं–राजेन्द्र यादव

पृ० २५६।

जीवन का समूचा अन्तर्विरोध यहा दिखाई पडता है। भली बुरी सब प्रकार की प्रवत्तिया इनमें हैं। ये शक्ति तथा कमजोरी के मिले-जिले रूप हैं। लेखक ने पात्रों की मनोवत्तिया को तह म जाकर स्पष्ट किया है। इन्हा सब कारणो से यह उपन्यास मध्यवग का एक भरा पूरा चित्र बन सका है। इस "*मध्यवर्गीय जीवन का उसके व्यापक परिवेश म देखने का जितना बडा और* सफल प्रयास 'बूद और समुद्र' मे नागर जी ने किया है उतना शायद ही किसी अन्य हिन्दी उपन्यासकार ने किया हो।   व्यक्ति और समाज के बीच की कडी परिवार के विघटित हो जाने पर आधुनिक सामाजिक जीवन मे जो गतिरोध उत्पन्न हो गया है, उसका यथाथ अकन 'बूद और समुद्र' के लेखक ने किया है।[१]

कथावस्तु के उक्त पक्ष उसकी सपन्नता तथा लेखक की क्षमता के द्योतक हैं। परन्तु उपन्यास की कथावस्तु के कुछ एसे पक्ष भी हैं जो उसे कमजोर बनाने मे भी सहायक हुये हैं। नागर जी ने जितने बडे कनवेस पर कथावस्तु की छोटी बडी धाराओ को नियोजित करना चाहा है, उन्हें इस काय म सवत्र सफलता नही मिल पाई है। डा० शल कुमारी की दष्टि में लेखक अनेक स्थलो पर कथावस्तु पर हावी हो गया है।[२] डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार कथावस्तु में कथा सघटन की गहराई नही है। जिस समाज का जीवन उपन्यास मे प्रस्तुत है वह कलात्मक दष्टि से पूणत नियोजित नही हो सका है। ताई सज्जन और महिपाल की कथा धाराए आवश्यक अन्विति नही प्राप्त कर सकी हैं   विस्तृत कनवस मे भी सगत तथा सबद्ध घटनाओ और स्थितियो का चयन ही उपन्यास के सफल कथा कौशल का प्रमाण है। इस दष्टि से नागर जी का शिल्प जगह-जगह कमजोर है।[३]

उपन्यास की कतिपय महत्वपूण घटनाए लेखक द्वारा आवश्यक महत्व नही पा सकी हैं। उदाहरण के लिए महिपाल की आत्म-हत्या को कथावस्तु के अन्तगत जो महत्व मिलना चाहिए था, नहा मिल सका है। कनल जसा व्यवहार-कुशल व्यक्ति भी उसकी खोज खबर नहीं लेता। इसीलिए 'उपन्यास

१– हिन्दी नव लेखन–रामस्वरूप चतुर्वेदी–प० १२१।
२– माध्यम मई १९६५, 'विवेचना में 'बूद और समुद्र–पृ० १११।
३– हिन्दी नवलेखन–रामस्वरूप चतुर्वेदी–पृ० ११९।

के उत्तरार्द्ध की यह सबसे महत्वपूर्ण घटना कलात्मक दृष्टि से सत्य नहीं उतरी।[1] उपन्यास में पात्रों के लम्बे लम्बे वक्तव्य उनके द्वारा दिये जाने वाले आर्मि समाज के बड़े बड़े वर्णन आदि भी कथावस्तु की गति को शिथिल करते हैं तथा उबाने वाले हैं। लेखक ने भी अनेक स्थलों पर अपने समाज शास्त्र, इतिहास तथा पुरातत्व ज्ञान से अथवा दूसरे प्रकार के तत्व चिन्तन में पड़ने पर पड़ने रंग भर कर कथावस्तु को शिथिल बनाया है। कथावस्तु की इन कमजोरियों पर अनेक लोगों ने प्रकाश डाला है।[2]

कथावस्तु में नागर जी ने सयोग चमत्कारों रोमांचकारी प्रसंगों आदि का आश्रय लिया है। ये सारी बातें न केवल कथावस्तु को हल्का बनाती हैं, उसे वैचारिक भूमिका पर भी कमजोर करती हैं। नागर जी की इस प्रवृत्ति का अपने निबन्ध में राजेन्द्र यादव ने जोरदार खण्डन किया है।[3]

समग्रत अपनी कतिपय कमजोरियों के बावजूद उपन्यास की कथावस्तु नागर जी की सिद्धहस्त लेखनी सजग यथार्थ दृष्टि तथा सम्पन्न अनुभवों का परिचय देती है। व्यापक जीवन का चित्रण करने वाले वृहत् आकार के उपन्यास के अन्तर्गत वस्तु सम्बन्धी थोड़ी बहुत शिथिलताएं स्वाभाविक हैं। यदि ये शिथिलताएं न होतीं और नागर जी उपन्यास को कुछ संक्षिप्त कर सकते, तो वस्तु संघटन तथा चित्रण दोनों भूमिकाओं पर उपन्यास अधिक कलापूर्ण बन सकता।

चरित्र-सृष्टि —

अपने वृहत् आकार, व्यापक दृष्टिकोण विस्तृत कथावस्तु एवं भारतीय मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन के सार्थक चित्रों के साथ ही प्रस्तुत उपन्यास की चरित्र सृष्टि भी पर्याप्त वैविध्य पूर्ण एवं सादृश्य है। उपन्यास की कथा-वस्तु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भारतीय मध्यवर्गीय जीवन के अनेक स्तरों से सम्बन्धित है। उसमें गली मुहल्ले के सामान्य व्यक्तियों एवं उनके परिवारों से लेकर जीवन यापन की चिन्ता से दूर प्रेम तथा अपनी अन्य

१— आस्था और सौन्दर्य—डा० राम विलास शर्मा—पृ० १५०।
२— वही पृ० १५०।
३— विवेक के रंग—दो आस्थायें' राजेन्द्र यादव।

वयक्तिक समस्याओ से ग्रस्त, कोठियो और बगलो मे रहने वाल लोग-सभी हैं। स्वभावत मध्यवग की व्यापक जिन्दगी का परिचय देने वाले इन पात्रा की अपनी भिन्न भिन्न विशेषताए, मनोवृत्तिया एव क्रियाकलाप हैं, जिन्ह लेकर ही वे उपन्यास मे प्रस्तुत हुए हैं।

'बूद और समुद्र' उपन्यास की बहुरगी चरित्र सृष्टि के बीच सबसे आकर्षक एव प्राणवान चरित्र ताई का है। डा० राम विलास शर्मा के अनुसार ताई का चरित्र उपन्यास की धुरी है।[1] नागर जी ने उपन्यास के अतगत ताई का 'भारत माता' कहा है जिससे उनका आशय यही लगता है कि ताई के चरित्र मे भारतीय जीवन और विशेषकर भारतीय नारी जाति की समस्त रूढिवादिता एव मानवीयता मूत हो सकी है। उनमें "कायरता व साहस, सहिष्णुता, एव असहिष्णुता, सकीणता तथा उदारता की परस्पर विरोधी भावनाए मिलती हैं।"[2] ताई एक प्रकार से विरोधी गुणो की समष्टि हैं। उनका व्यक्तित्व सब पात्रो से अलग व विचित्र है। भोगे गये जीवन की यातनाओं ने उन्हे पत्थर की तरह कठोर बना दिया है। अब ताई के मुह से सारे समाज एव मुहल्ले वालो के लिए "निगोडों के। तन मन मे कीडे पडें, रोवें रोवें मे कोढ हो, मरो के पूरे घर की अर्थिया साथ साथ उठें हैजा हो, पिलेग हो, सीतला खाय " जस 'आशीवचन' ही निकलते हैं। परिस्थितियो ने ताई के जीवन को अधकारपूण बनाया, ताई अब सपूण मानव जाति का जीवन बरबाद करने पर तुली हुई हैं। वे जादू-टोने पर विश्वास करती हैं, आटे के पुतल, सेंदुर, तिल, काला डोरा और सुई-टोने-टुटके की ये चीजें ही उनकी गहस्थी हैं। वे मुहल्ले वालो के घरो की देहलीज पर आटे के पुतले रखती हैं तथा उनकी मौत की मनौतिया मनाती हैं। उस सम्पूण समाज से उन्ह घोर नफरत है जिसने उनके अनुसार न केवल उनकी इकलौती लडकी उनसे छीन ली, उन्हे भी इस स्थिति पर पहुचा दिया है। प्रतिहिंसा की भावना उनकी नारी सुलभ ममता को ही जस नष्ट कर देती है। उन्ह शिशु मात्र स घृणा हो जाती है। गभवती तारा के दरवाजे पर सिर कटे बिल्ली के बच्चे की लाश के ऊपर जलता हुआ दिया काले तिल और सेंदुर आदि इसीलिए रख आती हैं कि 'रॉड बहुत पेट लिये घूमती है, ऐसे ही कट के गिर पडेगा।"

१– आस्था और सौन्दर्य – डा० राम विलास शर्मा – पृ० १३८।
२– हिन्दी उपन्यास – डा० सुषमा धवन – पृ० ७७।

उनकी प्रतिहिंसा इतनी तीव्र है कि वे अपने पति के नाती तक को मारने के लिए टुटका करती हैं, यहां तक कि मरते-मरते स्वत राजा बहादुर तक पर मूठ छोड़ने का निश्चय कर लेती हैं। इसी प्रकार के अन्य रोमांचकारी क्रिया कलाप भी हैं जो ताई के रूढ़िवादी, अन्धविश्वासों से भर हुय चरित्र के साथ उनके प्रति लोगों के भय को मूत करते हैं। परन्तु नागर जी ने ताई के चरित्र का एक दूसरा पक्ष भी उपन्यास म प्रस्तुत किया है, जो उनके पहल रूप की अपेक्षा कम सजीव नहीं है। यह ताई का मानवीय रूप है जो उनके 'भारत माता' रूप को पूर्णता तथा सार्थकता प्रदान करता है। अपने इस रूप में ताई उपन्यास के पाठकों की समस्त सवेदना तथा सम्मान की अधिकारिणी बन जाती हैं। उपन्यास में ऐसे अनेक प्रसग हैं जहा ताई का यह रूप अपनी सारी भास्वरता स प्रकाशित होता है। मुहल्ल भर के वृद्ध-बच्चा और जवानों की मौत की मनौतिया मानने वाली ताई का घर में आई हुई बिल्ली क बच्चो पर अपनी सारी ममता उड़ल देना, ताई के उसी रूप का परिचायक है। यही नहीं, जो ताई तारा के गर्भ को गिराने के हेतु किसी समय टोटका कर चुकी थी, वही प्रसव वदना से कराहती हुई निस्सहाय तारा को जब प्रजनन कराती हैं तो उनका वह सहज मानवीय रूप उभरता है जिसके सम्मुख बलात पाठक का सिर श्रद्धा से नत हो जाता है। डा० राम विलास शर्मा के अनुसार–'
यह चित्र आंक कर अमृतलाल नागर ने हिन्दी उपन्यास को उच्चतम स्तर तक उठाया है।'[1] ताई समाज द्वारा उपेक्षिता हैं परन्तु जब उन्हें कुछ लोगों के द्वारा आदर-सम्मान तथा सहानुभूति प्राप्त होती है वे उनके लिए सर्वस्व निछावर करने को प्रस्तुत हो जाती हैं। सज्जन स व पुत्रवत स्नेह करती हैं, वनकन्या के गुणो पर भी वे बाद को रीझ जाती हैं। सज्जन के घर पर जब मुहल्ले की भीड़ हमला कर उसके चित्रों को नष्ट कर देती है ताई अकेले मुहल्ले के लोगों का सामना करती हैं और भीड़ के चले जाने के बाद लालटेन लिए उसके उजाले में बड़ी रात तक चित्रों के फटे टुकड़े बटोर-बटोर कर उन्हें सहेजती हैं।' ताई की यही गरिमामय मानवीय भूमिका अन्त में प्रकट होती है जब मरते-मरते अपने पति राजाबहादुर द्वारकादास पर मूठ चलाने के अपने निश्चय को छोड़ कर मृत्यु के पूर्व सहज मानसिक शान्ति की कामना करती हैं–'मरन किनारे अब किसी का बुरा नहीं चेतगी –ताई का यह वाक्य उनकी इस मन स्थिति को पूरी तरह स्पष्ट कर देता है। ताई का यह मानवीय

१– आस्था और सौन्दर्य – डा० राम विलास शर्मा – पृ० १४१।

रूप अंत तक समूचे मुहल्ले को उनके प्रति श्रद्धा से भर देता है। मृत्यु के पश्चात सारा मुहल्ला उनकी अर्थी के पीछे था, आज ताई मुहल्ले वालों के कंधे पर थी दिल पर थी, जबान पर थी। समग्र रूप से ताई के चरित्र-चित्रण में लेखक ने गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि एवं क्षमता का परिचय दिया है। एक स्वर से हिन्दी समीक्षकों ने उसे हिन्दी उपन्यास का अविस्मरणीय चरित्र कहा है।[1] कुछ के अनुसार ता ताई विश्व कथा-साहित्य में किसी भी सफल चरित्र की तुलना में रखी जा सकती है।[2]

ताई के चरित्र के पश्चात उपन्यास के दूसरे महत्वपूर्ण पात्र महिपाल और सज्जन हैं। डा० सुषमा धवन के अनुसार "महिपाल और सज्जन, लेखक के व्यक्तित्व के दो रूप है-एक उसका यथार्थ रूप है, तो दूसरा आदर्श"।[3]

महिपाल एक लेखक है जो मध्यवर्गीय चरित्र की सारी विशेषताओं और दुर्बलताओं से जुड़ा हुआ है। एक ओर उसकी प्रगतिशील आस्थाएं हैं और दूसरी ओर उसके मध्यवर्गीय संस्कार, जिनमें आभिजात्य की भावना झूठे आत्म सम्मान का मोह अहम्मन्यता आदि प्रमुख हैं। एक प्रकार से उसका सम्पूर्ण चरित्र अन्तर्विरोधों से ग्रस्त है। इन अन्तर्विरोधों के लिए हुए ही वह जीवन के पथ पर आगे बढ़ता है, अपनी वैयक्तिक समस्याओं का समाधान पाना चाहता है और अन्ततः समाधान न पा सकने की स्थिति में आत्म हत्या करने के लिए विवश होता है। उसका स्वभाव बहुत ही उग्र है 'धीरता, दृढ़ इच्छा शक्ति, सहनशीलता आदि गुणों का उसमें अभाव है। यद्यपि वह बातें समाजवाद की करता है फिर भी उसके संस्कार अराजकतावादी के हैं।'[4] एक ओर वह प्राचीन रूढ़ियों रीतियों का कट्टर विरोधी है, दूसरी ओर शिव का भक्त भी है। जीवन की तमाम समस्याओं का समाधान उस विरोधों का समन्वय करने वाली शिव भक्ति में दिखाई देता है। वह वस्तुतः एक आदर्शवादी व्यक्ति है और आदर्शवादिता के द्वारा ही समाज में क्रान्ति लाना चाहता है। वह 'साम्यवाद को अहिंसा का जनेऊ पहना कर' सामाजिक जीवन में उतारना चाहता है।

१– विवेक के रंग – दो आस्थायें–राजेन्द्र यादव–पृ० २५८।
२– हिन्दी नवलेखन – रामस्वरूप चतुर्वेदी–पृ० ११९।
३– हिन्दी उपन्यास – डा० सुषमा धवन – पृ० ६७।
४– आस्था और सौंदर्य – डा० राम विलास शर्मा पृ० १४२।

महिपाल का पात्र वस्तुतः नागर जी के अपने यथार्थ दृष्टिकोण का उदाहरण है। उसके माध्यम से लेखक ने आज के समाज पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

डा० सुषमा धवन के शब्दों में— महिपाल के जीवन की दुखान्त गाथा एक द्विविधा ग्रस्त आत्मा की दुखान्त गाथा है।[1] डा० राम विलास शर्मा के अनुसार 'उसकी कहानी उस बुद्धिजीवी की कहानी है जो समाज व्यवस्था से असन्तुष्ट तो है लेकिन उसके बदलने के लिए जन शक्ति को संगठित करने का पथ और दृढ़ संकल्प जिसमें नहीं है।'[2]

सज्जन का चरित्र महिपाल की तुलना में अधिक स्पष्ट है। महिपाल का मानसिक द्वन्द्व ज्यादा तीव्र, नाटकीय और हताशापूर्ण था। जबकि सज्जन का चरित्र बहुत कुछ सपाट है। उसके मन का द्वन्द्व भी महिपाल की तरह प्रभावित नहीं करता। महिपाल की चिन्ताएँ मन की ही उपज रही हों, उसका शुरू का जीवन आर्थिक अभावों का जीवन है। एक बड़े पूरे परिवार का दायित्व उसके ऊपर है। उसके मन की कमजोरी का बहुत सीधा सम्बन्ध उसकी इस पारिवारिक भूमिका तथा आर्थिक विपन्नता से है। सज्जन इसकी तुलना में जीवन यापन की समस्या से एकदम निश्चिन्त है। कलाकार वह भी है परन्तु उसके पास पूर्वजों की छोड़ी हुई लाखों की सम्पत्ति है रहने को शानदार हवेली और एक कमरे के लिए मास्टर, कार तथा और सारे साज सामान हैं। शराब पीने की उसे भी लत है साथ ही औरतों में भी उसकी काफी दिलचस्पी है। नारी प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में उसकी धारणा सामन्तवादी है। वह नारी को भोग की वस्तु मानता है और विवाह को बन्धन। समाज तथा जीवन के विषय में भी उसकी धारणा साफ नहीं है। उसे देश की जनता अंधविश्वासों से घिरी दिखाई देती है। उसे किसी भी राजनीतिक दल में आस्था नहीं है। लेखक ने जीवन की समस्याओं पर उससे जो कुछ कहलाया है उससे लगता है कि जैसे उसका चिन्तन काफी उलझा हुआ है। 'एक ओर वह रूढ़ियों के विरुद्ध है लेकिन वृन्दावन में जाकर रहस्यवादी बन जाता है। टेलीपैथी आदि चमत्कारों में उसे विश्वास है।'[3] उसकी सारी समस्याएँ खुद की गढ़ी

---

१ हिन्दी उपन्यास– डा० सुषमा धवन– पृ० ७०।

२ आस्था और सौन्दर्य– डा० रामविलास शर्मा– पृ० १४३।

३ आस्था और सौन्दर्य– डा० रामविलास शर्मा पृ० १४३।

मालूम देती हैं। वनकन्या का प्रवेश उसके जीवन को तथा उसके विचारों को एक नया मोड देना जरूर है परन्तु स्थायी संतुलन फिर भी नही आ पाता। वृन्दावन में वह वनकन्या से अपना प्रणय निवेदन करता है। वनकन्या उसे अपना प्रेम पात्र बना भी लेती है परन्तु लखनऊ आकर वह सब कुछ भूलकर चित्रा राजदान से पुन अपना सम्बन्ध जोड लेता है। कनल सज्जन के इस पतन पर उसे फटकारता है। परन्तु सज्जन अपनी गलती महसूस करते हुए अन्तत वनकन्या को अपना लेता है। उसमे आभिजात्य की भी गहरी भावना है। विवाह के उपरान्त जब उसकी कोठी मे वनकन्या की मा तथा भाई आते हैं, उसे नौकरो के सामने यह जनाने म लज्जा होती है कि वे उसके सम्बन्धी हैं। सच पूछा जाय तो लेखक के तमाम प्रयत्नों के बावजूद सज्जन का चरित्र पाठक को पूरा संतोष नही दे पाता। ताई के महल्ले म उसका जीवन कलाकार से ज्यादा समाजशास्त्री का जीवन है। यहाँ भी वह उतना सक्रिय नही है जितना महिपाल अथवा कनल। व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन की जिस समस्या से वह परेशान है, वह अन्तत कुछ तो उसके जीवन म वनकन्या के आ जाने से, और अधिकाश बाबा राम जी दास के प्रश्नो से सुलझती है। लेखक ने उपन्यास का अन्त होते होते महिपाल के चरित्र को जितना नीचे की ओर गिराया है, उतना ही सज्जन के चरित्र को ऊपर उठाने का प्रयास किया है, परन्तु अपने गिरते हुए चरित्र के बावजूद पाठको का जितना आत्मीय महिपाल बन जाता है उतना सज्जन नहीं। सज्जन का चरित्र अधिकाशत एक अस्थिर मन वाले व्यक्ति का चरित्र है। लेखक ने उसे आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है, जिसके कारण उपन्यास का उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध की तुलना मे कमजोर भी हो गया है।

उपन्यास के मध्यवर्गीय पुरुष पात्रो मे सबमें कुंठाहीन और निखरा हुआ चरित्र कनल है जो सज्जन और महिपाल दोनो का 'कामन मित्र' है। कनल का पूरा नाम नगीनचन्द जैन है। लखनऊ म उसकी अंग्रेजी दवाइयो की पुरानी दूकान है। कनल भी आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न है। "बुद्धिजीवियो की समस्याएं उसकी समझ मे नही आतीं' परन्तु उसमे मनुष्यता इतनी है कि मित्रो के लिए ही नही, सामान्य मनुष्य को भी विपत्ति म देखकर वह उनकी सहायता के लिए आतुर हो उठता है। मौखिक सहानुभूति ही नही, अन्याय के प्रतिकार के लिए वह रुपये पैसे खर्च करने म भी नहीं हिचकता। वनकन्या अपने व्यभिचारी पिता के विरुद्ध जो मुकदमा लडती है उसमे कनल न केवल जनमत ही तैयार करता है, रुपये भी खर्च करता है। बिरहना वडी काण्ड मे भी

'कनल पूरी गरिमा के साथ उतरता है और विग्रहों के हाल ठिकाने कर देता है। मित्रों के बीच की पारस्परिक अनबन को भी वह सुलझाता है और यथा सभव उनकी मानसिक परेशानियां दूर करता है। पर ता विद्या, कनकन्या का सामाजिक अंतर के बावजूद वह अपने घर में स्थान देता और उस बहन के रूप में स्वीकार करता है। साहस और निडरता उसमें कूट कूट कर भरी है। सज्जन और कनकन्या के बिगड़ हुए सम्बन्धों को वही जोड़ता है। महिपाल और उसकी पत्नी कल्याणी के बीच होने वाले कलह में भी वह एक सच्चे मित्र की भूमिका का निवाह करता है। कल्याणी जैसी पतिव्रता स्त्री नारी का अपमान करने और पीड़ा पहुचाने के कारण वह महिपाल का बुरी तरह फटकारता है और रूठ हुए महिपाल को पुन घर वापस लाता है। महिपाल के प्रेम प्रसंग से भी वह परिचित है और ताला सिंग की प्रणय भावना से भी। वह महिपाल की इस समस्या का समाधान तो नहीं कर पाता परन्तु ताला सिंग की सच्ची प्रणय भावना के प्रति उसके मन में पर्याप्त सम्मान है। कनल भी राजनीतिक पार्टियों की स्वार्थपरता से विमुख है परन्तु सज्जन की भांति वह आत्मलीन नहीं है। उसे जनता से सच्चा प्रेम है और इसी आधार पर वह अपनी एक अलग पार्टी एक नया हिन्दुस्तानी दल कायम करने की बात करता है। कनल के चरित्र की ये विशेषताएं उसे पाठकों का आत्मीय बना देती हैं। कनल के सम्बन्ध में डा० सुषमा धवन का यह मन्तव्य बिल्कुल सही है कि ' उसके जीवन में व्यक्ति एवं समाज के परस्पर संघर्ष अथवा सामंजस्य की समस्या उठती ही नहीं, उसके जीवन में वैयक्तिक एवं सामाजिक चेतना का समन्वय सहज रूप में ही विद्यमान है। उसका चरित्र दूध का धोया हुआ है। वह जीवन की उन भावनाओं का प्रतीक है, जिनका स्वरूप उदात्त है। [१]

बाबा राम जी दास के चरित्र को लेकर समीक्षकों के बीच विवाद चर्चा हुई है। कुछ के अनुसार बाबा राम जी दास जैसे चरित्र की संभाव्यता संदिग्ध है जबकि यह भी कहा गया है कि वे यथार्थ जीवन से लिये गये व्यक्ति हैं। [२] वस्तुतः नागर जी ने बाबा राम जी दास को चमत्कारिक शक्तियों से सम्पन्न साधु के रूप में अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। आज के वैज्ञानिक युग में जीने और सोचने वाले पाठक को नागर जी का यह प्रयास न

---

१ हिन्दी उपन्यास– डा० सुषमा धवन– पृ० ७६।
२ माध्यम (मई १९६५)– पृ० ११३।

केवल अतिरंजित लगता है वरन् नागर जी का प्रगतिशील आस्थाओं के सदर्भ मे विलक्षण और विक्षोभ कारक भी है। बाबा राम जी दास के चरित्र के इस पक्ष को छोड दिया जाय तो उनका व्यक्तित्व दूर तक पाठक को प्रभावित करता है। नागर जी ने वस्तुत उन्हे पुराने सन्तो की परम्परा की एक कडी के रूप में अपने उपन्यास मे स्थान दिया है।[१] उनका चरित्र सच्चा मानवतावादी चरित्र है। सेवा उनके जीवन का व्रत है। व्यक्ति और समाज की समस्या का उनके यहाँ सीधा समाधान है। उनके अनुसार 'हर बूद का महत्व है, क्योंकि वही तो अनन्त सागर है। एक बूद भी व्यर्थ क्यो जाय उसका सदुपयोग करो।" बाबा राम जी दास का व्यक्तित्व उपन्यास के सभी पात्रो को प्रभावित करता है और सब उनसे आस्था की किरणें प्राप्त करते हैं।

इन प्रमुख पुरुष पात्रो के अतिरिक्त महाकवि बोर (विरहेश) सेठ रूपरतन, लाला जानकी शरण, राजाबहादुर द्वारकादास, शंकरलाल, मनियां मभूती, मि० वर्मा, बाबू सालिगराम जसे अन्य तमाम पात्र भी हैं जो उच्च और निम्न मध्यवर्ग के विविधि स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें राजनीतिक नेता हैं, समाज सुधारक हैं, बने हुए कवि हैं, क्लर्क, दूकानदार, व्यवसायी, अच्छे बुरे सभी प्रकार के व्यक्ति हैं। नागर जी ने इन्हे सजीव रूप में उपन्यास मे प्रस्तुत किया है। जितनी निर्ममता से उन्होंने बहुरूपियों के मुह से नकाबें उतारी हैं, उनकी कमजोरियो का उद्घाटन किया है, उतनी ही सवेदना मध्यवर्ग के सामान्य पात्रो को दी है जो अपने ही वर्ग के अतिचारों का शिकार हैं। कुल मिला कर 'बूद और समुद्र' की पुरुष-सृष्टि पर्याप्त सजीव तथा वैविध्यपूर्ण है।

नारी चरित्रो मे ताई के पश्चात् सर्वाधिक प्रमुख चरित्र वनकन्या का है जिसे डा० रघुवंश ने "सामाजिक जीवन के जगल से उगने वाला व्यक्ति चरित्र" कहा है।[२] वनकन्या प्रगतिशील विचारो की लडकी है जो पिता के अनैतिक सबधो तथा असामाजिक आचरण के कारण उसके प्रति विद्रोह कर

१– क– माध्यम–(मई १९६५) डा० रघुवंश– पृ० १०९।
ख– आस्था और सौंदय – डा० रामविलास शर्मा– पृ० १८५।
२— माध्यम– (मई १९६५)– पृ० १०५।

देती है और घर छोड बठती है। वनकन्या के चरित्र म एक मूलभूत दृढता है जो परिवार से अलग हो जाने पर और भी विकसित होती है परन्तु वनकन्या के चरित्र को नागर जी उसकी सभावनाओ के अनुरूप पूरा उत्कष नहा दे सके हैं। सज्जन के साथ सम्पक होते ही वनकन्या के चरित्र की तजस्वी भूमिका मद और म्लान पडने लगती है और बाद को तो वह पूरी तरह अपने और सज्जन के बीच बनते बिगडते प्रणय सबध की गुत्थी म ही उलझकर रह जाती है। लगता है की जसे वनकन्या को अपने यक्तित्व को विकसित करने का कोई सशक्त आधार न मिल सका हो। फिर भी उपन्यास के तमाम पुरुष पात्रा की तुलना म वह अधिक साहसी तथा निडर है। अन्याय के प्रतिकार क लिए वह सदैव प्रस्तुत रहती है। बाबा राम जी दास का व्यक्तित्व उस भी प्रभावित करता है। उनके सम्पक स उसकी सेवा भावना और भी दृढ होती है। उपन्यास के अन्त तक उसका और सज्जन का सबध एक आदश पति पत्नी का सबध बन जाता है और इस प्रकार लेखक क इस मतव्य को चरिताथ करता है कि जब तक नर और नारी के बीच के सबध इस प्रकार क सामजस्य को प्राप्त न करेंग व एक दूसर क पूरक न होग तब तक सही अर्थो म जीवन भी पूण न माना जायगा।

वनकन्या के अतिरिक्त दूसरा प्रमुख नारी चरित्र डा० शीला स्विग का है जिसम भारतीय और पाश्चात्य नारी का अद्भुत समन्वय है। वह लखनऊ की प्रसिद्ध लेडी डाक्टर है। महिपाल का प्रम उसक जीवन की सबसे बडी और सबसे पवित्र पूजी है जिस पर वह अपना एकाधिकार समझती है। वह जानती है कि महिपाल एक भरे-पूरे परिवार का स्वामी है, किसी का पति भी है, परन्तु इससे महिपाल के प्रति उसकी प्रम भावना म कोई अतर नही आता और न ही उसके मन में किसी प्रकार की कुण्ठा अथवा ईर्ष्या का जन्म होता है। महिपाल क जीवन म वह किसी प्रकार अशाति नहा पदा करना चाहती। महिपाल क प्रति उसका एक निष्ठ प्रेम, पाप-पुण्य नतिकता अनतिकता की मर्यादाओ से ऊपर है।[१] वह केवल यही चाहती है कि उसका और महिपाल का प्रम सबध यथावत् बना रहे। महिपाल की आत्म-हत्या शीला को एकदम निस्सहाय छोड देती है। शीला का चरित्र उपन्यास म जितना भी आया है वह सच्चे प्रम क प्रति उसकी ज्वलत निष्ठा का प्रमाण है।

१— हिन्दी उपन्यास— डा० सुषमा धवन— पृ० ७८।

कल्याणी परम्परागत भारतीय पत्नी है जिसके लिए पति तथा परिवार के अतिरिक्त और कोई गति नहीं। महिपाल उसका पति तथा उसकी संतान का पिता है, यही उसका सबसे बड़ा सत्य है। एक आदर्श भारतीय पत्नी के रूप में लेखक ने उसका चरित्र प्रस्तुत किया है। उसने इसके अतिरिक्त कल्याणी और महिपाल के दाम्पत्य जीवन द्वारा अनमेल विवाहों पर भी प्रकाश डाला है जिसका परिणाम न केवल महिपाल की पारिवारिक कलह में प्रकट होता है, वह अनंत महिपाल के प्राण तक ले लेता है।

चित्रा राजदान आधुनिक जीवन में "नारी की परोडी" मालूम पड़ती है। वह उन आधुनिक नारियों की प्रतीक है जो ऐश आराम के लिए अनेक पुरुषों के साथ बंधती चली जाती हैं, पुरुषों की दृष्टि में जो केवल भोग्या हैं और जो अपनी इस स्थिति को स्वीकार भी करती हैं। परन्तु ऐसी अधिकांश नारियों की तरह चित्रा भी स्वेच्छा से यह जीवन स्वीकार नहीं करती। उसे विवश होकर इस प्रकार का जीवन बिताना पड़ता है। चित्रा के जीवन की इस ट्रेजेडी के मूल में और कुछ नहीं वह सामाजिक व्यवस्था ही है जिसे जन्म देकर पुरुष जाति सदैव से नारी का शोषण करती चली आई है। उपन्यासकार ने चित्रा के चरित्र द्वारा नारी जीवन के एक अन्य करुण अन्याय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है।

नदो का चरित्र निम्न मध्यवर्ग की उन अशिक्षित अंधविश्वास से पूर्ण, रूढ़िवादी मान्यताओं को सहेज रखने वाली नारियों का प्रतिनिधि चरित्र है जो अपने गिरे हुए व्यक्तिगत तथा पारिवारिक संस्कारों के कारण स्वतः तो दुख उठाती ही हैं, दूसरों के जीवन को भी बरबाद करती हैं। पर निंदा में जिन्हें सबसे बड़ा रस मिलता है। परिवार की सीमा के भीतर ही जो न केवल व्यभिचार करती हैं अपनी संगति से दूसरों को भी अपना अनुगामी बना लेती हैं। छोटी-बड़ी और तारा निम्न मध्यवर्ग की वे नारियां हैं जिनमें संस्कारगत कमजोरियां पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहती हैं। ये नारियां अनेक प्रकार की अर्थ तथा कामजन्य कुंठाओं को अपने मन में सहेजे, आधुनिक जीवन को देखकर अपनी अशिक्षा तथा पिछड़ेपन के कारण हीनताग्रंथि की शिकार बनकर किसी प्रकार अपना जीवन बिताती हैं। बहुधा ही अपनी अतृप्त वासनाएं पूरी करने के लिए इनके पैर गलत रास्तों की ओर उठ जाते हैं। जिन्हें अवसर न मिला वे किसी प्रकार मानसिक व्यभिचार द्वारा ही अपनी अतृप्ति को शांत करने का प्रयास करती हैं। या तो विवशता में कुण्ठित होते रहना ही **इनकी**

नियति ह या फिर अवसर पाकर उच्छ खल तथा अमर्यादित हो उठना । छोटी भीतर ही भीतर कुठाओ की शिकार है । किन्तु बडी नदा क वहकाव स विरहेश के प्रेमजाल म फसकर पति, परिवार तथा सतान स वचित होती है । तारा बहुत शिक्षिता नही है, अल्पशिक्षित है परन्तु छोटी और बडी की तलना में अपने को पूरा आधुनिक समझती है । छोटी और बडी की नजरो म भी वह आधुनिक है । उसने स्वेच्छा से प्रेम विवाह किया है । उसकी इस प्रगति-शीलता का छोटी और बडी क मन म पर्याप्त प्रभाव पडा है । परन्तु नागर जी ने तारा क चरित्र के इस पक्ष का व्यग्यात्मक चित्रण ही किया है और उसकी इस तथाकथित प्रगतिशीलता को बडी सजीव रेखाओं म उभारा है । छोटी बडी और तारा क वार्तालाप क माध्यम स उनक चरित्र की जो रेखाए उभरी ह उनक मूल म लखक की तीक्ष्ण मनोवैज्ञानिक दृष्टि तथा गहरे अनुभवो की स्थिति ह । उपन्यास के य गौण नारी पात्र प्रमुख नारी पात्रों की तुलना म कम सजीव नहीं ह बल्कि कहा जा सकता है कि ताई के चरित्र को छोडकर नागर जी की यथार्थवादी दृष्टि इन्हीं क चित्रण म सर्वाधिक सक्रिय हुई है ।

समग्रत बूद और समद्र क पुरुष तथा नारी पात्रो की समष्टि मध्य वर्गीय जीवन के नाना रूपो को उद्घाटित करती है ।

'बूद और समुद्र' की आंचलिकता –

बूद और समुद्र की कथावस्तु का विवेचन करत समय हम इस तथ्य का स्पष्टीकरण कर चुके हैं कि हिन्दी क अधिकांश समीक्षकों ने उसे एक आंच लिक उपन्यास के रूप म मान्यता दी है । बूद और समद्र उपन्यास का प्रति पाद्य सामाजिक जीवन के व्यापक स्तरो का स्पर्श करता है परन्तु उसकी उपलब्धि नागर जी न कथावस्तु को एक बूद मे समाहित करत हुए की है, और यह बूद लखनऊ का चौक मुहल्ला है । हम चौक मुहल्ल क अपने सामा-जिक जीवन तथा अपने खास परिवेश क चित्रण क सम्बन्ध म रेखाचित्रो की सजीवता क बारे म पिछले पृष्ठो म प्रकाश डाल चुक हैं और इस सम्बन्ध म नागर जी की सफलता का उल्लेख भी कर चुके हैं । वस्तुत इस भूमि पर एक सजीव वातावरण निर्मित करन मे नागर जी को अद्भुत सफलता मिली है । जसा कि राजेन्द्र यादव ने कहा है सचमुच इस उपन्यास म गलिया बोलती हैं, दीवारें बात करती हैं, और मुहल्ल जागते हैं ।'[१] चित्रण की यह सजीवता

१— विवक क रग-(स० दवीशकर अवस्थी)-दो आस्थाए-राजेन्द्र यादव-पृ० २५८ ।

तथा विविधता पात्रों की अपनी खास बोली बानी के संदर्भ में इस उपन्यास की आंचलिकता में दूर तक सहायक हुई है। हिन्दी में आंचलिक उपन्यास बहुत नहीं है परन्तु जितने हैं उनके बीच 'बूंद और समुद्र' का महत्वपूर्ण स्थान है इसमें संदेह नहीं।

'बूंद और समुद्र' उपन्यास की रचना नागर जी ने केवल किसी खास अंचल के जीवन को चित्रित करने के लिए ही नहीं की है। उनका लक्ष्य इससे अधिक व्यापक रहा है। सचमुच इस उपन्यास में इन्होंने बूंद में समुद्र भर देने का सफल प्रयास किया है। चौक की कथा के साथ साथ यह सम्पूर्ण भारतीय मध्यवर्गीय समाज की कथा है। मध्यवर्गीय जीवन का इतना समग्र, सफल और गुण-दोष भरा चित्र किसी एक कृति में अन्यत्र नहीं मिलेगा। मध्यवर्गीय जीवन से संबद्ध अधिकांश समस्याएं इस उपन्यास में चित्रित की गई हैं जिनका सम्बन्ध मध्यवर्ग के निम्न तथा उच्चवर्गीय सभी प्रकार के पात्रों से है। नारी जीवन की अपनी समस्याएं हों अथवा पुरुष समाज की, नागर जी की दृष्टि में सब सिमट कर आ गई हैं। भारत के नागरिक समाज की सही आकृति, मिटती हुई सामंतवादी संस्कृति की सड़ांध, उभरती हुई पूंजीवादी व्यवस्था की भूमिकाएं और उन सबके बीच घिसटता कराहता तथा शक्ति एकत्र करता हुआ, भारतीय जीवन सब यहां पर दिखाई पड़ता है।

वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक क्रिया कलाप सब अपनी यथार्थ भूमिकाओं में यहां प्रस्तुत हैं। देश की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक गतिविधियों का सारा लेखा-जोखा यहां पर है। लेखक ने समूचे भारतीय जीवन का मूल्यांकन करते हुये यथास्थल अपने पात्रों के द्वारा अपने खुद के विचार भी प्रस्तुत किये हैं।

मूलतः इस उपन्यास में उसने व्यक्ति और समाज, वयक्तिक चेतना और सामाजिक चेतना के बीच दिखाई पड़ने वाले वर्तमान असंतुलन को एक प्रधान समस्या के रूप में चित्रित किया है और अपनी कथा तथा चरित्र-सृष्टि को इसी समस्या के इर्द गिर्द खड़ा किया है। उसने इनके बीच सही संतुलन की आकांक्षा करते हुए उसे अपने चरित्रों में प्रदर्शित भी किया है और इस प्रकार अपनी समझ में एक स्थायी समाधान भी प्रस्तुत किया है। बूंद और समुद्र व्यक्ति और समाज के प्रतीक हैं। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व तथा सार्थकता नहीं है। हर बूंद का महत्व है क्योंकि बूंद-बूंद मिलकर ही सागर

बनता है बूँद का बूँदत्व भी सुरक्षित रहे और सागर के प्रति उसका समर्पण भी अखण्ड रहे, लेखक की यही कामना है।[1] बाबा राम जी दास का चरित्र लेखक के इसी सदेश को प्रसारित करता है।

समग्रत 'बूंद और समुद्र' के विषय में डा० रामविलास शर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है कि "विभिन्न स्वभाव के पात्र, उनके स्वभाव की टक्कर, एक ही व्यक्ति की प्रकृति मे उत्थान-पतन और नये मोड, ऐसे पात्र जिनसे पाठक को बेहद प्रेम हो जाता है और ऐसे पात्र जिन पर कभी दया आती है, कभी क्रोध आता है संस्कृति के विभिन्न स्तर, समाजवादी चेतना, पुराने सतों का सेवा भाव, कलाकार का अहंकार जादू-टोने की दुनिया, शिल्प और बिन्दी में रमने वाला मन, सहज मानव प्रेम और भाई-चारा इन सबके चित्र देखकर मन कह उठता है कैसा विचित्र देश है अपना और यह प्रिय देश अब करवट बदल कर उठ रहा है।

'बूंद और समुद्र" में जितना सामाजिक अनुभव संचित है वह उसे अपने ढंग का विश्व कोश बना देता है। उसे एक बार नहीं, बार-बार पढ़ने को मन करेगा।   निस्सन्देह स्वाधीन भारत का यह श्रेष्ठ उपन्यास है।[2]

अध्याय-६

अमृत और विष (१९६६)

●

"दुनिया अब अपने पूर्व रूप से बिल्कुल भिन्न हो चली है। मनुष्य अंतरिक्ष में उड़ने लगा है फिर भी ये अफसर, नेता, मुनाफाखोर, संकीर्ण स्वार्थी और मृत धार्मिकता के ठेकेदार, ये तमाम जड़ बन्धन मौजूद हैं। इन अज्ञान के प्रतीकों से जूझे बिना ही रह जाऊं, विश्राम करूं या मर जाऊं? तब तो मैं हेमिंग्वे के बूढ़े मछेरे से हार जाऊंगा। जड़-चेतनमय, विष-अमृतमय, अंधकार प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिये कर्म करना ही गति है। मुझे जीना होगा, कर्म करना ही होगा। यह बन्धन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अंधकार ही में प्रकाश पाने के लिये मुझे जीना है।

—'अमृत और विष' पृ० ७१६।

संक्षिप्त कथावस्तु –

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक सामाजिक जीवन को केन्द्र में रखकर गतिशील हुई है। यह कथावस्तु दोहरे कथानक को लेकर चली है। दोनों कथानकों में उत्पादित घटनाओं का ताना-बाना लेखक ने कुछ इस तरह बिठाया है कि दोनों कथानक एक दूसरे से अलग नहीं होने पाये हैं। पहले कथानक का सम्बन्ध उपन्यास के केन्द्रीय पात्र लेखक अरविन्द शंकर से है जिसमें उनके पूर्वजों के इतिहास, उनके वर्तमान जीवन, परिवार तथा उनके अपने मानसिक द्वन्द्व की कथा है। दूसरे कथानक का सम्बन्ध उपन्यास के भीतर ही लेखक अरविन्द शंकर द्वारा रचित उपन्यास से है जिसमें उन्होंने अपनी बहुरंगी पात्र सृष्टि के माध्यम से वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के मध्य डूबते उतराते समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। पहले कथानक में अरविन्द शंकर स्वयं परिस्थितियों के भोक्ता हैं और दूसरे कथानक में अपने समय के सामाजिक जीवन के द्रष्टा और चितेरे। उपन्यास में आदि से अंत तक ये दोनों ही कथानक परस्पर एक दूसरे से गुंथे हुए अत्यंत व्यवस्थित रूप से गति-शील हुए हैं।

जिस कथानक का सबंध अरविन्द शंकर के अपने जीवन से है उसमें नागर जी ने आज की समाज व्यवस्था में लेखन को ही जीविका बनाकर चलने वाले एक लेखक के आंतरिक तथा बाह्य संघर्ष का प्रत्यक्ष किया है। अरविन्द शंकर का यह समूचा संघर्ष अमरीकी उपन्यासकार अर्नेस्ट हेमिंग्वे के उपन्यास 'ओल्ड मैन एण्ड द सी' के केन्द्रीय पात्र बूढ़े मछेरे के सन्दर्भ में प्रस्तुत हुआ है। उपन्यास के अन्त में अरविन्द शंकर अपने जीवन की सारी कटुता के ऊपर उसी प्रकार आस्थावान दिखाई पड़ते हैं जिस प्रकार हेमिंग्वे का बूढ़ा मछेरा।

अरविन्द शंकर से सबंधित कथा यद्यपि उनके अपने वैयक्तिक और पारिवारिक जीवन को केन्द्र में रखकर गतिशील हुई है फिर भी अरविन्द शंकर के लम्बे जीवन संघर्ष के दौरान प्राप्त अनुभव और उनका विश्लेषण उसे अधिक

व्यापक सदभ भी देते हैं। उपन्यास का प्रारम्भ लेखक अरविंद शकर की साठवी वर्ष गाँठ का सकेत देता है। उनकी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर उनके सम्मान म नगर वासियो द्वारा एक वहत आयोजन किया गया है। जिसमे नगर की सामान्य जनता से लेकर राजनीतिक नेता तथा मत्री भी सम्मिलित होने हैं। आयोजन जितनी धूमधाम से होना है वह किसी भी रचना धर्मी मध्यवर्गीय लेखक के लिए अपार सुख और सतोष की बात हो सकती थी' परन्तु समूची भीड भाड तथा आयोजन की सारी तडक भडक के बीच भी अरविंद शकर उदासीन से हैं। उनका मन गहरे मानसिक उद्वेलन से आदोलित है। जीवन की जिन कटु परिस्थितियो से अकेले सघर्ष करते हुए उन्होने अपने साहित्यिक जीवन की इतनी मजिल तय की है उसके सदभ में वह सारा आयोजन उन्हे एक ढोग मालूम पडता है। वे जानते हैं कि आयोजन म भाग लेने वाले अधिकांश अतिथियो को न तो उनके साहित्यिक जीवन से कोई मतलब है और न उनकी पारिवारिक परिस्थितियों से। सब अपने-अपने स्वार्थवश इस आयोजन मे शामिल हैं। अरविंद शकर मच पर बठे हुए अपनी सारी जीवन-यात्रा पर दृष्टिपात करते हैं। अपने पूवजों का इतिहास दोहराते हैं और अपने विषम पारिवारिक जीवन का विश्लेषण करते हैं और उदासीन हो जाते हैं। अरविंद शकर का पारिवारिक जीवन बहुत सुखी नही है। व अपने पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन से असतुष्ट हैं। पत्नी माया की ओर से उन्हे अवश्य सवेदना तथा सहयोग प्राप्त हुआ है किन्तु सतानो की ओर से उन्हे सदव पीडा तथा चिन्ता ही मिली है। जीवन के आर्थिक अभाव उनके पारिवारिक जीवन को असतुष्टि कर देते हैं। उन्हे जितनी चिन्ता ससुराल म दुखी अपनी बडी लडकी की है उतनी ही क्षय रोग से ग्रस्त अविवाहिता छोटी लडकी नन्ही (वरुणा) की। बडा पुत्र भवानी शकर उनसे अलग रहता है और स्वय अपने परिवार मे इतना डूबा हुआ है कि पिता तथा अन्य भाई-बहनो के प्रति एकदम उदासीन है। छोटा पुत्र उमेश विद्यार्थी जीवन म है। अरविंद शकर को उससे कुछ आशाए भी हैं पर तु जीवन के कटु अनुभव उन्हे इस ओर से पूरा तरह आश्वस्त नही होने देते। भीतर ही भीतर व बहुत अशात हैं। एक लेखक के रूप म समाज द्वारा उन्हे जो प्रतिष्ठा मिली है, अपने अभावग्रस्त जीवन तथा ईमानदार साहित्य साधना के सदभ मे, वह प्रतिष्ठा उन्हे अपने जीवन का एक कठोर उपहास ही प्रतीत होती है। जीवन की कटु परिस्थितियों ने उन्हें इतना यथार्थवादी बना दिया है कि झूठा आशावाद उन्हें नही बहका पाता। कभी-कभी परिस्थितियों की विषमता के आगे वे अवश्य टूटते नजर आते हैं और एक स्थान पर तो आत्महत्या तक की बात

वे बूढ़े मछेरे और बचपन मे उन्हे धकल-धकेल कर आगे बढ़ाने वाले बछडे का चित्र उन्हे विषम परिस्थितियो मे भी दृढता के साथ सघर्ष करने तथा आगे बढने की शक्ति देता है। उनके मस्तिष्क मे एक नये उपन्यास लेखन की प्ररणा उत्पन्न होती है। अपने को बूढ मछेरे के मनोबिम्ब से प्रेरित कर तथा व्यापक सामाजिक जीवन से अचानक ही कुछ पात्रो को लेकर वे उस नये उपन्यास के कथानक का प्रारम्भ कर देते हैं। अपने इस उपन्यास लेखन के दौरान तमाम कथाओ तथा उनसे सम्बद्ध घटनाओ क साथ साथ अरविन्द शकर के सामाजिक तथा अपने पारिवारिक जीवन की क्रमश विकसित घटनाए भी स्थान पाती हैं। उपन्यास रचना के बीच-बीच म वे अपनी अपने परिवार की सम्बन्धियो तथा मित्रो की अनेक छोटी मोटी कथाए तथा घटनाए भी स्पष्ट करते चलते हैं। उपन्यास क अत तक आत आत अरविन्द शकर का पारिवारिक जीवन विषम स विषमतर हो जाता है। यक्ष्मा ग्रस्त उनकी छोटी लडकी नन्ही (वरुणा) एक मुस्लिम युवक से प्रम करक गभवती हो जाती है। सबसे बडा आघात तो उन्हे उस समय लगता है जब व अपने आई० ए० एस० पुत्र उमश की आत्म-हत्या का समाचार सुनते है। व अपने कलेजे को कठोर बनाकर किसी तरह इन कटु और विषम आघातो को सहन करते हैं और जीवन से एक नये स्तर पर फिर स समझौता करते हैं। हमिग्व का बूढा मछेरा उन्हे आस्था और शक्ति देता ह और बचपन का साथी बछडा उन्हें निरन्तर आगे बढने की प्ररणा देता है। उपन्यास के अत मे बूढे मछेरे तथा बछडे के ये सदभ ही उन्हे जीवन के प्रति सकल्पवान बनात हुए अधकार के मध्य भी प्रकाश की किरणे देखने की दष्टि देते हैं। वे इस निणय पर पहुचते हैं-'जड चतन मय विष अमतमय, अधकार प्रकाशमय जीवन म न्याय के लिए कम करना ही गति है। मुझ जीना हा होगा, कम करना ही होगा। यह बधन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अधकार म प्रकाश पाने क लिए मुझे जीना है।' उपन्यास की कथावस्तु का मूल सन्देश यही है।

अमत और विष उपन्यास का दूसरा कथानक अरविन्द शकर द्वारा रचित उपन्यास से सम्बन्ध रखता है। नागर जी के उपन्यास के भीतर जन्म लने वाले लेखक अरविन्द शकर कृत उपन्यास का प्रारम्भ लखनऊ नगर के एक मुहल्ल स होता है। राजा वशोराय की बारादरी इस उपन्यास की समस्त घटनाओ का केन्द्र बिन्दु है। यह बारादरी मुहल्ल क मध्यवर्गीय परिवारो स सम्बन्धित युवको के सारे क्रियाकलापो का एकमात्र स्थान है। मुहल्ल क सभी युवक पर्याप्त सगठित है और बारादरी का सदुपयोग वे एक क्लब के रूप में करते हैं। इन सभी लडको का सम्बन्ध मुहल्ल के मध्यवग

और निम्न मध्यवर्ग के परिवारों से है। किसी के पिता पंडिताई करते हैं, किसी के औषधालय चलाते हैं, किसी के यहाँ छोटा मोटा रोजगार होता है तथा कुछ अपने लडकों पर आश्रित हैं। लडकों में पारस्परिक मित्रता इतनी प्रगाढ है कि दुख सुख मे सदैव वे एक दूसरे का साथ देने को तत्पर रहते हैं। इन नवयुवको का नेता रमेश है, जो मुहल्ले के भगड पुरोहित पुत्ती गुरू का लडका है। पंडिताइ करना और दिन भर विजया के नशे मे चूर रहना पुत्तीगुरू का नित्य प्रति का काय है। अरविन्द शकर के उपन्यास का प्रारम्भ पुत्तीगुरू और उनके परिवार से होता है। पुत्ती गुरू की लडकी मनो का विवाह है। रमेश अपने मित्रो के साथ विवाह के लिए आवश्यक सामान जुटाने में व्यस्त है। गर्मी का मौसम है और सहालग के दिन हैं। रमेश और उसका मित्र लच्छू सामान न मिलने के कारण परेशान और चिंतित हैं। परन्तु किसी प्रकार पडोसी हलवाई लला बसन्तू मल की अफीम प्रमी पत्नी को प्रसन्न करके वे आवश्यक सामान पा जाते हैं। पुत्तीगुरू के घर मे विवाह की धूम मचती है। उनका घर आस पडोस के लडके लडकियों से भरा हुआ है। पडोसी रद्दूसिंह की बाल विधवा लडकी रानीबाला भी अपनी सहेली के विवाह में निरंतर पुत्तीगुरू के घर पर उपस्थित रहती है। उसकी काय कुशलता से घर के सभी लोग प्रभावित तथा प्रसन्न हैं। विवाह की इसी भाग दौड म रमेश और रानी बाला एक दूसरे के निकट आते हैं और एक पवित्र प्रम बधन मे बध जाते हैं। रमेश की बहन का विवाह सम्पन्न हो जाता है और अरविंद शकर क उपन्यास की कथा एक नया मोड लेती है। रमेश और रानीबाला के प्रणय-सम्बन्ध का, जिसका कि सूत्रपात रमेश की बहन के विवाह के समय हुआ था, क्रमश विकास होता रहता है। इसी बीच नगर म गोमती की महा बाढ का प्रकोप होता है। बाढ से नगर के आस-पास के सकडों गाव तो जल मग्न होने ही हैं, नगर भी उसकी भयकर तथा तीव्र लहरो से नही बच पाता। बाढ पीडितो की सहायताथ समूचे नगर में व्यापक रूप से तयारियां होने लगती हैं। रमेश और उसका मित्र-वग इस दिशा में अत्यत सराहनीय काय करता है। इसी सिलसिले में रमेश अपने बाढ ग्रस्त पिता के प्राणों की भी रक्षा करता है। रमेश और उसके मित्र-वग के ये साहसिक काय नगर में चर्चा का विषय बन जाते हैं। 'इंडिपेंडेंट' पत्र के सपादक श्री आनदमोहन खन्ना रमेश क इन कार्यो से विशेष प्रभावित होते हैं और उसे अपना सहयोगी बना लेते हैं। रमेश न केवल उनके पत्र के लिए महत्वपूर्ण सामग्री जुटाता है वरन् उसमे अपने प्रगतिशील विचारो से युक्त लेख भी

लिखता है। अपनी योग्यता तथा व्यवहार से वह शीघ्र ही मिस्टर और मिसेज खन्ना का अत्यधिक विश्वासपात्र तथा प्रिय बन जाता है। दोनों उसे पुत्रवत् स्नेह देने लगते हैं। रमेश रानीबाला से विवाह करने का निश्चय कर लेता है। अपने पिता के स्वभाव तथा रूढ़िगत विचारों से भली-भाँति परिचित होने के कारण उसे पर की ओर से ऐसा [illegible] के समर्थन की कोई आशा नहीं। परन्तु मि० और मिसेज खन्ना के आशीर्वाद पर उसका विश्वास है। रानीबाला रुद्रसिंह की पुत्री है। अपने पिता के समय में रुद्रसिंह ने अच्छे दिन देखे थे। परन्तु पिता की मृत्यु के पश्चात [illegible] गृहस्थी का बोझ उठाना पड़ता है तो वे असमर्थ हो जाते हैं। वे एक रईस और शानदार पिता के बिगड़े हुए पुत्र थे। इस कारण [illegible] आर्थिक अभाव से ग्रस्त हैं। उनके परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक है और रुद्रसिंह को नौकरी करना रुचिकर नहीं है। स्थिति [illegible] है कि फाकों की नौबत आती है। रानीबाला अपने [illegible] पिता रुद्रसिंह की निष्क्रियता पर बहुत दुखी रहती है। अधेड़ अवस्था में भी रुद्रसिंह ने दूसरा विवाह किया था। सौतेली माँ और पिता के पारस्परिक तनावपूर्ण सम्बन्ध रानीबाला को और भी अधिक पीड़ित करते हैं। परिवार की विषम से विषम तर होती हुई परिस्थिति को देखकर वह स्वयं अर्थोपार्जन का प्रयास करती है। रमेश मि० खन्ना से कहकर उन्हीं के यहाँ उसे भी नौकरी दिला देता है। यहाँ रानीबाला से मिलने का उसे पर्याप्त अवसर भी प्राप्त होता है। मि० और मिसेज खन्ना पर रानीबाला के गंभीर तथा शांत स्वभाव का अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ता है तथा उसके प्रति उनके मन में सहानुभूति उत्पन्न होती है। रमेश और रानीबाला अब निश्चय करते हैं कि वे समाज के समक्ष अपने पारस्परिक सम्बन्ध को व्यक्त कर दें। रानीबाला कुछ संकोच का अनुभव करती है किन्तु रमेश निडर है।

इसी बीच मुहल्ले में एक नई घटना जन्म लेती है जिससे एक नये संघर्ष का सूत्रपात होता है। संघर्ष का केन्द्र राजा कमोगय की बारादरी बनती है। अब तक वह बारादरी पूर्णतः यवन वर्गों के अधिकार में थी, परन्तु मुहल्ले के बड़े-बुजुर्ग, जिनका प्रतिनिधित्व [illegible] रूपचन्द करते हैं, उस बारादरी को हड़पने की योजना बनाते हैं। मुहल्ले का यह बुजुर्ग वर्ग बारादरी के स्थान पर एक मन्दिर का निर्माण करना चाहता है। मंदिर के प्रश्न को लेकर मुहल्ले में दो दल बन जाते हैं। एक नवयुवकों का तथा दूसरा रूढ़िवादी बुजुर्गों का। लाला रूपचन्द बारादरी के स्थान पर मंदिर की

प्रतिष्ठा का जाल रचकर मुहल्ले के सभी बड़े-बूढ़ों को अपने साथ कर लेता है और नवयुवक वर्ग किसी कीमत पर बारादरी छोड़ने को तैयार नहीं होता। एक ओर लाला रूप चन्द, बजूलाल, मिठ्ठन लाल, हरिबिलास बाबू, पुत्तीगुरू और राधेरमण जैसे मंदिर की प्रतिष्ठा के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ लगे हैं और दूसरी ओर रमेश, छलू, कम्मी, गोडबोले और जयकिशोर जैसे नवयुवक जो बारादरी न छोड़ने के लिए संकल्प बद्ध हैं। बारादरी के प्रश्न को लेकर नई और पुरानी पीढ़ी के बीच चलने वाला यह संघर्ष उग्र रूप धारण करता है। लड़कों का दल अनशन करता है अपने पिताओं का विरोध करता है। लड़कों के विरोध में बुजुर्ग वर्ग की ओर से जवाबी अनशन होता है। नारेबाजी होती है, निरन्तर संघर्ष बढ़ता है और अंतत पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ता है। रमेश, जयकिशोर, कम्मी, और गोडबोले गिरफ्तार होते हैं। छलू भाग जाता है। रूपचन्द तथा उसके रूढ़िवादी वर्ग के प्रति उनके मन में घृणा जन्म लेती है और वह इसका प्रतिशोध भी लेता है। सबकी निगाह बचाकर वह रात में मुहल्ले के सभी मंदिरों में आग लगा देता है। आग लगाने वाले की बहुत खोज होती है किन्तु छलू पुलिस के हाथ नहीं आने पाता। अन्तत इस संघर्ष में नई पीढ़ी की विजय होती है। रमेश और उसके साथी पुलिस की गिरफ्त से मुक्त हो जाते हैं। इस संघर्ष से छुटकारा पाने के पश्चात् रमेश पुन अपने और रानीबाला के संबंध पर दृष्टिपात करता है और उससे विवाह करने का पूर्णरूपेण निश्चय कर लेता है। विवाह का जितना विरोध रमेश के पिता पुत्तीगुरु की ओर से होता है उतना ही रानीबाला के पिता रद्दूसिंह की ओर से भी। सारी बुजुर्ग मंडली इस विवाह के विरुद्ध होती है परन्तु लक्ष्मा-दम्पति की छत्र छाया में दोनों का विवाह अत्यंत धूमधाम से संपन्न हो जाता है। विवाह के उपरान्त रमेश को अपना घर छोड़ देने के लिए विवश होना पड़ता है। वह रानीबाला के साथ अलग एक किराये के मकान में अपनी गृहस्थी का सूत्रपात करता है। मकान मालिक नवाब साहब रमेश के स्वाभाव तथा व्यवहार से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। वे रमेश को पुत्रवत स्नेह देते हैं। यही रमेश का परिचय नवाब साहब की भतीजी महाबानू से होता है और महाबानू के प्रति उसके मन में विकार उत्पन्न होता है। परन्तु पत्नी के प्रति अपने उत्तरदायित्व का स्मरण करके वह बलपूर्वक अपने को संभाल लेता है। इसके पश्चात का घटना-चक्र स्वातंत्र्योत्तर भारत की कई महत्वपूर्ण गतिविधियों को सामने लाता है। आम-चुनाव की सरगर्मी होती है। विभिन्न राजनीतिक दल और उनके पारस्परिक संघर्ष सामने आते हैं। घातक से घातक योजनायें बनती हैं और साम्प्रदायिक दंगे होते हैं। रमेश इन

अराजकतापूर्ण परिस्थितियों में भी अपने रत य म स्त रहता है और असामा-जिक तत्वों को दबाने का भरसक प्रयत्न करता है। लोग मि० खन्ना के कार्यालय को जलाने की योजना भी बनाते हैं परन्तु रमेश की सतर्कता उनकी आशाओं पर पानी फेर देता है। वह सारे षड्यन्त्र का भंडाफोड़ कर देता है। इस स्थल तक पहुँचते पहुँचते घटना-चक्र अति जटिल हो जाता है। रमेश को जब यह पता चलता है कि षडयन्त्रकारियों में उसका मित्र लच्छू भी है तो वह बहुत विचलित होता है। परन्तु लच्छू अपनी गलतियों का प्रायश्चित करके अतत रमेश का समर्थक ही बनता है और एक बार पुन नवयुवक वर्ग सगठित होकर स्वार्थी तथा मुनाफाखोर नेताओं के सामने चुनौती बनकर खड़ा हो जाता है। अरविंद नागर के उपन्यास की मुख्य कथा यही है।

इस मुख्य कथा के साथ ही अनेक छोटी-मोटी प्रासगिक कथाएँ भी जुड़ी हुई हैं। इन प्रासगिक कथाओं में लच्छू की कथा प्रमुख है। लच्छू बाबू सत्य नारायण का पुत्र है। रमेश का वह घनिष्टतम मित्र है। लच्छू अपने असतुलित पारिवारिक जीवन से अत्यत दुखी है। आर्थिक विपन्नता से उसका परिवार ग्रस्त है। ऐसी जटिल परिस्थितियों में रमेश उसका साथ देता है उसकी सिफारिश से मिस्टर खन्ना उसे प्रख्यात समाजवादी नेता तथा विचारक डा सर आत्माराम के यहाँ नौकरी दिला देते हैं। डा० आत्माराम एक आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने नगर से दूर 'सारस लेक' नामक एक 'इस्टेट' की स्थापना की है जिसे वे समाजवादी व्यवस्था का एक छोटा रूप मानते हैं। डा० आत्माराम देश के एक मान्य नेता तथा मत्री हैं। वे लच्छू को जूनियर सक्रेटरी के पद पर अपने अंतर्गत रख लेते है। लच्छू घर के अभाव-ग्रस्त वातावरण से एक नई दुनिया में आ जाता है। यहाँ का वातावरण उसके लिए बिल्कुल नया तथा अनोखा था। परन्तु दो चार दिन रहकर ही वह जान लेता है कि यहाँ का आंतरिक वातावरण अत्यत दूषित है। बड़े-बड़े अफसरों की पत्नियों द्वारा फैलाया गया व्यभिचार का साम्राज्य पहले तो लच्छू के मन में भय और सकोच उत्पन्न करता है परन्तु धीरे-धीरे वह भी उस वातावरण का एक अग बन जाता है। मि० माथुर की पत्नी उमा माथुर उसे अपने जाल में फासती हैं और लच्छू उमा माथुर के साथ रगरेलियाँ मनाने लगता है। 'सारस लेक' में कुछ माह व्यतीत करने के पश्चात लच्छू का सौभाग्य उसे रूस ले जाता है। वहाँ उसकी मित्रता यूसुफ नामक व्यक्ति से होती है। यूसुफ उसे रूस की सैर कराता है। रूस की समाजवादी व्यवस्था से लच्छू अत्यधिक प्रभावित होता है। यहीं पर वह एक रूसी लड़की के प्रति भी आकर्षित होता है,

परन्तु उसका यह आकर्षण उमा माथुर के प्रति उसके आकर्षण की तरह वासनामय नहीं है। यूसुफ के साथ रूस में कुछ काल तक रहकर वह पुनः भारत लौट आता है। 'सारस लोक' के अफसरों के सूचना के कारण लच्छू की नौकरी छूट जाती है और वह लखनऊ अपने घर लौट आता है। परन्तु अब वह घर के अभाव ग्रस्त वातावरण से अपनी संगति नहीं बिठा पाता है। वह नई-नई योजनाएँ बनाता है। रईस बनने के वह ख्वाब देखता है परन्तु धनाभाव के कारण उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हो पाती। ये अधूरी इच्छाएँ उसे गलत राह पर चलने को विवश करती हैं और उसका झुकाव अनैतिक तथा असामाजिक कार्यों की ओर होता है। धन और वैभव के लोभ में वह इतना अंधा हो जाता है कि उसे अपने पराये का ख्याल नहीं रहता। यहां तक कि वह अपने परममित्र रमेश के विरुद्ध रचे गये षड्यन्त्र में भाग लेता है परन्तु सफल नहीं हो पाता। घटना-चक्र अंततः उसे सही मार्ग पर लाता है। वह अपने अपराधों का प्रायश्चित करता है।

लच्छू की कथा के अतिरिक्त कतिपय छोटी-छोटी कथा-धाराएँ भी मुख्य कथा से सम्बद्ध हैं, जो या तो मुख्य कथा को बल देती हैं या किसी चरित्र की समग्र भूमिका का उद्घाटन करता हैं। इन कथाओं में लाल साहब और वहीदन की कथा नवाब अनवरमिर्जा और महाबानू की कथा, तथा चोइथराम सिंधी की कथा उल्लेखनीय हैं। लाल साहब और वहीदन की कथा का सूत्रपात बाढ़ के समय से होता है। बाढ़ ग्रस्त लोगों की सहायता करने के दौरान रमेश का परिचय इन लोगों से होता है और उसे कुछ नये रहस्य प्राप्त होते हैं। लाल साहब चरित्र-भ्रष्ट व्यक्ति हैं, जो अपने कर्मों से अपनी पत्नी तथा बच्चों द्वारा तिरस्कृत कर दिए जाते हैं। उनका संबंध वहीदन से जुड़ता है। जो डा० आत्माराम के पिता सर शोभाराम की वेश्या प्रेमिका मुश्तरी से उत्पन्न होने वाली औलाद है। लाल साहब और वहीदन दोनों का जीवन वीभत्सता की हद तक वासना के पंक में डूबा हुआ है। अंततः दोनों एक दूसरे को छोड़ देते हैं।

नवाब अनवर मिर्जा रमेश के मकान मालिक हैं और महाबानू उनकी नातिन है। वह अपने प्रेमी के साथ घर से भाग जाती है, परन्तु जब उसका प्रेमी उसे धोखा देकर अन्यत्र चला जाता है तो उसे हारकर नवाब साहब के यहां आश्रय लेना पड़ता है। एक दिन उसे अपने पूर्व प्रेमी का खत मिलता है, परन्तु नवाब साहब के कड़े अनुशासन में वह उससे मिल नहीं पाती। वह रमेश से सहायता की याचना करती है। रमेश भयवश उसकी कोई सहायता नहीं

कर पाता । अतत वानू चुपचाप घर से भाग जाती है ।

चोइथ राम सिंधी की कथा अत्यत मार्मिक है । रानी और गोपी उसकी लडकियाँ हैं । दोनो भ्रष्ट और बदचलन हैं । वे समूचे वातावरण को अपनी बदचलनी द्वारा दूषित बनाए हुए हैं । अपनी इसी बदचलनी के कारण हिंदू मुस्लिम दगे म गोपी की हत्या कर दी जाती है । चोइथ राम अत म विक्षिप्त हो जाता है ।

इन कथा धाराओ क अतिरिक्त गहदर्दी की लघु कथा भी पाठकों क मन मे सहानुभूति उत्पन्न करती है । हाजा नवा बख्श, चौधरी वदा खाखा मियाँ, रेवतीरमन की छोटी मोटी कथाए भी उपन्यास के कुछ पृष्ठ घरती हैं तथा किसी न किसी रूप में मुख्य कथा स अपना सबध जोड हुए हैं ।

कथावस्तु का विवेचन –

नागर जी का यह उपन्यास कथा शिल्प की दृष्टि से एक नवीन तथा साहसपूण प्रयाग है । इसम नागर जी न अपने दूसरे उपन्यासो म सवथा भिन्न कथा कहने की एक नई पद्धति अपनाई है । जहा अन्य उपन्यासकार कथानक के प्रति अपनी उदासीनता प्रकट करते हैं और कलाकारी भूमिका पर रसिकता का सहारा लते है वहा इस उपन्यास क द्वारा नागर जी न कथानक क प्रति अपनी रुचि दिखलाकर उस एक नया रूप प्रदान किया है जो सरस और रोचक होने के साथ-साथ प्रभावशाली भी है । नागर जी आज क एक ख्याति प्राप्त कथाकार हैं और इस क्षेत्र मे वे प्रमचन्द की परम्परा के सशक्त और समर्थ उत्तराधिकारी हैं । एक अच्छे कथाकार होने के कारण ही अपने औपन्यासिक कथानकों म वे पूणरूपेण सफल है । उनके पास कथानकों का एक अच्छा-खासा भण्डार ह । यही उनकी महत्ता का एक प्रमुख कारण ह । 'अमृत और विष' में उन्होंने दोहरे कथानक की सृष्टि की ह । एक का सम्बन्ध नायक अरविंद शकर के व्यक्तिगत जीवन की घटनाओ स है, दूसरे कथानक का सम्बन्ध उनके द्वारा लिखे गये उपन्यास से है । उपन्यास में य दानो कथानक साथ-साथ गतिशील हुए हैं और दोनो ही एक दूसरे स स्वतन्त्र हैं । नागर जी ने इन दोनो कथानकों का सम्बन्ध परिश्रम पूवक स्थापित किया है । यही नहा जिस कथानक का सम्बन्ध अरविन्द शकर क उपन्यास से ह उसके अतगत व उपन्यास रचना के कतिपय महत्वपूर्ण सूत्रों का भी विवचन करते हैं । उदाहरण के लिए बीच-बीच मे वे अपने उपन्यास की रचना-प्रक्रिया को भी स्पष्ट करत चलते

हैं। हम ऊपर कह चुके ह कि नागर जी की यह टेकनिक हिन्दी उप यास मे सवथा भिन्न और नई है। इन बातो का विवचन नागर जी ने आख्यानक शली म बडे ही सहज ढग स किया है। य बातें किसी समीक्षक का निष्कष न बनकर एक रचनाकार के अपने अनुभवा का अग बनकर आई हैं। नागर जी क खटटे-मीठे अनुभवो ने उप यास के मह व को और भी बढा दिया हैं। जहा तक उपयास क दोहरे कथानक का प्रश्न है, हिन्दी मे दोहरे कथानका को लेकर कुछ कहानिया अवश्य रची गई हैं। अज्ञेय की 'पठार का धीरज' तथा कमलेश्वर की 'राजा निरबसिया' इसी कोटि की कहानिया ह। प्रेमचन्द का 'काया कल्प' उपन्यास भी दोहर कथानक की सष्टि करता है किन्तु उसका प्रयोग अत्यत सीमित ह। अमत और विष' की कथावस्तु इन सबसे बिल्कुल भिन्न ह इसमे दो कथानक है प्रत्यक्ष रूप से दोना स्वतन्त्र, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप स एक दूसरे से सबद्ध हैं।प्रश्न उठता है कि आखिर इन पथक पृथक कथानको मे नागर जी न किस प्रकार सामजस्य बिठा पाया होगा ? जसा कि डा० धम वीर भारती का कथन ह, प्रारम्भ मे उन्हे भी यह आश्चय हुआ कि नागर जी उपन्यास के इन दो बेमेल कथानको मे किस प्रकार 'सामजस्य बिठा पायेंगे परन्तु उपन्यास को आद्यत पढ चुकने के पश्चात उनका निष्कष है ' उपन्यास शुरू करने के बाद कुछ अध्याया तक तो कथा कहने क इस असाधारण ढग के कारण पाठक को कुछ झटके लगते हैं लेकिन उपन्यासकार की यही सफलता है कि कुछ ही अध्यायो के बाद पाठक न सिफ इस शिल्प का अभ्यस्त हो जाता है वरन उस इसमे एक नये प्रकार का 'थ्रिल' मिलने लगता है और अनेक अध्यायों तक सीधी-सादी कथा मे डूबने के बाद जब अकस्मात फिर अरविन्द शकर कथा क पात्रा को पीछे हटाकर सीधे पाठका से बात करने लगत हैं तो पाठक उनके साथ भी उतनी ही तदात्मता का अनुभव करता है, जितनी उपन्यास की मूल कथा के पात्रो और परिस्थितियो के साथ। कथा कहने का यह ढग सचमुच न केवल अनोखा य है वरन बहुत साहसिक भी।

डा० धमवीर भारती क अनुसार "इस उपन्यास म कथानक के तीन स्तर हैं—अरविन्द शकर क जीवन का स्तर, उसकी सजन प्रक्रिया मे निकलने वाले पात्र और परिस्थितिया और उनकी कथा तीसर वास्तविक लेखक यानी नागर जी की कथा दृष्टि। य तीनो एक के अन्दर एक विचित्र ढग स गुथे हुए हैं। कभी एक दूसरे क पूरक होकर कभी एक दूसर के प्रेरक होकर, कभी एक दूसरे क विश्राम होकर।' कहने का तात्पय यह है कि नागर जी ने पर्याप्त जान बूझकर कथानक को एसे सूत्रो स बाधना चाहा है जो उलझन स भरे हैं,

इसे उनका दोष नहीं कहा जा सकता। यह उनकी शिल्पगत क्षमता ही है कि उलझन से भरे कथा-सूत्रों को नियोजित करके भी उन्होंने कथा के अंतर्गत उन्हें यथा समय सुलझाने का प्रयत्न किया है। यही प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु की सबसे बड़ी विशेषता है। डा० धर्मवीर भारती के अनुसार प्रयोग की दृष्टि से उपन्यास का यह कथा शिल्प रोचक और सफल तो है परन्तु इस प्रयोग में दो खतरे भी थे। एक तो इसमें इतना उखड़ापन आ जाय कि कथा की गति बाधित होने लगे और दूसरे वास्तविकता या प्रामाणिकता की जो भ्रांति औपन्यासिकता का एक महत्वपूर्ण तत्व है, वह स्थापित ही न हो पाय और सारी कहानी बनावटी मालूम होने लगे। पहले खतरे से तो यह उपन्यास पूरी तरह नहीं बच पाया है लेकिन नागर जी की प्रतिभा और कथा शैली की यह उपलब्धि है कि अपने शिल्प और पात्रों की गढ़न की सारी प्रक्रिया को पाठक के समक्ष बिल्कुल उद्घाटित कर देने के बाद उन्होंने न केवल उसमें और भी आत्मीयता और अंतरंगता स्थापित कर ली है वरन कथा को एक नये स्तर पर वास्तविकता और प्रामाणिकता का स्वाद दे दिया।

समग्रतः जहाँ तक कथा शिल्प का प्रश्न है अपने इस प्रयोग में नागर जी को बहुत अच्छी तरह सफलता मिली है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि शिल्प सम्बन्धी यह प्रयोग उन्होंने वस्तु के मूल्य पर नहीं किया वरन अपनी मूल्यवान वस्तु को प्रभावशाली अभिव्यक्ति देने के लिए उन्हें कथा कहन की यह पद्धति अपनानी पड़ी। नागर जी का शिल्प सम्बन्धी यह सफल प्रयोग उन समीक्षकों के आरोपों का एक सटीक उत्तर है जो प्रेमचन्द और उनकी परम्परा के कथाकारों में शिल्प सम्बन्धी कमजोरियाँ देखने के ही अभ्यस्त हैं। जहाँ तक उपन्यास की कथावस्तु की गति में बाधा अथवा उखड़ेपन का प्रश्न है उसका सम्बन्ध इस उपन्यास के विशेष शिल्प से उतना नहीं जितना उपन्यास लेखन सम्बन्धी दूसरी प्रवृत्तियों से। उनके बूँद और समुद्र उपन्यास में इस प्रकार का कोई भी प्रयोग नहीं है, परन्तु बहुत से तत्व उसमें ऐसे हैं जो गतिरोध उत्पन्न करते हैं जैसे लेखक की लम्बे-लम्बे वर्णनों की प्रवृत्ति, पात्रों द्वारा लम्बे-लम्बे वक्तव्य देना, उनका अनियन्त्रित चिन्तन और स्वतः लेखक द्वारा अपने तमाम ज्ञान को इकट्ठा ही पाठकों के समक्ष रखने लगना। ऐसी ही कुछ बातें नागर जी के 'अमृत और विष' उपन्यास में हैं। यों नागर जी द्वारा प्रस्तुत वर्णन अपने आप में बहुत ही सजीव है जिससे उनकी अद्भुत निरीक्षण शक्ति और प्राणवान् चित्रण शैली का परिचय मिलता है, परन्तु जब वे इन वर्णनों को दूर तक खींचने का प्रयास करते हैं तब अवश्य कथावस्तु की गति

में शिथिलता आ जाती है। इस उपन्यास में बारात, बाढ़, रुच्छू की शवयात्रा आदि के वर्णन यद्यपि बड़े ही सजीव हैं, परन्तु उनसे कथा की सहज गति में निश्चित ही अवरोध-सा उत्पन्न हुआ है। बारात सम्बन्धी वर्णन उपन्यास के चौबन पृष्ठ घेरता है, बाढ़ के वर्णन उपन्यास के लगभग सौ पृष्ठों तक बिखरे हुए हैं और यही विस्तार हमें अन्य प्रसंगों में भी दिखाई पड़ता है। अरविन्द शंकर के स्वगत के प्रसंग तथा नागर जी का अपना चिन्तन भी उपन्यास में काफी जगह घेरता है। 'सारस लेन' के वर्णन तथा गतिविधियों को भी आवश्यकता से अधिक विस्तार मिला है। नागर जी की एक प्रवृत्ति उपन्यास में रोमांचकारी घटनाओं की सृष्टि करके पाठक को कुछ उस प्रकार का कुतूहल जनित आनन्द देना है, जैसा कि प्राय जासूसी उपन्यासों में पाया जाता है। ठाकुर रद्धूसिंह के मकान में पुलिस और डाकुओं की रोमांचकारी घटना इसी तथ्य को सामने लाती है। इन घटनाओं का उपन्यास की मूल कथावस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, वे मात्र 'सस्पेंस' की दृष्टि से ही उपन्यास में लाई जाती हैं और प्राय, कथावस्तु को देखते हुए अहेतुक मालूम पड़ती हैं। नागर जी अपने उपन्यासों को यदि ऐसी घटनाओं से मुक्त रख सकते तो अच्छा होता। परन्तु ये बातें उपन्यास की कथावस्तु के समूचे गठन को देखते हुए ऐसी नहीं हैं कि उन्हें आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जाय। ये सामान्य त्रुटियाँ हैं जो इतनी व्यापक तथा विस्तृत कथावस्तु वाले उपन्यास के लिए स्वाभाविक हैं।

इस उपन्यास की कथावस्तु का एक प्रधान आकर्षण उसमें चित्रित यथार्थ है। न केवल नागर जी ने इस यथार्थ के प्रति अपनी अकृत्रिम निष्ठा का परिचय दिया है, लेखक अरविंद शंकर का सत्य भी यही है। अरविंद शंकर जिस निर्मम यथार्थवादी दृष्टि से अपने स्वयं के जीवन का विश्लेषण करते हैं वह अदभुत है। युगीन सामाजिक व्यवस्था पर की गई उनकी टिप्पणियाँ भी यथार्थ के जीवित सदर्भों के साथ ही सामने आई हैं। वस्तुतः नागर जी ने इस कृति में कई पीढ़ियों के सामाजिक जीवन का चित्रण किया है और उसके माध्यम से इस अवधि के दौरान अनेक वर्गों के मिटने और बनने का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया है। विक्टोरिया युग से लेकर स्वातन्त्र्योत्तर युग तक का जीवन पारदर्शी सफाई के साथ इस कृति में प्रस्तुत है। इस अवधि की सारी महत्त्वपूर्ण आर्थिक राजनीतिक, और सामाजिक और सांस्कृतिक उथल पुथल विशदता से हमें इस कृति में दिखाई पड़ती है। नाना प्रकार की परिस्थितियाँ और नाना प्रकार के पात्र अपनी वर्गीय प्रवृत्तियों के साथ यहाँ

उपस्थित हैं। सामतवादी युग के मूल्यों और मान्यताओं के साथ नये युग के मूल्य और मान्यताए, उनकी सामजस्यपूर्ण स्थितियाँ, असगतियाँ तथा अन्तर्विरोध–सब यहाँ हैं। विषरूपा शक्तियो से लेकर अमृतरूपा शक्तियों तक इस उपन्यास की कथावस्तु का प्रसार है। वस्तुत यह एक वृहत भारतीय समाज की कथा है जिसे बडे अधिकार के साथ नागर जी ने कहा है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत की उभरती हुई नई पीढी का वेग, उनकी आशाएँ और आकाक्षाए उनकी गिरावट तथा मूल्यगत विघटन दोनो को ही नागर जी ने सच्चे यथार्थवादी कलाकार के रूप मे चित्रित किया है। लगता है कि नई पीढ़ी मे जिस आस्था को लेखक ने देखना चाहा था, वह उस आकाक्षित रूप मे प्राप्त नहीं हुई। जहाँ तक इस तथ्य का प्रश्न है एक हल्के विषाद की छाया कथावस्तु पर महराती रहती है। परन्तु नागर जी ने स्वातन्त्र्योत्तर युग के इस यथार्थ से भी साहस पूर्वक आँखे मिलाई हैं। इसे नागर जी की निर्भीकता तथा ईमानदारी ही माना जायगा।

उपन्यास की कथा मध्यवर्गीय जीवन को लेकर चलती है वरन् अपने केन्द्रीय रूप मे यह कृति आज के सामाजिक जीवन टूटते हुये मध्यवर्ग की कथा कहती है। नागर जी ने इस वर्ग का अत्यन्त सजीव और मार्मिक चित्र एक विस्तृत कथावस्तु के माध्यम से प्रस्तुत उपन्यास मे चित्रित किया है। यह कथावस्तु समाज का एक विशद और गभीर समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो नागर जी की यथार्थवादी दृष्टि गहन अध्ययन, चिन्तन और मनन तथा उनके भोगे गये नाना प्रकार के अनुभवो की सूचक है। उपन्यास की कथावस्तु समाज की उन दो मूलभूत शक्तियो को उभारती है जो क्रमश समाज को प्रगति की ओर बढाने वाली हैं या समाज की प्रगति में गतिरोध उत्पन्न कर उस पीछे की ओर खीच रही हैं। समाज का य प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियाँ ही वस्तुत, 'अमृत' और विष के रूप म उपन्यास मे प्रस्तुत हैं। इन्ही दोनो शक्तियो के मध्य डूबता उतराता जाता सा समाज और मानव–जीवन अत्यंत सजीवता तथा मार्मिकता को लिए हुय कथा वस्तु की केन्द्रीय विशेषता के रूप म उपस्थित है।

सामान्य जन जीवन के चित्रण भी प्रस्तुत उपन्यास म अत्यन्त सजीवता से उतरे हैं। यह वह क्षेत्र है जिसमे नागर जी की लेखनी सिद्ध है। नागर जी की इस विशेषता ने कथावस्तु को रोचकता प्रदान की है। 'अमृत और विष' शब्द व्यजना गर्भित हैं जो कथावस्तु के समूचे उद्देश्य को व्यञ्जित करने वाले

प्रतीक हैं। नागर जी ने उन्हें 'प्रकाश' और 'अंधकार' के पर्याय के रूप में भी ग्रहण किया है। उन्होंने अपनी इस कृति में उन दोनों ही प्रकार की शक्तियों का विवरण दिया है, जो सामाजिक विकास के संदर्भ में अमृत तथा विष कही जा सकती हैं। लेखक अरविंद शंकर परिस्थितियों की समूची कटुता के बावजूद आस्था के प्रकाश में एक नये पथ पर चलने का संकल्प करते हैं। जीवन के समूचे विष को उनकी आस्था अमृत में बदल देती है। यह विष पर अमृत की विजय है, जिसे नागर जी ने अपनी इस कथावस्तु द्वारा पुष्ट किया है। कथावस्तु की यह आदर्शवादिता तथा सोद्देश्यता उपन्यास का प्राण तत्व मानी जा सकती है।

वस्तु पक्ष : कतिपय विशेषताएँ

वस्तु तत्व की प्रमुखता—

श्री अमृतलाल नागर प्रेमचन्द की परम्परा के एक समर्थ उपन्यासकार हैं। साहित्य तथा जीवन सम्बन्धी प्रेमचन्द के दृष्टिकोण और विचारों को न केवल उन्होंने आत्मसात ही किया है, वरन् अपने उपन्यासों में नये युग संदर्भों के मध्य उसे समृद्धि तथा विकास की नई भूमिकाओं तथा दिशाओं तक गतिशील भी किया है। कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द का आगमन एक युग प्रवर्तक के रूप में होता है। उपन्यास शिल्प में अनेक नई और महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद प्रेमचन्द का यह युग प्रवर्तन कथा साहित्य को वस्तु तथा विचार पक्ष की भूमिका में ही अधिक सम्पन्न बनाने से सम्बन्ध रखता है। विश्व के अनेक मान्य प्रगतिशील लेखकों की भाँति प्रेमचन्द भी साहित्य के अन्तर्गत वस्तु पक्ष की प्रमुखता के समर्थक थे। शिल्प को उन्होंने वस्तु की अभिव्यक्ति का माध्यम स्वीकार किया था। क्योंकि कला और शिल्प की बारीकियों में वही लोग जाते हैं जिनके पास कहने को कुछ नहीं होता, जो जीवन के व्यापक अनुभवों से शून्य हैं। जिनके पास अध्ययन की गहराई है, जीवन के खट्टे मीठे अनुभव हैं वे उनकी अभिव्यक्ति को ही प्रमुखता देते हैं। उनके साहित्य में कला और शिल्प गौण रूप में अभिव्यक्ति का एक माध्यम बनकर आते हैं। प्रेमचन्द के पास अध्ययन और अनुभवों का एक अच्छा-खासा भण्डार था। यही कारण है कि उनके उपन्यासों की केन्द्रीय विशेषता उनकी वस्तुगत तथा विचारगत भूमि और उनका संवेदना जगत ही है। प्रेमचन्द के एक समर्थ उत्तराधिकारी होने के नाते नागर जी का सत्य भी

यही है। वे कलावादी नहीं। प्रेमचन्द की भांति वे उपयोगितावादी हैं। साहित्य के माध्यम से उन्होंने मानव जीवन की अभिव्यक्ति को ही प्रधानता दी है।

अमृत और विष' में नागर जी ने इसी वस्तु पक्ष को केन्द्र में रखकर सामाजिक जीवन तथा मानव जीवन का अत्यन्त सजीव रेखाओं द्वारा स्पष्ट किया है। सम्पूर्ण उपन्यास मानव जीवन के विविध पक्षों और स्तरों को लेकर गतिशील हुआ है। अनुभवों की समृद्धता और सघनता अध्ययन की व्यापकता और गहनता तथा चिन्तन की प्रौढ़ता तीनों का बड़ा ही आकर्षक संगम नागर जी की इस कृति में देखा जा सकता है। युग जीवन और उसके यथार्थ को उन्होंने सिर्फ देखा ही नहीं वरन अपने संवेदनशील हृदय तथा मन की पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ उसे चित्रित भी किया है। इसलिए 'अमृत और विष वस्तु तथा विचार पक्ष की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न और समृद्धि-शाली बन पड़ा है। केवल सम्पन्न ही नहीं उसका क्षेत्र भी अत्यन्त व्यापक और विशाल है। जहाँ एक ओर प्रस्तुत उपन्यास में हम विविध तथा बहुरंगी मानव जीवन तथा मानव चरित्र के चित्र दिखाई पड़ते हैं वहीं दूसरी ओर उतना ही विविध तथा बहुपक्षीय उनका चिंतन। उनका वस्तु तथा विचार पक्ष प्रेमचन्द की भांति ही प्रौढ़ तथा सम्पन्न है। यही कारण है उनके उपन्यास में कला और शिल्प पक्ष की अपेक्षा वस्तु पक्ष को प्रमुखता मिली है।

हम अपने अगले विवेचन में 'अमृत और विष उपन्यास के वस्तु पक्ष की कतिपय विशेषताओं पर प्रकाश डालेंगे।

वस्तु की समस्यामूलकता—

जैसा कि कहा जा चुका है कि 'अमृत और विष का सम्बन्ध आधुनिक युग तथा आधुनिक सामाजिक जीवन से है। आधुनिक सामाजिक जीवन में भी लेखक ने मध्यवर्गीय जीवन को इस उपन्यास के केन्द्र में रखा है। इसलिए उपन्यास की कथावस्तु को पर्याप्त विविधता मिली है। कथावस्तु को समग्रता में देखने पर जो तथ्य पहली ही दृष्टि में स्पष्ट होता है उसका सबंध इस उपन्यास की वस्तुगत समस्या मूलकता से है। नागर जी का यह उपन्यास एक सोद्देश्य भूमिका पर गतिशील हुआ है। इसके माध्यम से उन्होंने युग तथा जीवन की व्याख्या करनी चाही है। यही कारण है कि प्रस्तुत उपन्यास का रूप इस प्रकार समस्यामूलक बन सका है। इन समस्याओं का रूप भी बहु-

मुखी है। लेखक ने इन समस्याओ को मात्र उपन्यास में एकत्र ही नही किया है, उनके सारे पनो को उभारते हुए उनके समाधान की ओर सकेत भी किया है। विविध समस्याओं की उपस्थित ने ही 'अमत और विष' को एक गम्भीर आकृति प्रदान की है। समाज की सतह पर तरती हुई समस्याओ से लेकर सतह के नीचे दबी हुई समस्याओ तक इस उपन्यास का प्रसार है। इसम व्यक्ति की भी समस्याएँ हैं और समाज की भी। इनका सम्बन्ध देश से भी है और देशान्तर से भी। कतिपय समस्याएँ ऐसी हैं जो हजारा वर्षो के दौरान आज भी वसी ही प्रमुख बनी हुई हैं। कुछ समस्याएँ ऐसी भी हैं जो बदलते हुए युग सदर्भो म मिटती और जन्म लेती रही हैं।

अमत और विष' समस्या गभ उपन्यास है। वतमान स्वातन्त्र्योत्तर युग की अनेकानेक समस्याओ का चित्रण और विश्लेषण हमे इस उपन्यास मे मे मिलता है। लेखक ने इसके अन्तगत विक्टोरिया युग से लेकर देश के स्वातन्त्र्योत्तर युग तक की कथा कही है। सामतवादी और पूजीवादी जीवन मूल्यो की पारम्परिक टकराहट, राष्टीय विचारधारा तथा अग्रेजपरस्ती का सघष, प्रतिक्रियावादी तथा जनवादी दष्टिकोणो का प्रगतिशील चि तन के सदभ मे होने वाला द्वद्व, नये सदर्भो मे ज म लेने वाली व्यापक मूल्य हीनता, अराजकता तथा दिशाहीनता, साम्प्रदायिकता, आस्था-अनास्था, युवक छात्र विद्रोह, नई-पुरानी पीढी का सघष, नई पीढी की शक्ति तथा उच्छ खलताएँ, नारी पराधीनता, प्रेम और विवाह अन्तर्जातीय विवाह, समाज की पूजीवादी अथ व्यवस्था के बीच लेखक अथवा कलाकार का अस्तित्व और उससे सम्बन्धित नाना प्रकार के प्रश्न—कहने का तात्पय यह कि प्रस्तुत उपन्यास समस्याओ का एक महाजाल लेकर गतिशील हुआ है। उपन्यास का मूलभूत प्रश्न आस्था बनाम अनास्था का है और लेखक ने अत में आस्था को विजयी दिखलाया है। समस्याओं का यह महारूप ही उपन्यास की कथावस्तु को आकषक तथा प्रभावशाली बनाता है।

"अमृत और विष' उपन्यास की समस्याओ का विस्तत विवेचन हम अपने आगे के अध्याय में करेंगे।

यथार्थवाद—"सामाजिक यथार्थ"—

समस्या मूलकता के अतिरिक्त वस्तु के धरातल पर उपन्यास की दूसरी महत्वपूण तथा वे शिष्ट्य विशेषता उसका यथाथवाद है। भारतेन्दु

हरिश्चन्द्र के समय से विकास पाने वाली यथार्थवादी धाराको नागर जी ने अपने उपन्यासों में एक नया उत्कर्ष प्रदान किया है। यथार्थ के इस महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली चित्रण के सन्दर्भ में न केवल उपन्यास में उठाई गई समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है बल्कि उनके विश्लेषण तथा समाधान सम्बन्धी प्रयत्नों को भी आज के सजग पाठक के लिए ग्राह्य बनाया है। उपन्यास के अन्तर्गत प्रश्रय पाने वाला यह यथार्थ, दृष्टिकोण तथा चित्र दोनों भूमियों पर नागर जी की संश्लिष्ट कला-क्षमता का प्रमाण है। उनका यथार्थवाद 'प्रकृतवाद' तथा 'फोटोग्राफिक यथार्थ शैली' से प्रभावित नहीं है। पश्चिमी समीक्षा के शब्दों में कहें तो उन्हें आलोचनात्मक यथार्थवादी कलाकारों की उसी परम्परा में ग्रहण किया जा सकता है जिस परम्परा में ताल्सताय और प्रेमचंद जैसे उपन्यासकार आते हैं। वे एक स्तर पर यदि यथार्थवादी भूमिका के प्रति सच्चे और ईमानदार हैं तो दूसरे स्तर पर अपनी क्रांतिकारी मानवतावादी चेतना के प्रति भी। तत्कालीन समाज और युग जीवन को नागर जी ने यथार्थ की सजीव रेखाओं के साथ अमृत और विष' में प्रस्तुत किया है। उपन्यास का विशाल कथा पट विक्टोरिया युग से लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारत का सम्पूर्ण चित्र यथार्थ सन्दर्भों में चित्रित करता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की लगभग समस्त महत्वपूर्ण गतिविधियों का यथार्थ आकलन इस उपन्यास में दिखाई पड़ता है। इनके साथ ही साथ समाज और जीवन के विविध स्तर, उनके प्रतिनिधि पात्रों की मनोवृत्तियों आदि को भी यथार्थ भूमिकाओं पर ही प्रस्तुत किया गया है। मध्यवर्गीय जीवन के अनेकानेक स्तर इस उपन्यास में नागर जी की यथार्थवादी दृष्टि के आलोक में उद्घाटित हुए हैं। अनुभवों के क्षेत्र में लेखक का वैविध्य उपन्यास में चित्रित यथार्थ को न केवल विश्वसनीय बनाता है बल्कि उसे मध्यवर्गीय समाज के विश्व कोष का गौरव प्रदान करता है। मध्यवर्ग के ऊँचे तबके तक के व्यक्तियों से लेकर गन्दी मुहल्लों के सामान्य निम्नमध्यवर्गीय जीवन तक का यथार्थ वर्णन इस उपन्यास में अत्यन्त पारदर्शी सफाई के साथ हुआ है। मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण की दृष्टि से तो यह उपन्यास अपने आप में अनूठा है। रेखाचित्र नागर जी की यथार्थवादी शैली की एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली विशेषता है। जन जीवन को चित्रित करने के लिए लेखक ने इन्हीं रेखाचित्रों की सहायता ली है। ये रेखाचित्र नागर जी के यथार्थ का अत्यन्त सजीव अंग बन कर उपन्यास में प्रस्तुत हुए हैं। वर्णनों की सजीवता नागर जी के यथार्थवाद की दूसरी प्रमुख विशेषता है। उपन्यास में आर्य बरात के दृश्य,

बाढ का वणन, लच्छू की रस यात्रा, आम चुनाव, छात्र विद्रोह, हडताल आदि के वणन नागर जी के यथायवाद को ही पुष्ट करते हैं।

'अमत और विष' की कथावस्तु की सजीवता का कदाचित सबसे प्रधान कारण यथाय सन्दर्भों मे उसका प्रस्तुतीकरण है। यथाथवाद इस उपन्यास का मरुदण्ड माना जा सकता है। यथाथ के अभाव मे वस्तुत उप यास का वस्तु पक्ष अपनी सम्पूणता और समग्रता मे प्रस्तुत ही न हो सकता था।

मानवतावाद-जनवाद –

अपने इस उपन्यास म नागर जी अपनी यथाथवादी तथा मानवतावादी दोना भूमिकाओ पर आस्थावान् तथा ईमानदार बने रह सकने म पूणत सफल हुए है। हमने उनके यथाय को 'प्रकृतवादियो' से भिन्न माना है जिसका प्रधान कारण नागर जी की मानवतावादी या अधिक स्पष्टता से कह तो उनकी जनवादी आस्था है। उनक यथाथवाद तथा मानवतावाद अथवा जन वाद मे उसी प्रकार कोई विरोध नही है जिस प्रकार प्रेमचद या निराला की कृतिया म। सामाजिक यथाय के सजग दृष्टा होने के नाते उन्होने अपनी मानवतावादी-जनवादी आस्थाओ के सन्दभ मे उसका चित्रण किया है। उनकी प्रतिबद्धता यथाथवाद के प्रति भी रही है और मनुष्यता के प्रति भी। उनका मानवतावाद तटस्थता का पोषक न होकर क्रातिकारी मानवतावाद है। अपनी समूची उपन्यास सृष्टि में वस्तु स्थिति का एक मानवतावादी तथा जनवादी कलाकार होने के नाते सही निरूपण करते हुए अन्तत पीडित मनुष्यता के प्रति उन्होने अपनी सहानुभूति व्यक्त की है। यही नही, उनके पक्ष का तथा उनके अधिकारो का समथन भी किया है और उनके लिये आवाज भी उठाई है। आज की सामाजिक व्यवस्था मे घुटते और पिसते हुए जन जीवन का यथाथ स्वरूप उन्होने अपने इस उपन्यास मे उदघाटित किया है। विकृत सामाजिक व्यवस्था की रूढियों और नियमों के जाल म छटपटाता हुआ निम्न मध्यवर्गीय पुरुष तथा नारी जीवन का लेखक ने अत्यधिक सवेदनशील भूमिका पर ही चित्रण किया है। पूजीवादी व्यवस्था म पिसता हुआ मध्यवर्गीय जीवन अपनी सारी कराहों के साथ उपस्थित हुआ है। रद्दू सिंह, बाबू सत्यनारायण, लच्छू हरों, सहदेई और उसकी बहन तारा, चोइथराम और उसकी लडकियाँ सती और गोपी तथा इसी प्रकार के अन्य मध्यवर्गीय

पात्र पूजीवादी व्यवस्था के ही शिकार हैं। अरविंद शकर रमेश रानी की भी स्थितिया इसम भिन्न नही हैं। लेखक ने दलित और पीडित वग को केवल अपनी कोरी सहानुभूति ही नही प्रदान की है वरन उसकी पीडा के जिम्मेदार व्यक्तियो वर्गों, सस्थाओ तथा व्यवस्था क प्रति भी अपना आक्रोश प्रकट किया है। मि० सेन और मिसेज माथुर के कुचको म फसा लच्छू पूजीवादी व्यवस्था म घुन्ते रददूसिह, सत्यनारायण सामाजिक विषमता और आर्थिक पराधीनता की चक्की पर पिसती सहदेई राजनीतिक नेता की कामवासना की शिकार गोरी आदि वस्तुि पूजीवादी व्यवस्थाओ का ही पर्दाफाश करते हैं। सर शोभाराम, लाला रूपचन्द, वजूलाला, रेवतीरमण, खोखामिया आदि पूजीपति वर्गो के प्रतिनिधियो क प्रति लेखक ने अपनी कटुता ही प्रकट की है। यही नागर जी के मानवतावाद–जनवाद का वशिष्ट्य है।

अरविन्द शकर तथा उसके चरित्र के माध्यम से नागर जी ने अपने क्रातिकारी जनवाद का ही परिचय दिया है। जितनी निममता तथा निर्दयता से इस उपन्यास म उन्होने समाज के ढोगी तथा सफेद–पोश वर्गो की पोलें खोली हैं उनक घणित करनामो को स्पष्ट किया है उनक द्वारा निर्मित सस्थाओ तथा उनक झूठे और बनावटी आदर्शों का भण्डाफोड किया है तथा उपन्यास के प्रमुख-अप्रमुख पात्रो द्वारा व्यवस्था जन्य विकृतियो तथा विषमताओ को स्पष्ट किया है, उसे नागर जी की इसी क्रातिकारी–जनवाद का अग माना जायेगा। अरविंद शकर क रूप म मानो स्वत नागर जी ने ही आधुनिक समाज व्यवस्था मे पनपने वाले भ्रष्टाचार छल प्रपच तथा गदगी क विरोध म आवाज उठाई है। यहा भी अरविंद शकर की आस्था अन्याय तथा अत्याचार का डटकर विरोध करने म सकल्पबद्ध दिखाई पडती है। नागर जी की यह चेतना उन्हे एक सच्चे क्रातिकारी जनवादी लेखक का गौरव देती है तथा प्रमचन्द और निराला की परम्परा के एक समय दावेदार के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

सामाजिक हास्य और व्यग्य –

सामाजिक हास्य एव व्यग्य यथार्थवाद का ही एक महत्वपूर्ण अग है। हास्य और व्यग्य को विद्वानों ने यथार्थ–चित्रण के एक बड शक्तिशाली माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु हास्य और व्यग्य का सफल प्रयोग प्रत्येक रचनाकार के बूते की बात नही है। सजग सामाजिक चेतना वाले सक्षम रचनाकार ही हास्य और व्यग्य को सार्थक भूमिका तक पहुँचा सकते हैं। क्रम

जोर हाथो में पडकर यथाय चित्रण का यह सशक्त माध्यम अपना बहुत सा प्रभाव खो देता है। उनका हास्य या तो फूहडपन मे बदल जाता है या सस्ते मनोरजन की सृष्टि करने लगता है। इसी प्रकार व्यग्य भी या तो गाली गलौज मात्र बनकर रह जाता है या लक्ष्य पर चोट करने के बजाय स्वत प्रयोक्ता की दुबलता बनकर उभरता है। ऊपर से देखने पर हास्य और व्यग्य के माध्यम जितने सरल प्रतीत होते हैं, वस्तुत वे ऐसे हैं नही। इन माध्यमो की यह गभीर भूमिका ही है जिसके कारण हिन्दी कथा साहित्य मे बहुत कम रचनाकार ऐसे हैं जिन्होने या तो इनके प्रयाग म रुचि दिखाई हो या इनका सफलतापूवक प्रयोग किया हो। जहा तक नागर जी का प्रश्न है वे आधुनिक कथा लेखका म सटीक हास्य और व्यग्य के एक मात्र सफल प्रयोक्ता हैं। 'सेठ बाकेमल' मे हम उनके हास्य और व्यग्य की चरम भूमिकाएँ देख सकते हैं।

या तो नागर जी के हास्य और व्यग्य की परिधि मे समूचा आधुनिक जीवन आया है, पर तु मिटती हुई सामताय व्यवस्था विशेषत उनके हास्य और व्यग्य का आलम्बन बनी है। ह्रासशील सामतीय व्यवस्था के सदभ म उनके हास्य और व्यग्य की शक्ति को सहजता से लक्ष्य किया जा सकता है। सामतीय व्यवस्था के प्रतिनिधि पात्रों अथवा इस व्यवस्था ज य नाना विकृतियो को स्वच्छा से ढोने वाले चरित्रो को ही उन्होने हास्य और व्यग्य की भूमि पर प्रस्तुत किया है। लाल साहब, रद्दूसिंह आदि इन्ही सदर्भों में सामने आए हैं। सामतीय व्यवस्था मे जीनवाले सामान्य से सामान्य पात्रो की हास्य और व्यग्य से पूण आकृतिया भी बडी सजीवता से स्पष्ट हुई हैं। पुत्तीगुरू, रद्दूसिंह सत्यनारायण आदि ऐसे ही पात्र हैं। 'अमत और विष' का केन्द्रीय चित्रण मध्यवर्गीय जीवन है जिसका सम्बन्ध मध्यवग के उच्च और निम्न दोनो ही स्तरो से है। लेखक ने मध्यवग की सस्कारगत दुबलताओ का चित्रण व्यग्य की धार म ही किया है। गली-मुहल्ला क जीवन के अधिकांश हास्य और व्यग्य पूण प्रसग मूल्यवान निधि के रूप मे इस उपन्यास मे सुरक्षित हैं। नागर जी के य हास्य और व्यग्य फूहड तथा निरथक तत्वो की सष्टि नही करते हैं, उनका प्रयाग सोद्देश्य भूमिकाओ पर ही हुआ है। वस्तुत सोद्देश्यता ही नागर जी के हास्य और व्यग्य का मूलाधार है। अपने उपन्यास म नागर जी ने हास्य और व्यग्य की उस परम्परा को पुष्ट किया है जो भारतेन्दु और उनके युग से लेकर प्रेमचन्द और निराला से उत्कप प्राप्त करती हुई अद्यावधि प्रवाहित है। हास्य पूण प्रसगो के लिए नागर जी ने विशेष अवसर नही खोजे हैं। दिन दिन जीवन के क्रम में ही उनका चित्रण हुआ है। भगडपाधा पुत्तीगुरु रद्दू

सिंह, सत्यनारायण, मकनराज मथुर जन सामान्य पात्र और उनकी जीवन चर्याएं इन प्रसंगों को उभारती हैं। इस हास्य और व्यंग्य ने नागर जी के उपन्यास को सुपाठ्य बनाया है। उसके आकर्षण का एक प्रधान कारण इसी हास्य और व्यंग्य की यह सजीव भूमिका भी है।

वस्तु की आदर्शोन्मुखता –

उपन्यास के वस्तु पक्ष की एक प्रधान प्रवृत्ति यथार्थ के जीवित सन्दर्भों के बावजूद उसकी आदर्शोन्मुखता है। नागर जी को हमने प्रेमचन्द की परम्परा का सच्चा उत्तराधिकारी इसी आधार पर माना है कि यथार्थ चित्रण के साथ इस साथ आदर्शोन्मुखता में भी वे प्रेमचन्द के सहयात्री हैं। परन्तु नागर जी की आदर्शोन्मुखता का सम्बन्ध प्रेमचन्द के सेवासदन और प्रेमाश्रम' जैसे उपन्यासों की आदर्शवादिता से नहीं है वरन् इसका सम्बन्ध प्रेमचन्द की उस विचारजन्य आदर्शवादिता से है जो उनके समूचे कृतित्व में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यंजित है। मनुष्य के घृणित रूपों को देखने और चित्रित करने के बावजूद भी मनुष्य के भीतर निहित देवत्व पर प्रेमचन्द की आस्था कभी कम न हुई थी। जीवन के कटुतम अनुभवों को भोगने के बाद भी जीवन के उज्ज्वल पक्षों से उनका विश्वास कभी भी उठ न सका था। मनुष्य और मनुष्य के मंगलमय भविष्य की कामना वे अंत तक करते रहे। उनकी कल्पना के समाज की रचना उनके जीवन में भले ही संभव न हुई हो, परन्तु उसकी एक रूपरेखा अवश्य ही उनके मन में थी जिसे उनके साहित्य में सरलता से देखा जा सकता है। यह उनकी आदर्शवादिता ही थी जिसमें उन्होंने अपने आदर्शों के प्रतिनिधि अनेक महत्वपूर्ण पात्रों को अपनी कृतियों में जो समस्याओं के काल्पनिक समाधान नहीं हैं, ऐसा बना दिया कि उनमें भी प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख दृष्टिकोण की स्थिति देखी जा सकती है। उन्होंने अपने द्वारा चित्रित यथार्थ को 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' की संज्ञा दी थी। नागर जी इन्हीं भूमियों पर प्रेमचन्द के साथ अपना वैचारिक सामंजस्य सूचित करते हैं।

जिस प्रकार आधुनिक युग के बुद्धिवादी चिन्तन को आत्मसात करके भी प्रेमचन्द का मन भारतीयता के आदर्शवादी संस्कारों से युक्त था वही बात हमें नागर जी में दिखाई पड़ती है। भारतीय संस्कृति की आदर्शपरक मान्यताओं पर नागर जी की पूर्ण आस्था है। वस्तुतः उन्होंने ज्ञान और विज्ञान के नये सन्दर्भों से इस भारतीय आदर्शवाद का सामंजस्य प्रस्तुत करना चाहा है।

इसके लिये या तो वे स्वत ही अपने उपन्यासो मे उतरे हैं या उन्होंने अपने आदर्श के प्रतीक कतिपय ऐसे पात्रो की सृष्टि की है जो उनके विचारो के वाहक बनकर उपन्यास मे आए हैं। अरविंद शकर ऐसा ही पात्र है जो नागर जी के विचारों को ही व्यक्त करता है। अरविंद शकर कठिन परिस्थितियो मे भी जीवन के प्रति अपनी आस्था नही खोते, जो यथार्थ की कटुताओ को पूरी तरह स्वीकार करते और भोगते हुये भी जीवन के उज्ज्वल आदर्शों की ओर ही बढते हैं। युग जीवन की समूची विषमता को देखने के पश्चात भी मनुष्य के मगलमय भविष्य पर जिनका विश्वास कम नही होता। अरविंद शकर अधकार मे प्रकाश की विजय की घोषणा करने वाले ऐसे पात्र हैं जिनके लिए जीवन का विष अमृतमय बन जाता है। उनके ये विचार इसी सत्य को स्पष्ट करते हैं—'मनुष्य अतरिक्ष म उडने लगा है फिर भी ये अफसर, नेता, मुनाफाखोर, सकीर्ण स्वार्थी और मत धार्मिकता के ठेकेदार ये तमाम जड बधन मौजूद हैं। वे मोह और लोभ-लिप्सायें अब भी विद्यमान हैं इन अज्ञान के प्रतीको से जूझ बिना ही रह जाऊँ विश्राम करूँ या मर जाऊ ?
जड चेतनमय, विष अमृतमय, अधकार प्रकाशमय जीवन मे न्याय करने के लिए कम करना ही गति है। मुझे जाना ही होगा, कर्म करना ही होगा। यह बधन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अधकार ही मे प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है।" अरविंद शकर ये वाक्य सम्पूर्ण उपन्यास की मूल आदर्शवादिता को स्पष्ट कर देते हैं। आस्था और अनास्था के द्वद्व मे आस्था की विजय ही 'अमृत और विष' का आदर्शवाद है।

अरविंद शकर के माध्यम से नागर जी के चिंतन की यह भूमिका थोथे आदर्शवाद की सूचक नही है। यह वह आदर्श है जिसे उपन्यास के पात्रो ने यथार्थ भोगते हुये अर्जित किया है। नागर जी का यह उपन्यास अपने वस्तु तथा विचार पक्ष के सदर्भ में इसी आदर्शवाद की सक्रिय योजना करता है। यह नागर जी के उपन्यास का एक शक्तिशाली पक्ष है। नागर जी ने काल्पनिक समाधानो वाले आदर्श से बचते हुए इस महत्वपूर्ण आदर्शवाद को उपलब्ध किया है। यदि उनके इस आदर्शवाद को यथार्थ की कोख से उत्पन्न कहा जाय तो अनुचित न होगा। जीवन की कटुतम परिस्थितियो के बावजूद विचारजन्य यह आस्था तथा आदर्शवाद प्रत्यक्ष दृष्टि से वरेण्य है।

पात्र-सृष्टि का महत्व –

पिछले पृष्ठों मे नागर जी के उपन्यासो की वस्तुगत **विशेषताओं** का

उल्लेख करते हुए उसके अंतर्गत विषयो के वैविध्य तथा उन्हे प्रस्तुत करने वाली वस्तु की व्यापकता का उल्लेख हम कर चुके हैं। जैसा कि कहा जा चुका है 'अमृत और विष' की वस्तु का संबंध मूलतः मध्यवर्गीय जीवन से है। परन्तु मध्यवर्गीय जीवन को उसकी समग्रता मे प्रस्तुत करने के क्रम मे एक प्रकार से लेखक ने सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का सन्दर्भ ग्रहण किया है। इन सब कारणों से उपन्यास का कथा पट पर्याप्त विस्तृत हो गया है। अपने इस उपन्यास में नागर जी ने आधुनिक जीवन की तमाम समस्याओं के साथ कतिपय मूलभूत समस्याएं भी उठाई हैं। वर्तमान राष्ट्रीय जीवन के लगभग सारे महत्वपूर्ण पक्ष हमें इस उपन्यास में प्राप्त होते हैं। उपन्यास की वस्तु इस समस्त भूमियों का स्पर्श करती हुई ही आगे बढ़ी है। स्पष्ट है कि घटनाएँ तथा परिस्थितियाँ वस्तु की इस यात्रा में दूर तक उसकी गति का स्रोत बनी हैं। परन्तु इस कार्य में एक महत्वपूर्ण भूमिका नागर जी के उपन्यास की पात्र सृष्टि की भी है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि वस्तु की इस गतिशीलता अथवा प्रस्तुतीकरण का एक माध्यम नागर जी की पात्र सृष्टि भी बनी है। राष्ट्रीय सामाजिक जीवन की विशिष्ट तथा सामान्य जो भी प्रवृत्तियां उनके उपन्यास मे आई हैं लगभग उन समस्त भूमियो पर नागर जी की पात्र-सृष्टि भी निर्मित हुई है। उपन्यास मे जो भी पुरुष और स्त्री पात्र आये हैं। वे सब मिलकर वर्तमान सामाजिक जीवन का पूरी तरह से प्रतिनिधित्व करते हैं। नागर जी की पात्र-सृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने पात्र कल्पना से गढ़कर प्रस्तुत नही किये हैं। जैसा कि विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का कहना है कि 'नागर जी प्रेमचन्द जी की तरह जिंदगी की गहरी छानबीन करते हैं और बनावटी पात्रों की सृष्टि से बचते हैं। किसी पूर्व धारणा या विचार को वह पात्र-रचना का मूलाधार नही बनाते हैं उनके लिए जीवन प्रमुख है, परिस्थितियाँ प्रधान हैं और उनमें जन्म लेने और विकसित होने वाले पात्र अपनी-अपनी परिधि के अनुकूल अपने विचारों भावों और कल्पनाओं का विकास करते हैं। अमृत और विष उपन्यास में एक स्थल पर नागर जी ने नायक अरविन्द शंकर के माध्यम से भी अपने अपनी पात्र सृष्टि के रहस्य को उद्घाटित किया है। यह रहस्य और कुछ नहीं सामान्य जीवन से ही पात्रों को चुन लेने का रहस्य है' मैं बाहर का दृश्य निरख रहा हूँ। इस दृश्य के साथ मेरे पास ही दूकान के पास साइकिलें लिए दो युवक खड़े बातें कर रहे थे और अपनी परेशानियों पर झल्ला रहे हुए वर्ग ६०। क्यों नवयुवकों को लेकर उपन्यास का थीम गठन करूंगा? इन दोनों में से एक का मुझे पाया का बेटा

बनाऊगा भगड पाधा मरे पडोसी।" (प० ७०) इसीलिए उनके पात्र स्वाभाविक तथा प्रतिनिधि पात्र बन सके हैं। ये दैनदिन जीवन में मिलने वाले पात्र हैं। पुरुष पात्र हो या स्त्री पात्र सबका सत्य यही है।

पुरुष पात्रो मे या तो प्रधानता मध्यवर्गीय जीवन के विविध स्तरो का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रो की ही है परन्तु उनके मध्यवर्गीय सदभ को स्पष्ट करने के लिए उच्च और निम्न वर्गो के पात्र भी यथास्थल आये हैं। उच्च पात्रो के अतगत जमीदार, पूजीपति, बड़े-बड़ व्यवसायी आदि की गणना की जा सकती है। डा० आत्माराम, लाला रूपचन्द, रेवतीरमण, खोखामिया-आदि उच्च वग क प्रतिनिधि पात्र है, जिनकी वर्गीय भूमिका को उनकी वय क्तिक विशषताओं के साथ इस उपन्यास में नागर जी ने प्रस्तुत किया है। इनमें से अधिकाश पात्र अपन वर्गीय चरित्र को लेकर ही उपन्यास म आये हैं। शोषण एकाधिकार, स्वाथ, छल प्रपच, अनैतिकता, असामाजिकता ही जिनका चारित्र्य है। डा० आत्माराम जसे पात्र अपवाद हैं।

जहा तक निम्न मध्यवर्गीय पात्रो का सम्बन्ध है उनकी स्थिति भी उपन्यास म हैं। य पात्र अपनी वर्गीय प्रवृत्तियों अपने वर्गीय चरित्र को लिए हुए व्यवस्था की विषमता को स्पष्ट करत है। इन पात्रो का सम्बन्ध जैसा कि कहा गया है मध्यव ा से है। यह वह वग है जिनमे कुछ पात्र आर्थिक और कामज य कुठाओ क शिकार है कुछ अधविश्वासो, रूढियो-रीतियों म जकड हुए हैं, कुछ जीवन की असगतियो म घिरे हुये हैं कुछ सामाजिक दुव्य वस्थाओं मे पिस रहे हैं—कहने का तात्पय यह है कि यह वग मूलत सामाजिक विकृतियो के बोझ से ही दबा हुआ है। छोटे-मोटे दूकानदार, व्यवसायी, दफ्तर के बाबू, गली-मुहल्लो के लोग—सब इस वग के अग हैं। उपन्यास मे आये इन मध्यवर्गीय पात्रो क चारित्र्य का विश्लेषण डा० शिव कुमार मिश्र ने इन शब्दो म किया है 'किसी क सम्मुख प्रेम और विवाह का प्रश्न है, कोई सस्कार और विवेक की कशमकश से जूझ रहा है, कुछ आर्थिक आभावो से सत्रस्त पारिवारिक अशाति का दुवह बोझ ढोने क लिए विवश है किसी के सम्मुख सयुक्त परिवार-व्यवस्था की अपनी सीमाए हैं, कोई सीमाओं का अतिक्रात करना चाहकर भा सस्कार ज य कमजोरियों के कारण घुट रहा है—तात्पय यह कि अपनी वर्गीय सीमाओ म बधे, असगतियो से पीडित किसी न किसी रूप मे विक्षुब्ध तथा व्यथित हैं। इनमे स अधिकाश अपनी वर्गीय सीमाओ से परिचित भी हैं पर तु उन्ह तोड पाने मे विवश हैं। न तो

सोचते आन्त का मार्ग छोड़ जाता है और न किसी भी प्रशस्त भूमिका में दुर्बल-मानस पहुँचा ही जा सकता है। फलतः जो जहाँ तक आगे बढ़ गया उसी को अपने जीवन की इतिकर्तव्यता मानकर शान्त हो जाता है, जो नहीं बढ़ सका वह अपने को झुठलाता हुआ फिर उसी बने बनाये यंत्र का पुर्जा बनकर अपनी वही जिन्दगी नष्ट कर देता है। बाबू के बल की नियति उसकी अपनी नियति बन जाती है।' रद्दूसिंह बाबू सत्यनारायण, पृथ्वीगुरु ... रमेश आदि पात्र मध्यवर्ग की इन्हीं प्रवृत्तियों का नेतृत्व करते हैं। कुछ पात्र ऐसे हैं जो उखड़ती हुई जिन्दगी से पलायन कर काफी दूर चले जाते हैं। अरविन्द शंकर ऐसे ही पात्रों के प्रतिनिधि हैं।

नारी पात्रों की भी स्थिति ऐसी ही है। कुलीन नारियों से लेकर वेश्याओं तक नारी पात्रों का प्रसार है। पुरुष पात्रों की भाँति ही अधिकांश नारी पात्र भी कुण्ठा, घुटन, पश्चाताप आत्मप्रवंचन की राह में जाकर अपने जीवन को, वहीदन, महाबानू, उमा मायर, गौरी और सती की भाँति विकृतियों में डुबा देते हैं। कुछ पात्र रानाबाला की भाँति जिन्दगी का एक साफ समतल रास्ता खोज लेते हैं। आर्थिक अभावों तथा यौन कुण्ठाओं से ग्रस्त सहनेई जैसे निश्चित-अनिश्चित पात्र भी हमें दिखाई पड़ते हैं। माया कुन्तलता तथा सुमित्रा जैसे आदर्श चरित्र भी उपन्यास के पात्र-सृष्टि की शोभा बढ़ाते हैं।

समग्रतः अपनी पात्र सृष्टि के माध्यम से नागर जी ने प्रथमतः युग जीवन के सही चित्र को पाठक के समक्ष उद्घाटित करना चाहा है दूसरे उसके माध्यम से पुरुष और नारी दोनों के ही चरित्रों की बहुमुखी भूमिका से भी पाठकों को परिचित कराया है। अमृत और विष उपन्यास के वस्तुपक्ष की समृद्धि में उनकी पात्र-सृष्टि एक सक्रिय भूमिका पर सहकारिणी बनी है।

अमृत और विष के वस्तु पक्ष की ये ही कतिपय विशेषताएँ हैं जो इस उपन्यास को प्रेमचन्द की परम्परा का एक पुष्ट तथा विकासात्मक रूप प्रदान करती हैं।

पात्र तथा चरित्र-चित्रण—

'अमृत और विष' उपन्यास की पात्र तथा चरित्र सृष्टि भी इसकी कथावस्तु की ही भाँति अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि उपन्यास के कथानक का सम्बन्ध आधुनिक भारतीय समाज के

एक बहुत बड काल खण्ड से सम्बधित है, फलत पात्रो का सम्बध भी इस काल खण्ड मे पाये जान वाल विविध सामाजिक वर्गों तथा स्थितियो से है। विक्टोरिया युग से लेकर स्वातन्त्योत्तर युग तक के अनेकानेक प्रतिनिधि चरित्र अपनी पूरी सजीवता लिए हुए उपन्यास म आदि से अत तक अपनी बहुरगी छटा का परिचय देते हैं। उपन्यास क अधिकाश पात्रो का सम्बध मध्यवर्गीय जीवन स है। मध्यवग के उच्च और निम्न दोनो स्तरो का प्रतिनिधित्व इन पात्रो द्वारा सम्पन्न हुआ है य पात्र समाज की आर्थिक सामाजिक, राज नीतिक, सास्कृतिक तथा धार्मिक आदि–सभी भूमियो स गहराई स जुडे हुए हैं। इनमें छोटे बडे व्यवसायी भी हैं, सत्ता प्राप्त और सत्ता से वचित राज-नीतिक नेता भी। साहित्यकार, सपादक पत्रकार, बिगड रईस, पडित पुरोहित, कीतनिये भक्त, दफ्तरो क बाबू विद्यार्थी युवक वग, खोमचे फेरी वाले, शिक्षित-अशिक्षित नारिया तथा समाज के विविध स्तरो का स्वरूप स्पष्ट करन वाल प्राय सभी वग क पात्र उपन्यास म अपनी पूरी सजीवता तथा पूणता लिए हुए समकालीन भारतीय जीवन को स्पष्ट तथा गतिवान बना जाते है। इन पात्रो के माध्यम स लेखक न आधुनिक समाज की समूची उथल-पुथल का यथाथ रेखाओ मे चित्रित करने का सफल प्रयत्न किया है। समाज के एक लम्बे क्रम के दौरान बनने और बिगडने वाल मानवीय सबधो और मूल्यो को इस चरित्र-सृष्टि के माध्यम मे ही लेखक ने प्रत्यक्ष किया है। इस चरित्र-सृष्टि मे प्रगतिशील आस्थाओ वाले व्यक्ति हैं और जजर रूढियो के पोषक भी, सामाजिक विकास का सहज गति से आगे बढ़ाने वाल पात्र हैं तो कदम-कदम पर सामाजिक विकास म बाधा तथा गतिरोध उत्पन्न करन वाल पात्र भी हैं। इन विभिन्न मनोवृत्तियो वाले पात्रो की एकत्र उपस्थित ने ही उपन्यास की कथावस्तु म एक सघष की सृष्टि की है और उपन्यास को उस काल-खण्ड का सही चित्र बनाया है जिसकी उसम कथा है। उपन्यास की पात्र एव चरित्र सृष्टि के सम्बन्ध म डा० धमवीर भारती का यह कथन पात्रो की विविधता का स्पष्ट कर देता है—"एक विशिष्ट भारतीय बुद्धिजीवी वग जो भारतीय पुनर्जागरण का अग्रदूत रहा उनकी अग्रेजियत, उनकी राष्ट्रीयता, उनकी आन बान और उनकी सासारिक सफलता, उसका सुधार वाद और उसकी विलासिता उसकी समस्त चारित्रिक जटिलता डा० आत्माराम के पिता सर नाभाराम के इतिहास में चित्रित हुई है। जहाँ उपन्यास वतमान म आता है वहाँ तो पात्रो के वविध्य का कहना ही क्या? ठकुराई की झूठी ठसक मे घुटते हुए रद्दूसिह, भगड पाधा पुत्तीगुरु, कीतन

में दादर की मारी कुण्ठा भूषण वाले लाला-बाबू बन्ना लोग, राजा कमलाकर की बारादरी को हड़पने के आकांक्षी भारतीय कम्युनिस्ट चोर बाजारिया लाला रूपचन्द, उसकी जेब में रहने वाले मिनिस्टर, 'इण्डिपेण्डेण्ट' के सम्पादक सक्सेना साहब, उनकी समाज-सेविका पत्नी और फिर जवान लड़के लड़कियाँ, रमेश, रानी, लच्छू, छट्टू, हरी, जयकिशोर और लाला मियाँ, भवानी शंकर और उमेश इन तमाम पात्रों के अलावा और कितने ही गौण पात्र हैं, जो समकालीन भारतीय जीवन के इस विराट कथा फलक को सजीव गतिपूर्ण बना जाते हैं और उनमें से हर एक पात्र अपने में पूर्ण, स्पष्ट और प्रखर है।'

अरविंद शकर–

प्रस्तुत उपन्यास के सर्वाधिक प्रमुख व केन्द्रीय पात्र अरविन्द शंकर हैं। उपन्यास का प्रारम्भ उन्हीं के पारिवारिक जीवन के मध्य से होता है और उपन्यास का अन्त उन्हीं के चिन्तन और मनन से।

उपन्यास में अरविन्द शंकर का चरित्र दो रूपों में चित्रित हुआ है। एक का सम्बन्ध उनके पारिवारिक जीवन से है, जहाँ वे अपने परिवार के मुखिया के रूप में सामने आते हैं और दूसरे का सम्बन्ध उनके साहित्यिक जीवन से है जहाँ वे एक ख्याति प्राप्त साहित्यकार के रूप में सामने आते हैं। जहाँ तक उनके पारिवारिक जीवन का सम्बन्ध है वे एक अत्यन्त दुखी और असन्तुष्ट पारिवारिक मुखिया हैं। परन्तु साहित्यिक जगत में उनका पर्याप्त मान-सम्मान है। वे एक मध्यवर्गीय लेखक हैं और विचारों में पूर्णतः प्रगतिशील तथा आस्थावान। साहित्यकार के रूप में वे एक विद्रोही प्रकृति के स्वतन्त्र लेखक हैं। जीवन के कटु अनुभव प्रायः व्यक्ति को विद्रोही और क्रान्तिकारी बना देते हैं। व्यक्ति न्याय मानवता तथा प्रेम की राह में इसी आशा से आगे बढ़ता है कि उसे अनुकूल फल की प्राप्ति होगी किन्तु ईमानदार और सच्चा रहकर भी समाज से उसे ठोकरें मिलती हैं और उसकी आशाओं पर पानी फिर जाता है तो उस समाज के प्रति उसके मन में घृणा और तिरस्कार का भाव उत्पन्न हो जाता है। अरविन्द शंकर का यह विद्रोहात्मक व्यक्तित्व इन्हीं कटु अनुभवों की देन है। जिंदगी भर वे प्रेम, मानवता, सत्य, न्याय और ईमानदारी को ही भला समझते और समझाते रहे किन्तु न तो संसार में कोई परिवर्तन ही हुआ और न ही उन्हें आंतरिक सुख और संतोष

की ही प्राप्ति हुई, बल्कि उनका मानसिक उद्वेलन और अधिक जटिल हो गया। राष्ट्रीय आंदोलनों में उन्होंने सक्रिय भाग लिया, जेल गये, कठिन से कठिन यातनायें सही परन्तु बदले में इसका उन्हें कोई मूल्य नहीं मिला। परन्तु राजनीतिक मंच पर जब उन्होंने 'खुशामदी कौवों और गधों की भरती देखी, उन्हें बड़े बड़े ओहदों पर देखा तो उन्हें झूठी राजनीति और भ्रष्टाचारी नेताओं तथा उनके थोथे आदर्शवाद से वितृष्णा हो गई। राजनीति के इसी कटु अनुभव ने उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व को स्वतन्त्र साहित्यकार बना दिया। परन्तु आज की पूंजीवादी व्यवस्था में एक स्वतन्त्र लेखक के अपने कौन से आन्तरिक और वाह्य संघर्ष हो सकते हैं? उस व्यवस्था में उसकी अपनी स्थिति क्या है? उसका स्वतन्त्र अस्तित्व कहाँ तक सम्भव है?—इन सब बातों का परिचय हम अरविन्द शंकर के चरित्र के माध्यम से प्राप्त होता है। वे एक प्रसिद्ध लेखक अवश्य हैं परन्तु उनकी साहित्य साधना जितनी विस्तृत तथा समृद्ध है उसकी तुलना में उसका मूल्य उन्हें बहुत कम प्राप्त है। पूंजीवादी समाज व्यवस्था में एक स्वतन्त्र लेखक के रूप में आत्म सम्मान तथा संतोषपूर्वक जी सकना कितना कठिन है, व्यवस्था की विकृतियाँ इस भूमिका पर व्यक्ति के मानसिक और पारिवारिक जीवन को कितना अशांत बना सकती हैं—अरविन्द शंकर का अपना जीवन इसका उदाहरण है। उनकी जीवन भर की साहित्य-साधना न तो पारिवारिक भूमिका पर उन्हें सुख तथा संतोष प्रदान कर सकी है और न ही मानसिक भूमिका पर। वे जितना पारिवारिक स्तर पर आर्थिक अभाव, संतानों के चाल चलन, व्यवहार और स्वभाव तथा उनसे संबद्ध नाते रिश्तों को लेकर परेशान हैं उतना ही मन से भी अशांत और पीड़ित हैं। ये ही स्थितियाँ एक हद तक उन्हें 'उत्तेजित, खीझभरा और थकाहारा बना देती हैं। यों साहित्यिक जगत में उनका पर्याप्त मान सम्मान है। यहाँ तक कि उनकी षष्ठिपूर्ति के अवसर पर एक वृहत आयोजन तक किया जाता है जिसमें मन्त्रियों से लेकर नगर के छोटे-बड़े सभी लोग शामिल होते हैं। परन्तु अरविन्द शंकर न केवल अपनी असलियत से परिचित हैं वरन इस आयोजन की वास्तविकता को भी व भली भांति जानते हैं। अपनी यथार्थ स्थिति के संदर्भ में उन्हें यह आयोजन महज एक ढोंग प्रतीत होता है और उनकी अपनी वास्तविक स्थिति उन्हें रोमांचित कर देता है—' मैं डर रहा था कि अभी हाल के किसी कोने से मेरे मझले पुत्र भवानी के ससुर चिल्ला कर कहने ही वाले होंगे—' यह व्यक्ति पूजा के योग्य नहीं। इसके लम्पट बेटे ने मेरी सुन्दर और सुशील और साध्वी बेटी को पहले तो अपने प्रेम पाश में फंसाया

मुझ अन्तर्जातीय विवाह के लिए सजातीय कलह सहना पड़ा और अब उस तथा अपनी दो संतानों को निराधार छोड़कर उसने एक कुलटा प्राध्यापिका को अपना तन, मन अर्पित कर रखा है और य महान लेखक उदार और न्याय वान कहलाने वाला नीच अरविंद मेरे बार बार पत्र लिखने पर भी अपनी पुत्र वधू और पोतों को अपने पास बुलाकर नहीं रखता।' (पृ० ३९)

' मुझ लग रहा है कि हाल के दूसरे कोने स अभी एक पुस्तक प्रकाशक कड़े स्वर म ललकारेगा-यह नीच दस साल स मरे दो हजार रुपये डकार बैठा है न अभी तक उपन्यास लिख कर दिया और न मरे पत्रों का जवाब ही देता है।'

' मुझे लग रहा था स्वयं मेरा ही अन्तर सत्य अभी-अभी इस हाल म गूंज उठेगा—तू मानवता और ईमानदारी के झण्डे उठाता है। तूने अपनी पत्नी और लड़कों के दबाव म आकर केवल अपनी ही लड़की का सुख सामने रखकर, कल उस दफ्तर के लिए आये प्रस्ताव पर और उसके पिता को यह नहीं बताया कि इस लड़की को पहले क्षय रोग हो चुका है। तू कायर है, तू स्वार्थी है और श्रीहीन है। तुझे अपनी षष्ठिपूर्ति पर समाज स यह सम्मान पाने का अधिकार नहीं।" (पृ० ४०)

अरविन्द शंकर की ये कुंठाएं ही उनके वास्तविक जीवन का परिचय करती हैं। उनकी अपनी मानसिक स्थिति का जो चित्र स्वतः उनके द्वारा किये गये अपने इस विश्लेषण स प्राप्त होता है वह स्वतः एक व्यक्ति और लेखक के रूप म उनके जीवन की कटुता का साक्षी है। वे इस प्रकार की तमाम कुण्ठाओं, समस्याओं तथा उलझनों स ग्रस्त हैं। आर्थिक सामाजिक तथा साहित्यिक भूमिकाओं से उत्पन्न तरह-तरह की कुण्ठाओं ने उनके जीवन को इतना अधिक जकड़ लिया है कि वे अपने जीवन स निराश हो उठते हैं। यहां तक कि वे आत्म हत्या जैसा घृणित विचार अपने मन म ले आते हैं— 'क्या मेरा आंतरिक जीवन इतना कुण्ठित नहीं? क्यों न पिता की लीक पर चल कर मैं भी संखिया या अन्य कोई विष खा लूं? यह झूठा आशावाद यह नवजीवन की प्रतीक्षा अब कब तक करूं? सारा जीवन यों ही मन बहलाने-बुझाते बीत गया। (पृ० ६७) परिस्थितियों स हार कर उनके सम्मुख अरविंद शंकर का यह आत्म-समर्पण उन्हें पलायनवादी अवश्य बनाता है, परन्तु जीवन की कटुताओं और परिस्थितियों के लगातार कठोर प्रहार

तथा बौद्धिक एवं मानसिक अत्याचार से छुटकारा पाने के लिए एक स्वाभिमानी तथा संवेदनशील व्यक्ति के मन में आत्महत्या का विचार आना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु आस्थावादी होने के कारण यह विचार उन पर हावी नहीं होने पाता। अरविंद शंकर के चरित्र का यह आस्थावाद ही उनका आदर्श है। उनका यह आस्थावादी रूप ही उनके चरित्र का अत्यन्त आवश्यक तथा प्रभावशाली अंग है। निराशा, विक्षोभ तथा अनास्था की भूमियों में गुजरने के बावजूद भी लेखक ने अरविंद शंकर को एक मूलभूत आस्था और दृढ़ता से युक्त व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। अरविंद शंकर यदि जीवन की विषम परिस्थितियों के सम्मुख रह रह कर टूट जाते हैं तो उनमें परिस्थितियों से उबरने, उनका साहसपूर्वक सामना करने की भी क्षमता है। यहां वे विपरीत परिस्थितियों में भी एक सच्चे और ईमानदार प्रगतिशील साहित्यकार की आस्था का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। वे उपन्यास में आदि से अन्त तक एक संघर्षात्मक भूमिका में आये हैं। जीवन के संघर्ष को वे मानसिक स्तर पर ही नहीं वरन जीवन की बाह्य भूमिकाओं पर भी झेलते हैं। उनके चरित्र में आदर्श और यथार्थ का समन्वय है। दृष्टिकोण के स्तर पर उनमें एक जीवित आदर्शवाद है तो परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए वे उतने ही दृढ़ यथार्थवादी हैं। परिस्थितियों का यथार्थ ज्ञान ही उनके आदर्शवाद को पुष्ट करता है और वही उनकी आस्था को बल प्रदान करता है। उनकी यह आस्था ही उन्हें अपने चारों ओर छाये अंधकार से मुक्ति दिलाती है और इसी के बल पर वे जीवन के समूचे विष को पीते हुए उसे अमृत के रूप में ग्रहण कर पाने की शक्ति पाते हैं।

अरविंद शंकर के चरित्र के ऐसे बहुत से पक्ष हैं जो उन्हें आदर्श तथा उच्च भूमिकायें प्रदान करते हैं। वे एक बड़े साहित्यकार तो हैं ही, विचारक और चिंतक भी हैं। वर्तमान जीवन के प्रत्येक पहलू पर उनका गहन चिंतन इस बात का प्रमाण है। वे मानवता देश प्रेम, विश्व-बन्धुत्व साम्प्रदायिक एकता तथा शान्ति के समर्थक हैं तथा आज की सामाजिक व्यवस्था के वे कटु आलोचक हैं। आधुनिक युग की प्रायः सभी विषमताओं तथा समस्याओं की ओर उन्होंने संकेत किया है और अपनी प्रगतिशील दृष्टि का परिचय दिया है। पूंजीपतिवर्ग उनकी घृणा का पात्र बना है तथा शोषित वर्ग के प्रति उनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण रहा है। राजनीतिक नेताओं, खासकर उन सफेदपोश नेताओं के प्रति उनके मन में गहरी वितृष्णा है, जिनकी नेतागीरी

जनता के जीवन से खिलवाड़ करती है। इस सम्बन्ध में उनका कहना है 'आजादी के बाद सैकड़ों निःस्वार्थ देश सेवक भावात्मक रूप से एक दम बेकार हो गये। जो एलॉटमेंट लाइसेंस और परमिट दिलाने में पटु हुए वे महत्वपूर्ण नेता बन गये। बुद्धि उस गलियारे में जा कर भटक गई जहाँ पैसा भगवान और सत्ता जगदम्बा है। इसी प्रकार वे सामाजिक क्षेत्र में परम्परागत रूढ़ियों रीतियों तथा अंधविश्वासों के कट्टर विरोधी हैं। उनका साहित्यिक धर्म के प्रति वे पूर्णतः आस्थावान हैं। अपनी साहित्य-साधना के प्रति उनके मन में एक गहरी निष्ठा तथा आत्मविश्वास है। उनका यह आत्म विश्वास तथा निष्ठा तमाम कटुताओं तथा गतिरोधों के बावजूद भी डिग नहीं सकी है। अरविंद शंकर मातृभाषा हिन्दी के अनन्य प्रेमी हैं। हिन्दी उनके लिए 'गुण गंभीरा आनन्दमयी माँ है, जिसने उन्हें सामाजिक क्रांति, देश भक्ति, आत्मोन्नति की इच्छा और नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यमान घुट्टी में दिए थे। अरविंद शंकर के चरित्र की यह विशेषताएं अपना स्थायी महत्व रखती हैं।

लेखक ने अरविंद शंकर के मानसिक द्वंद्व के बड़े ही सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनके चरित्र के वे स्थल बड़े मार्मिक हो उठे हैं जहाँ उनकी प्रगतिशील चेतना उनकी कमजोरियों के लिए स्वतः उन्हीं को फटकारती है और जीवन से पलायन करते-करते वे पुनः जीवन की आस्थावादी भूमि पर दृढ़ता से पैर रोप देते हैं। उनका यह आत्म-संघर्ष उपन्यास का भी, और अरविंद शंकर के चरित्र का भी बड़ा ही सजीव और प्रभावशाली अंग है। अरविंद शंकर के सारे व्यक्तित्व और चिंतन के मूल में लेखक अमृतलाल नागर भी अनेक स्थलों पर विद्यमान हैं। अरविंद शंकर की आस्था लेखक के रूप में अमृतलाल नागर की आस्था है और अरविंद शंकर के संघर्षों के भोक्ता भी एक हद तक लेखक अमृतलाल नागर ही हैं। यही कारण है अरविंद शंकर का चरित्र इतने सजीव रूप में नागर जी प्रस्तुत कर सके हैं। हेमिंग्वे के बूढ़े मछेरे तथा बचपन के साथी बछड़े का जो प्रतीक बूढ़े अरविंद शंकर को उपन्यास के अंत में एक नवयुवक के रूप में प्रस्तुत करता है लेखक के रूप में अमृतलाल नागर की जीवन्तता उससे भिन्न नहीं है। अरविंद शंकर का अपने से इतर राजनीतिक-सामाजिक चिन्तन भी लेखक के अपने चिंतन का प्रतिरूप है। उसमें जो पैनापन है उसे भी लेखक की ही दृष्टि का पैनापन समझना चाहिए।

समग्रतः अरविंद शंकर का चरित्र आज की विकृत समाज-व्यवस्था के बीच एक स्वतन्त्र लेखक की संघर्षशील जिन्दगी को प्रस्तुत करता है जो परि

स्थितियों की समूची विषमताओं के बावजूद अपनी आस्था का उदघोष भी करता है। अरविंद शंकर का यह आदर्शवाद कोरा आदर्शवाद नहीं है। क्योंकि अरविंद शंकर जैसे अनेक साहित्यकार आज भी इस आस्था को न केवल एक यथार्थ के रूप में प्रमाणित कर रहे हैं, उनके लिए यह आस्था जीवन की समूची यथार्थ परिस्थितियों से भी बड़ा यथार्थ है। जितने ही सत्य तथा स्वाभाविक अरविंद शंकर की कुठायें, कमजोरियां, निराशा तथा विक्षोभ के क्षण हैं, यह आस्था उनमें कम सत्य और कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

डा० आत्माराम–

डा० आत्माराम का चरित्र राजनीतिक वातावरण से बहुत अधिक प्रभावित है। वे एक नामी राजनीतिक नेता और मन्त्री हैं। परन्तु डा० साहब आज के उन नेताओं से भिन्न हैं जो गन्दी राजनीति में भाग लेकर जनता का शोषण करते हैं। वे व्यक्ति और समाज के हित को लेकर चलते हैं। उनकी योजनायें तथा सिद्धान्त न केवल व्यक्ति और समाज तक ही सीमित हैं, वरन उनके मूल में समूचे देश का हित परिलक्षित होता है। वैचारिक भूमि पर वे समाजवादी हैं। समाजवाद के सिद्धांतों पर उनकी दृढ़ आस्था है। अपने समाजवादी आदर्शों को वे सम्पूर्ण देश में मूर्त होते देखना चाहते हैं। 'सारस लेक' नामक एक छोटी सी 'इस्टेट' में उन्होंने अपनी इस समाजवादी कल्पना को व्यावहारिक रूप देकर साकार किया है।

डा० आत्माराम का चरित्र भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है। वे इण्डिपेण्डेंट' नामक एक पत्र के संस्थापक भी हैं, जो मूलतः समाजवादी विचारधारा का पत्र है। डा० साहब स्वयं अपने विचारोत्तेजक लेखों के माध्यम से समाजवाद की व्यापकता, तथा उसके प्रचार और प्रसार के लिए अपना सक्रिय सहयोग भी देते हैं। देश के बुद्धिजीवियों तथा आधुनिक नई पीढ़ी में वे विशेष प्रभावित हैं। वे उनके विकास के लिए न केवल प्रोत्साहन ही देते हैं, उन्हें सुविधायें भी प्रदान करते हैं। वे इस बात को भली-भांति समझते हैं कि यदि आज के बुद्धिजीवी वर्ग को विकास की नई, अनुकूल और उचित दिशायें मिलीं तथा नई पीढ़ी को स्वस्थ तथा उचित मार्ग-निर्देशन मिला तो समाज तथा देश दोनों की उन्नति अवश्यम्भावी है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों भूमियों पर वे भारत की प्रतिष्ठा के आकांक्षी हैं। उनका चरित्र उस सच्चे और ईमानदार नेता का चरित्र है जो देश तथा उसके

जनता के प्रति वफादार हैं जो जनता पर शासन करने का आकांक्षी नहीं है बल्कि उनका वास्तविक रक्षक और हितैषी है, वे समाज तथा जनता के विकास के मार्ग में रोड़ा नहीं हैं बल्कि उनके विकास की नई राहों तथा दिशाओं के प्रणेता हैं।

व्यावहारिक भूमिका पर डा० साहब का व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सरल व सादा है। स्वभाव से वे अत्यन्त नम्र और उदार हैं तथा व्यवहार कुशल हैं। यही कारण है कि वे छोटी बड़ी सभी सोसाइटी में अपना सामंजस्य बिठा लेते हैं। अपने इसी व्यक्तित्व के कारण वे छोटे बड़े सभी के प्रिय हैं। यदि एक ओर लच्छू डा० साहब के अन्तर्गत उनके प्राइवेट सक्रेटरी के रूप में अपना गौरव समझता है, तो दूसरी ओर 'सारसलक' के कर्मचारी पंडित राजकिशन डा० साहब के गुणों का बखान करते नहीं थकते हैं। छोटे-बड़ों के बीच यह उनकी लोकप्रियता का भी प्रमाण है। डा० साहब अपने मातहतों को अधिक से अधिक सुविधायें प्रदान करते हैं। डा० साहब एक धनी पिता के धनी पुत्र हैं किन्तु पूँजीवादी प्रवृत्तियों से वे परे हैं। पर्याप्त सम्पन्न और समृद्धिशाली होने हुये भी गर्व उनमें नाममात्र का भी नहीं है। रात्रि में बारिश में भीगता हुआ लच्छू जब 'सारसलक' जाने के लिए रामगंज स्टेशन पहुँचता है तो स्टेशन वैगन के खराब होने का समाचार पाकर डा० साहब स्वयं उस भीषण वारिश में अपनी गाड़ी लेकर लच्छू को लेने के लिए स्टेशन आ पहुचते हैं। डा० साहब की यह सहृदयता तथा गर्व से अछूता व्यक्तित्व इस स्थल पर पाठकों के हृदय पर अपना प्रभाव जमा लेता है।

परन्तु इतनी विशेषताओं से युक्त होते हुये भी डा० आत्माराम की कतिपय चारित्रिक दुर्बलतायें भी प्रकट हुई हैं। विशिष्टताओं ने जहां उनके चरित्र को एक आदर्शवादी भूमिका पर ले जाकर दृढ़ और पुष्ट बनाया है दुर्बलताओं ने उतना ही उनके चरित्र की शिथिलता स्पष्ट की है। वे समाजवादी तथा आदर्शवादी अवश्य हैं परन्तु उनका समूचा आदर्श तथा बुद्धिवाद वस्तुतः वास्तविकता से उतना जुड़ा नहीं है जितना कि वह काल्पनिक है। व्यावहारिक रूप में सारसलक समाजवाद का एक लघु प्रयोग अवश्य है परन्तु जैसा कि उपन्यास के अन्तर्गत अरविन्द शंकर ने कहा है कि 'सारसलक की पर्णकुटी एक अभिजात्य बुद्धिजीवी की रियासत बन कर ही रह गई है सत्य ही प्रतीत होता है। आदर्श और व्यवहार का एक असामंजस्य सारसलक' में दृष्टिगोचर होता है। वाह्य रूप से जितना ही वह सुन्दर और आर

पक है, उसका आन्तरिक जीवन उतना ही दूषित और कुत्सित। अपनी योजनाओं और सिद्धान्तों के साथ डा० आत्माराम विचारों के लोक में इतना रम गये हैं कि 'सारसलेक' की उक्त स्थिति से वे पूर्णतः अपरिचित रहते हैं। अरविंद शंकर ने डा० आत्माराम के चरित्र का विश्लेषण इस प्रकार किया है— डा० आत्माराम के सहारे मैं एक ऐसे सत्यनिष्ठ, भले और भोले बुद्धिवादी का चित्रण करना चाहता हूं जो चिराग तले अंधेरे की कहावत को अक्षरशः चरितार्थ करता है। उनकी ईमानदारी एक बड़े लालच से जुड़ कर गलत समझौता करने पर मजबूर हो रही है। शायद वे बेचारे यही सोचते होंगे कि रुपये में इकन्नी-दुअन्नी भर ही सही देश के हृदय-पटल पर उनके द्वारा समाजवाद की अमिट छाप पड़ ही जाय। वे सभी भूमियों में एक आदर्श रूप उपस्थित अवश्य करना चाहते हैं परन्तु जैसा कहा गया वास्तविक परिस्थितियों को न समझ पाने के कारण ही उनके सारे आदर्श विचार अपनी सही परिणति नहीं पाते।

समग्रतः डा० आत्माराम का चरित्र देश की व्यावहारिक भूमिका मे कटे हुए एक आदर्श बुद्धिजीवी का चरित्र है। कहना न होगा डा० आत्माराम के चरित्र की सृष्टि करते समय अरविन्द शंकर अथवा श्री अमृतलाल नागर की कल्पना में प० जवाहर लाल नेहरू का चित्र सामने रहा है।

आनन्द मोहन खन्ना—

आनंद मोहन खन्ना डा० आत्माराम द्वारा संस्थापित 'इंडिपेन्डेन्ट' पत्र के सम्पादक हैं। उनके चरित्र मे जटिलताए नही हैं। वे प्रगतिशील विचारो के एक निर्भीक और निडर व्यक्ति हैं। परम्परागत रूढिवादिता के वे कट्टर विरोधी हैं सामाजिक कुरीतियों के प्रति उनमे गहरी वितृष्णा है। नई पीढी तथा नये विचारो से वे विशेषरूप से प्रभावित ही नही, उसके समर्थक भी हैं। वे शहर के सम्मानित व्यक्तियों में से हैं तथा नवयुवक वर्ग मे विशेष लोकप्रिय हैं। उनकी इस लोकप्रियता के मूल में नई पीढ़ी के प्रति उनका गहरा लगाव तो निहित है ही उनकी अपनी व्यक्तिगत व्यवहार कुशलता भी कम महत्वपूर्ण नही है। स्वभाव के वे अत्यन्त नम्र तथा उदार हैं। नवयुवकों का उत्साह बढ़ाने के लिये, उनमे से हीन भावना का अन्त करने के लिये, सामाजिक प्रगति में उनको सहायक बनाने के लिये, उनमें आत्म बल तथा आत्म-विश्वास जगाने के लिए उनमें विशेष सक्रियता दिखाई पड़ती है। वे नव

रमन के चरित्र का बाह्य पक्ष जितना अधिक क्रियाशील तथा संघर्षशील है, आन्तरिक जीवन उससे कम संघर्षशील नहीं है। जहाँ एक ओर वह अपनी विषम पारिवारिक स्थिति से परेशान है, वहीं दूसरी ओर प्रणय-सम्बन्ध के प्रश्न को लेकर भी। पड़ोस में रहने वाली बालविधवा रानीबाला के सौन्दर्य, उसके गम्भीर तथा नम्र स्वभाव आदि के प्रति वह आकर्षित होता और उससे विवाह का निश्चय करता है। किन्तु रूढ़िग्रस्त परिवार उसके इस मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है तथा रूढ़िवादी वर्ग उसका विरोध करता है। किन्तु रमेश का विद्रोही और स्वाभिमानी व्यक्तित्व न केवल अपने परिवार के विरुद्ध उठ खड़ा होता है वरन सम्पूर्ण रूढ़िवादी वर्ग से टक्कर लेने को तत्पर हो जाता है। यहाँ तक कि उसे अपना घर त्यागने के लिए बाध्य होना पड़ता है किन्तु वह रूढ़िवादी वर्ग के सम्मुख घुटने नहीं टेकता और अन्ततः रानी से वह अपना वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लेता है। रमन के चरित्र की यह भूमिका उच्छृंखल कदापि न कही जायगी। यहाँ वह समाज के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करता है। अपने व्यावहारिक जीवन में रमन जितना विद्रोही है उतना नम्र भी है। पिता तथा परिवार की रूढ़िवादी मान्यताओं से सामंजस्य न बिठा पाने पर भी शक्ति भर वह पिता और परिवार के समक्ष उद्धत नहीं होता। बड़े-बुजुर्गों के सामने वह सौम्य तथा गम्भीर है वह उनका आदर और सम्मान भी करता है। यही कारण है कि जहाँ एक ओर युवक वर्ग उसे अपना लोकप्रिय नेता समझता है वहीं दूसरी ओर बुजुर्ग वर्ग भी उस पर गर्व करता है। अपने मित्रों से उसे अनन्य प्रेम है। यह जानकर कि रुच्छू ने उसके साथ एक बहुत बड़ा षडयन्त्र किया है वह उसे बिल्कुल क्षमा कर देता है। उसके ये कार्य ही उसके चरित्र के स्वस्थ पक्ष को उभारते हैं तथा उसे अत्यन्त प्रभावशाली बनाते हैं। इन भूमिकाओं के बावजूद भी रमेश के चरित्र के वे पक्ष ही अत्यन्त आकर्षक तथा प्रभावशाली हैं जहाँ वह अपनी उन्नति के साथ-साथ सामाजिक उन्नति के लिए भी यत्नशील होता दिखाई पड़ता है।

परन्तु घटनाक्रम के साथ साथ रमेश की कतिपय दुर्बलताएं भी प्रत्यक्ष हुई हैं। प्रारम्भ में वह अपनी सक्रियता का परिचय अवश्य देता है परन्तु अपनी बाद की भूमिकाओं में उसका यह व्यक्तित्व धीरे धीरे मंद होने लगता है। शादी के पश्चात उसके चरित्र की यह शिथिलता हम स्पष्ट दिखाई देती है। यहाँ आकर उसके चरित्र में वह आग वह उमंग और वह उत्साह नहीं रह जाता। लगता है कि जैसे उसका विद्रोह परिस्थितियों से समझौता कर रहा हो।

विवाह होने के पश्चात तुरन्त ही उसका परिचय गहाबानू से होता है और उसके प्रति आकर्षित होकर उसके मन में विकार उत्पन्न होता है। घर के घुटन भरे वातावरण से मुक्त होकर अपने प्रेमी के पास पहुँचने के लिए गहाबानू जब उससे सहायता की याचना करती है, तब वह उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर अपनी दुर्बलताओं का ही परिचय देता है। उसकी सारी सक्रियता तथा विद्रोह एकाएक न जाने कहाँ लुप्त हो जाता है। उसकी निर्भीकता, निडरता और साहस निष्प्राणता का परिचय देते हैं। भयवश वह गैहाबानू की कोई सहायता नहीं करता। एक स्तर पर अपने व्यक्तिगत जीवन में अपने विवाह को लेकर उसके द्वारा प्रदर्शित उसका साहस और दूसरे स्तर पर प्रेम और विवाह की इसी समस्या से ग्रस्त गहाबानू की सहायता न कर पाने की उसकी असमर्थता उसके चरित्र की इसी समझौतावादी वृत्ति का प्रमाण है। उपन्यास के अंत में आते-आते वह व्यक्तिवादी भूमिकाओं का स्पर्श करने लगता है। स्पष्ट ही बाद तक उसके चरित्र में वह गत्वरता नहीं रह जाती, वह विशिष्ट से सामान्य ही प्रतीत होने लगता है।

लच्छू (लक्ष्मी नारायण खन्ना) —

लच्छू का चरित्र एक निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का चरित्र है। वह रमेश का घनिष्टतम मित्र है। वैचारिक भूमिका पर रमेश और लच्छू में कोई विशेष अन्तर नहीं है, किन्तु अपनी कतिपय आंतरिक भूमिकाओं में लच्छू जरूर रमेश से भिन्नता रखता है। वह अधिक कुण्ठाग्रस्त है। उपन्यास के प्रारम्भ में वह रमेश की भाँति ही विद्रोही, उत्साही तथा सक्रिय दिखाई देता है। वस्तुतः घर की विषम आर्थिक परिस्थितियों तथा अन्य अभावग्रस्त भूमिकाओं के कारण उसके मन में घनीभूत होने वाली कुण्ठाओं तथा हीन भावना को ही वह अपनी बाहरी सक्रियता द्वारा भुलाना चाहता है। सामाजिक विषमताओं के प्रति उसके मन में भी गहरी वितृष्णा है, रूढ़िवादी वर्गों के प्रति वह अपनी समूची शक्ति से उद्धत है - उसका प्रारम्भिक चरित्र इन्हीं भूमिकाओं के सन्दर्भ में अपनी पूरी सक्रियता लिए स्पष्ट होता है। परन्तु लच्छू के चरित्र में उतार-चढ़ाव अधिक हैं। उसके चरित्र के कई रूप हमारे सामने प्रत्यक्ष होते हैं। कभी वह क्रान्तिकारी और विद्रोही भूमिकाओं में आता है तो कभी 'सारगल्लेन' पहुँच कर वासनाओं से घिरे हुये व्यक्ति के रूप में कभी समाजवादी लच्छू के रूप में आता है तो कभी 'अवसरवादी' लच्छू के रूप में। उपन्यास के अन्त तक आते-आते उसका चरित्र पतनोन्मुखी हो गया है।

लच्छू के चरित्र म पहले परिवर्तन का सूत्रपात उसके 'सारसलेक' पहुँचने पर होता है। इससे पूव वह सामान्य मध्यवर्गीय व्यक्ति है। अपनी सक्रियता मे वह रमेश म किसी प्रकार कम नही है। वह भी प्रगतिशील विचारों का युवक है। वह कही कही रमन स भी अधिक तीव्र और क्रांतिकारी दिखलाई पडता है। किंतु 'सारसलेक' पहुँचकर उसकी उक्त सारी चारित्रिक विशेषताएँ मद होने लगती हैं। यहा वह एक नई दुनिया पाता है। यहा का वातावरण उसके सपूण मध्यवर्गीय जीवन को बदल देता है। यही से उसके चरित्र के नये अध्याय का प्रारम्भ होता है। सारसलेक के आतरिक दूषित और कुत्सित वातावरण म लच्छू अपने विचारो की नई सष्टि करता है। जीवन मे वह जिन-जिन अभावो से पीडित रहा सारसलेक म वे उसे बिना प्रयास उपलब्ध होते हैं। उमा माथुर के प्रम जाल म फसकर उसे जिंदगी के नये अनुभव प्राप्त होते हैं। पहले तो वह इस नयी भूमिका म हिचकता है परतु बाद में वह उसी मे बुरी तरह डूब जाता है। सारसलेक' से वह रूस भी जाता है, और यहा वह पुन जीवन के एक नए मोड पर खडा दिखाई पडता है। रूस की समाजवादी व्यवस्था स वह अत्यधिक प्रभावित होता है। वहा का जीवन उसके मन मे नई भावनाओ तथा विचारो का बीजारोपण करता है। जब रूस की यात्रा के पश्चात वह पुन 'सारसलेक' आता है तो उस अनेक जटिलताओ का सामना करना पडता है। सारसलेक के आतरिक कुचक्रो के कारण जब उसकी नौकरी छूट जाती है तो उसके मन मे एक नये सघष का जन्म होता है। उसे चिंता होती है कि वह जिस नय जीवन को भोग चुका है अब उसकी उपलब्धि कैसे हो ? अपने अभाव ग्रस्त सामाजिक जीवन से वह अपना सामजस्य नहीं बिठा पाता। अपने उसी सुखमय जीवन की पुन प्राप्ति के लिए किये जाने वाले उसके प्रयत्न उपन्यास के उत्तराद्ध म उसके चरित्र को निरतर गिराते जाते हैं। अब उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य हो जाता है—पैसा और पोजीशन। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसके मन म अनेक अनतिक और असामाजिक प्रवत्तिया जन्म लेकर प्रबल हो उठती है। उसके कदम उस राह पर चलने लगते हैं जहा पहुँचकर व्यक्ति का पतन अवश्यम्भावी है। भांति भांति के कुचक्र छल प्रपच, स्वाथ तथा अन्य प्रकार की कुवृत्तिया उसके चरित्र म बद्धमूल हो जाती हैं। वह मजदूरो का नेता बनता है परन्तु शराब और पस के बल पर। उसकी महत्वाकाक्षा उसे अवसरवादी बना देती है। वह धम-कम पाप पुण्य पूजीवाद, समाजवाद सबको अवसरवाद की भूमिका पर ही ग्रहण करता है। चुनाव उसकी महत्वाकाक्षा तथा अवसरवाद को अपनी चरम सीमा पर ले जाता है।

चुनाव मे वह अपने समस्त अभावो की पूर्ति करता है। यहाँ लच्छू का चरित्र अत्यधिक गिर जाता है वह अपनी निम्न से निम्नतर भूमिकाओ का स्पर्श करता है। एक ओर तो वह मिसेज चौधरी का समर्थन करता है दूसरी ओर रेवतीरमण के हाथो का मोहरा बनने मे भी नही हिचकता। यहा तक कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये वह गोपी नामक एक सिंधी लडकी के प्रति षडयन्त्र कर उसे भी दाव मे लगा देता है। लेखक ने लच्छू की इस पतनो मुखी स्थिति के सदर्भ मे उसके समाजवाद और चरित्र की बडी सही व्याख्या की है 'लच्छू अपने 'समाजवाद' के लिए तन, मन, धन एवं लगन से जुट गया। वह सेठानी से आखे लडा रहा है तो पैसा कमा रहा है, सेठ की अटली मे बारह-बारह घटे खडा है या एक टाग से नाच रहा है तो पैसा कमा रहा है, खोखा मिया के सामने हिंदुओ को गालिया दे रहा है, हाजी बख्श के सामने इसानियत की बातें कर रहा है यूनियन लीडरो और महत्वपूर्ण वामपथियो से अपनी जान पहचान कर रहा है सेठानी का इलेक्शन लड रहा है, जो कर रहा है वह सिर्फ पैसा और पोजीशन कमाने के लिए। पैसा और पोजीशन—और इसकी सिद्धि के लिए होने वाले सघर्ष की थकान के लिए स्त्री और शराब या ताश।' यही नही लच्छू का चरित्र इतना हीन हो जाता है कि वह अपने ही आत्मीय मित्रों के विनाश की योजनाएँ बनाने मे नही हिचकता। रमेश जो कि उसका भाग्य निर्माता है उसके विरुद्ध षडयन्त्र मे भाग लेकर वह अपने चरित्र की दुर्बलताओ को ही प्रकट करता है।

लच्छू के चरित्र के ये उतार चढाव अत मे उसे एक पतन की निम्नतर भूमिकाओ पर लाकर अवश्य खडा कर देते हैं परन्तु यदि एक तटस्थ द्रष्टा की भाति उसके चरित्र का विश्लेषण किया जाय तो लच्छू स्वय अपनी दुर्बलताओ का दोषी नही ठहरता। बल्कि इसके मूल मे आज की वे सामाजिक दुव्यवस्थाएँ और विषमताएँ हैं जो एक शिक्षित-उत्साही तथा परिश्रमी व्यक्ति को गलत रास्ते पर ले जाकर उसे निष्क्रिय तथा निर्जीव बना देती हैं। लच्छू का चरित्र इसी सत्य का उद्घाटन करता है। वह स्वय में इतना घृणित नही है। उपन्यास के अत मे लच्छू का पश्चाताप पाठको मे पुन उसके प्रति सहानुभूति तथा आत्मीयता उत्पन्न कराता है।

वस्तुत रमेश और लच्छू आज की नई युवा पीढी के दो परस्पर विरोधी तथा पृथक पृथक आकाक्षाओं तथा भूमिकाओ के सूचक हैं। रमेश के चरित्र की परवर्ती गतिहीनता अथवा मामान्यता और लच्छू के चारित्रिक पतन द्वारा लेखक ने स्वातत्र्योत्तर नई पीढी की मूल्यहीनता तथा दिशाहीनता की ओर सकेत किया है। एक स्थल पर उन्होने स्वातत्र्योत्तर नई पीढ़ी का विवेचन

करते समय उसमें सक्रिय महत्वाकांक्षी और हताकांक्षी दो प्रकार के व्यक्ति बताये हैं। उपन्यास में ये दोनों ही भूमिकाओं के चरित्र हमें दिखाई पड़ते हैं।

छैलू (छैल बिहारी)–

छलू का चरित्र यद्यपि उपन्यास में एक लघु प्रसंग द्वारा ही प्रत्यक्ष हुआ है किन्तु अकस्मात अपने इस प्रसंग द्वारा वह अपने सारे समवयस्क मित्रों के चरित्र के ऊपर छा जाता है। अपने पिता का इकलौता पुत्र होने के बावजूद भी वह अपने पारिवारिक जीवन के प्रति कुंठाग्रस्त है। उसके घर पर एक नरवश्या का राज्य है। समलैंगिक व्यभिचार के आदी अपने पिता के प्रति उसके मन में बेहद घृणा है। भीतरी घृणा और विक्षोभ के भाव ही उसकी प्रतिक्रिया को अराजकतावादी बना देते हैं। बारादरी के प्रश्न को लेकर नई पुरानी पीढ़ी का जो संघर्ष प्रकट होता है छलू उसमें अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा करता है। बारादरी के स्थान पर समाज के रूढ़िवादी वर्गों द्वारा मंदिर खड़ा करने की योजना को लेकर जो संघर्ष चलता है उसमें छलू भी सक्रिय भाग लेता है। लड़कों का गतिविधियां में पुलिस हस्तक्षेप करती है अन्य लड़कों की भांति छलू भी गिरफ्तार किया जाता है। परन्तु पुलिस के चंगुल से वह किसी प्रकार भाग निकलता है। रूढ़िवादियों के प्रति उसकी घृणा विध्वंसक रूप धारण करती है। प्रतिशोध उसे अंधा बना देता है। रात्रि में छुपकर वह पूरे मुहल्ले के मंदिरों में आग लगा देता है। छलू का यह कार्य अमानुषिक और अनैतिक होते हुए भी उस सच्ची पीड़ा से उद्भूत है जिसका नागर जी ने नई पीढ़ी के संदर्भ में उल्लेख किया है। उनके अनुसार हमारे समाज में 'कुछ तो पुराने अन्त्यज हैं और कुछ दूसरे महायुद्ध के बाद नये आर्थिक मान्यताओं वाले नये समाज के अन्त्यज हैं। समझता हूं कि इन्ही आर्थिक अन्त्यजों की संतानें ही आज विद्रोह के पथ पर अग्रसर हो रही हैं। उनका विद्रोह दिशाहीन हो सकता है पर उनकी पीड़ा सच्ची होती है।' छलू की पीड़ा ऐसी ही पीड़ा है।

छलू का यह विद्रोह न केवल अपने पिता से है बल्कि समूचे रूढ़िवादी समाज से है। एक हद तक उसका यह विद्रोह स्वाभाविक भी है। पिता की घृणित कारगुजारियां ही उसे विद्रोही और नाशकारी बनाती हैं। यही कारण है कि उसके इन विद्रोहात्मक और विध्वंसात्मक कार्यों के बावजूद भी वह पाठकों की घृणा का पात्र नहीं बन सका है बल्कि उसके प्रति पाठकों

के मन में सहानुभूति ही उत्पन्न होती है। छल्लू की यह प्रतिहिंसा बारादरी के संघर्ष के दौरान सारे पात्रो के महत्व को मंद कर देती है और संपूर्ण घटना पर छा जाती है। इस संदर्भ में डा० धर्मवीर भारती का यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है 'पता नहीं उसके (लेखक के) जाने या अनजाने उनका नायक, उनका साहसी, विद्रोही रमेश पीछे रह गया और उस समस्त घटना-चक्र में अरविंद शंकर की सारी सहानुभूति ले गया डरपोक, भागने वाला अ नायक या एण्टी हीरो' छल्लू ।' समग्रत अकस्मात उभरने वाला छल्लू का यह चरित्र कतिपय सीमाओं के बावजूद अपनी भूमिका में सजीव तथा सबल है।

उपन्यास के अन्य महत्वपूर्ण पुरुष चरित्रो में रद्धूसिंह और पुत्तीगुरू के चरित्र भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। रद्धूसिंह नायिका रानीबाला के पिता हैं और पुत्तीगुरू नायक रमेश के पिता हैं। दोनो ही चरित्र अपनी 'टिपिकल' भूमिकाओं में समाज की रूढिवादी मान्यताओं को लेकर चलते हैं।

ठाकुर रद्धूसिंह–

रद्धूसिंह का चरित्र जटिलताओं से ग्रस्त है। वे एक अभाव ग्रस्त परिवार के मुखिया हैं। पिता की इकलौती संतान होने के कारण उनका लालन पालन अत्यन्त लाड प्यार से हुआ। उनके पिता शहर कोतवाल थे और अंग्रेजी राज में अपनी नमक हलाली के लिए सरकार से बड़ा नाम पाया था। वे विलासी प्रकृति के थे और शराब तथा नाचरंग उनकी नित्य की क्रियाएँ थी। ये ही सार संस्कार धीरे धीरे रद्धूसिंह के व्यक्तित्व का अंग बन गये। पिता की मृत्यु के बाद घर की सारी संपत्ति इसी में नष्ट कर दी। अभावग्रस्त पारिवारिक स्थिति को संभालने के लिए कई धंधे उन्होंने किये किन्तु सफलता नहीं प्राप्त हुई। नौकरी को वे अपनी शान के खिलाफ समझते हैं। रद्धूसिंह का चरित्र एक निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का कुण्ठाग्रस्त चरित्र है। संतान के रूप में उन्हें लड़कियाँ ही प्राप्त हुई, पुत्र की लालसा वश उन्होंने अपनी एकदम उखड़ी हुई पारिवारिक स्थिति में दूसरा विवाह किया, परिस्थितियाँ विषम से विषमतर हो गई। परन्तु उनकी ठकुराई की झूठी ठसक पर कोई प्रभाव न पड़ा। वही दुनिया के सामने ऊँचा ऊँची बातें, एक कोरा दम्भ और मन में तरह-तरह की कुंठा और घुटन-'वह तो वेश्याओं का नाच, शराब हंसी, खिलखिलाहटों से भरे विलास के मेले, पुलिस के हथकण्डों से उड़ाई हुई औरतों के मजे लूटने वाले दिन, दोस्तों और मुसाहिबों से घिरे हुए दिन, नोट भरी जेबों

वाले दिन और वहाँ नौकरी क लिए उन बडे बडे ओहदे वाला के बगले के अदली की तिपाई म बैठकर दिन दिन भर प्रतीक्षा करना, जिन्ह किसी समय उनके पिता ने ही य ओहदे दिलवाय थ। रद्दूसिंह के सस्कार और वतमान परिस्थितियो क असामजस्य स उत्पन्न उनकी मानसिक कशमकश क बडे ही सजीव चित्र उनके चरित्र के सजीव अग हैं। समग्रत रद्दूसिंह का चरित्र एक बिगड नवाब का सा चरित्र है जिस लखक न अत्यन्त सजीवता स चित्रित किया है। य मिटती हुई सामतीय व्यवस्था क प्रतिनिधि चरित्र हैं।

पुत्ती गुरू–

पुत्तीगुरू का चरित्र भी इतना ही सजीव है। उनका चरित्र रद्दूसिंह की भाति ज्यादा कुण्ठाओ और जटिलताओ स ग्रस्त नही है। व्यावहारिकता उनको चरित्र में अधिक है। व ब्राह्मण हैं और पडिताई करना उनका पेशा है। वे रूढिवादी सस्कारा क व्यक्ति हैं। धार्मिक अधविश्वासों और रीति रिवाजो के प्रति उनम अटूट श्रद्धा और विश्वास है। अपनी इसी रूढिवादिता के कारण वे अपन प्रगतिशील बटे रमण स अपना सामजस्य नही बिठा पाते हैं। आधुनिक विचारा तथा नई पीढी से उन्हें बहुत चिढ है। व विशुद्ध ब्राह्मणवादी हैं। धम पर किसी भी प्रकार का प्रहार उनक लिए असह्य है। बारादरी के स्थान पर मन्दिर क प्रश्न को लेकर जो सघष नई और पुरानी पीढी के मध्य उठ खडा होता है उसमें पुत्तीगुरू पुरानी पीढी का प्रतिनिधित्व करत हैं। मदिर के समथन म तथा नई पीढी क विरोध म व अनशन तक करने को तत्पर हो जात हैं।

व्यावहारिक भूमिका पर अपने व्यक्तिगत जीवन म पुत्तीगुरू का विजयामण्डित व्यक्तित्व अपनी सारी रोचकता और सजीवता लिए हुए स्पष्ट हुआ है। पुत्तीगुरू विजया के बहुद प्रमी हैं। विजया के समक्ष उनके सार नतिक अनतिक काय ताक म रखे रह जात हैं। सारी अच्छाइ-बुराई की कसौटी उनकी विजया ही है। किसी भी बात का विरोध अथवा समर्थन उनक लिए विजया पर ही निभर है। उनक स्वभाव तथा व्यवहार में फक्कडपन तथा मस्ती है जो सहज ही पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। अपनी व्यवहार-कुशलता क कारण बुजुगवग म व काफी लोकप्रिय हैं। विभिन्न समस्याओ क सन्दभ म उनकी सलाह बुजुग वग क लिए विशष महत्व रखती है। समग्रत पुत्तीगुरू क चरित्र म भगवान और धम पर दृढ आस्था रखने

वाले एक निम्न मध्यवर्गीय पडित का सजीव चित्रण हुआ है। रोचकता पुत्ती गुरू के चरित्र की केन्द्रीय विशेषता है।

नवाब अनवर मिर्जा–

नवाब अनवर मिर्जा का चरित्र भी कुछ अशो मे अपनी कतिपय विशेषताओ के कारण पाठको को आकर्षित करने मे पूणत सफल है। नवाब साहब पुराने विचारो के व्यक्ति हैं, नई पीढी के विचारो विशेषकर उसकी स्वतत्रता के वे कटटर विरोधी हैं। यही कारण है कि वे अपनी नातिन महाबानू को कडे नियत्रण म रखते हैं। परन्तु अपनी व्यावहारिक भूमिका पर वे अत्यत सरल, नम्र तथा उदार प्रकृति के व्यक्ति हैं। सपत्तिशाली होते हुए भी उनका रहन-सहन अत्यत सरल और सादा है। मोह-माया के प्रति उनके मन में एक प्रकार की विरक्ति सी दिखाई पडती है। अपने धन का उपयोग व स्वय नहीं करते बल्कि उनके सम्बन्धी तथा इधर-उधर से आय अ य लोग ही उसे भोगते हैं। यह विरक्ति तथा सादगी ही उनके चरित्र की गभीरता को स्पष्ट करती है। पुराने विचारो क होने पर भी धार्मिक रूढिवादिता से वे दूर हैं। नमाज, रोजा तथा अ य प्रकार के धार्मिक क्रिया कलापो का वे आज के युग मे कोई विशेष महत्व नही मानते हैं। साम्प्रदायिकता क प्रति उनकी अरुचि उनके चरित्र की एक और महत्वपूण विशेषता है। मुस्लिम होते हुए भी व जाति पाति के भेद भाव से परे हैं। हिन्दू हो या मुसलमान उनके लिए सब समान हैं। रमश को वे पुत्रवत स्नेह देते हैं तथा रानी को अपनी बेटी के समान ही समझते हैं। ये ही विशेषताए नवाब साहब के चरित्र को प्राणवान बनाती हैं। कुल मिला कर उनका चरित्र पुराने बुजुग वग का प्रतिनिधि होने पर भी कतिपय आधुनिक विचारों से युक्त है।

लाल साहब—

लाल साहब का चरित्र दुबलताओ का ही पुतला है। अपने पारिवारिक जीवन स वे बेहद असतुष्ट हैं। किसी समय उनका वश नवाबो से सम्बन्धित था, किन्तु विलास और भाति भाति के स्वेच्छाचारो ने न केवल उनकी स्थिति ही बदल दी वरन कतिपय चारित्रिक विषमताओ को भी उनके सम्मुख ला खडा किया। प्रारम्भ में उनका परिचय एक विलासी तथा कामुक व्यक्ति क रूप में ही मिलता है, यहा वे अत्यत घृणित भूमिका लिए हुए सामने आते हैं।

पारिवारिक जीवन की विषमतायें ही उनका रिश्ता एक तवायफ वहीदन से जोड़ती हैं। यह रिश्ता ही लाल साहब के जीवन को एक अत्यन्त कुत्सित तथा वासनामय राह की ओर ले जाता है। उपन्यास के प्रारम्भ में उनका चरित्र इसी कामुक पक्ष को लेकर उभरा है।

परन्तु इन चारित्रिक दुर्बलताओं के होते हुए भी कतिपय स्थलों पर उनका चरित्र अपनी अच्छाइयों को भी स्पष्ट करता है। वे चरित्रहीन अवश्य हैं किन्तु दिल के बुरे नहीं हैं। लाल साहब खुद भी एक बड़े मगर बिगड़े हुए खानदान के लाल हैं। दबंग हरदिल अजीज, बीबी-बच्चों और बराबर वालों के लिए कठोर और गरीब उन्हें आज का आसफुद्दौला मानते हैं'-लाल साहब के चरित्र का लेखक द्वारा किया गया यह विश्लेषण उनके गुण दोषों को स्पष्ट कर देता है, और लोगों के लिए उनका व्यवहार चाहे जैसा हो किन्तु गरीबों और दलितों के प्रति उनमें पर्याप्त सहानुभूति है। माँ के वे परम भक्त हैं। बाह्य तथा आंतरिक परिस्थितियाँ अंत में उनके जीवन में एक नया मोड़ लाती हैं। वे धार्मिक बन जाते हैं तथा मंदिर में नियमित रूप से पूजा पाठ करने की आदत डाल लेते हैं। इस प्रकार वे इस भूमिका में आकर अपने पूर्व के घृणित कर्मों का प्रायश्चित करते दिखाई पड़ते हैं। पूजा-पाठ से वे सच्ची आन्तरिक शांति पाते हैं। असंतोष और अशांत वातावरण से ऊबा हुआ उनका व्याकुल मन भगवान की शरण में आश्रय ढूंढ कर संतोष और शांति प्राप्त करता है। समग्रत लाल साहब के चरित्र में बिगड़े हुए रईसों के सारे गुण-अवगुण विद्यमान हैं।

शेख फकीर मुहम्मद—

पुरुष पात्रों में एक चरित्र शेख फकीर मुहम्मद का है जो अत्यंत प्रभावशाली है। शेख जी का चरित्र अप्रत्यक्ष रूप में सामने आया है। वे अरविंद शंकर के पितामह श्री राधे लाल जी के व्यवसाय में साझीदार हैं। राधेलाल जी और उनमें सगे भाइयों का सा सम्बन्ध है। समूचे व्यापार को राधेलाल के हाथों सौंप वे निश्चिंत थे। शेख जी एक धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे और उनका अधिकांश समय पीरों-फकीरों और साधु-सन्यासियों की शोहबत में गुजरता था। उन्होंने राधेलाल जी से कभी व्यापार का हिसाब नहीं मांगा। धन दौलत से उन्हें कोई मोह नहीं था। सरलता, धार्मिकता तथा भेदभाव से परे उनका चरित्र अपने आप में अनेक विशेषताओं को रखता है। जब राधेलाल जी के मन में खोट उत्पन्न हुआ और वे साझेदारी से अलग हो गये तो

सेठ जी को हार्दिक दुख हुआ। वे इस आघात को सहन नहीं कर सके और अन्तत यही आघात उनके प्राण लेकर मानता है। उनकी यह सहृदयता ही उनके चरित्र को प्राणवान् बनाती है। उनका जितना भी चरित्र उपन्यास मे उभरा है वह अत्यन्त प्रभावशाली है। आधुनिक परिस्थितियो मे उन जसे व्यक्ति अपवाद ही माने जा सकते हैं।

इन पुरुष पात्रो के अतिरिक्त आधुनिक जीवन के प्रतिनिधि बहुत से अन्य पात्र भी हैं जो उपन्यास के अन्तगत प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष भूमियो पर चित्रित हुए हैं और चित्रण की भूमिका पर बहुत सजीव हैं। इनमे परम्परागत रुढि-वादिता तथा आर्थिक विषमता की चक्की मे पिसने वाले, भाँति-भाँति की कुण्ठाओ से ग्रस्त बाबू सत्य नारायण, चोर बाजारिया लाला रूपचन्द, राज-नीतिक खिलाडी रेवतीरमन, खोखामिया तथा हाजी नवीबख्श, समाजवाद का ढिंढोरा पीटने वाले राध रमन, भ्रष्टाचारी बजूलाला, कुत्ता की सी जिंदगी जीने वाला और अन्त मे पागल हो जाने वाला चाइथ राम सिन्धी, भक्तराज मधुर जी तथा भवानी शकर, उमेश शकर आदि हैं। लच्छू की रूस यात्रा के दौरान उसके सम्पर्क मे आने वाला उसका मित्र यूसुफ तथा बूढ 'चाचा' प्लेस्टोनोव के चरित्र भी प्रभावशाली तथा आकर्षक बन पडे हैं।

नारी-पात्र

माया—

नारी पात्रो मे माया का चरित्र अपनी कतिपय विशिष्ट भूमिकाओ के कारण अत्यन्त प्रभावशाली बन पडा है। माया लेखक अरविंद शकर की पत्नी हैं। अरविंद शकर ने एक स्थल पर माया को 'कुशल गृहिणी और सुशीला' कहा है। एक हद तक यह कथन बिल्कुल सत्य है। अरविंद शकर का जीवन अनेक सघर्षो से ग्रस्त एक मध्यवर्गीय जीवन है। उनका जीवन आर्थिक तथा पारिवारिक समस्याओ से ग्रस्त है। फिर भी माया की प्रबन्ध-क्षमता समूचे परिवार को किसी न किसी रूप मे समेटे हुए है। उन्हें अपने पति से असीम प्रेम है। पति की परेशानिया उन्हें बहुत अधिक व्याकुल कर देती हैं और वे ज्यादा से ज्यादा उन परेशानियो तथा दुखो में हाथ बढाने का प्रयत्न करती हैं। सन्तानो के प्रति उनकी ममता तथा स्नेह अत्यन्त प्रगाढ है। वे जितना भवानी और उमेश को चाहती हैं उतना ही करुणा और वरुणा को भी।

परिवार की शोचनीय आर्थिक स्थिति उन्हें अपनी जिम्मेदारियाँ महसूस कराती हैं और वे लघु धन्धों द्वारा उक्त अभाव की पूर्ति करने का प्रयत्न भी करती हैं। माया धार्मिक विचारों की महिला हैं। पतिव्रता धर्म को वे सबसे बड़ा धर्म मानती हैं। उन्हें अपने सतीत्व पर अभिमान है।

माया का चरित्र अरविंद शंकर से कम संघर्षशील नहीं है। संघर्षों में तप कर ही उनका चरित्र एक निखरे हुए रूप में सामने आया है। यहाँ वे अपने चरित्र की महत्तर भूमिकाओं का स्पर्श करती हैं। बेटी वरुणा के अविवाहित और रोग ग्रस्त जीवन से वे बेहद पीड़ित हैं और जब उन्हें यह पता चलता है कि वरुणा एक मुस्लिम युवक द्वारा गर्भवती हो गई है तो उनका हृदय फट जाता है। अपने दुख के इस विष को वे गले में नीचे उतार लेती हैं। सहनशीलता माया के चरित्र की एक और महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली विशेषता है। उनका कोमल हृदय कठोर से कठोर प्रहार को भी सहन करने की क्षमता रखता है। वे संघर्षों से पलायन नहीं करतीं बल्कि उन संघर्षों से जूझती हैं उनका डटकर मुकाबला करती हैं। जब उन्हें यह समाचार मिलता है कि छोटे बेटे ने आत्महत्या कर ली है तो माया की वेदना अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ हाहाकार कर उठती है। उसे अपने हृदय पर कितना बड़ा और कठोर पत्थर रखना पड़ा होगा यह अनुभवी व्यक्ति ही जान सकता है। जिस प्रकार अरविंद शंकर जीवन की विषरूपा कटुताओं को अमृत के रूप में ग्रहण करते हैं माया की भूमिका इससे भिन्न नहीं है। माया का चरित्र उस विशाल समुद्र की भांति है जिसमें गंभीरता है गहराई है और ज्वार भाटा की भयानक उथल-पुथल भी। एक परम्परागत भारतीय नारी की सारी आदर्श भूमिकायें हम माया के चरित्र में देख पड़ती हैं।

रानी बाला–

स्त्री पात्रों में रानी बाला का चरित्र सर्वाधिक प्रमुख चरित्र है। अरविंद शंकर द्वारा लिखित उपन्यास की वह नायिका है। रानी बाला रद्धूसिंह की पुत्री है और बाल विधवा है। निम्न मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन और उसका विधवापन एक हद तक उसे कुण्ठाग्रस्त बनाये हुए है। एक ओर अभावग्रस्त परिवार और दूसरी ओर यौवनावस्था इन दो पाटों के बीच पिसता हुआ उसका चरित्र अत्यन्त सजीव भूमियों में स्पष्ट हुआ है। बाल्यकाल की विधवा रानी 'जवानी का होश सम्हालने के साथ ही साथ उसका मन एक

एसे डिब्बे मे बन्द हो गया था—जिसके तले में जीवन का स्पर्श था और ढक्कन में मृत्यु की घुटन।' उसकी कुण्ठा कभी-कभी विद्रोह का रूप धारण करती है और 'अपने अंतर विद्रोह के क्षणों मे रानी अपने आपको विधवा न मान कर कुवारी कन्या ही मानती है।' पिता का पुनर्विवाह उसके सामने प्रश्न चिन्ह बना खड़ा रहता है। वह सोचती है 'बाबू ने फिर अपना पुन विवाह क्यो किया ? पुरुष के लिए यह पाप क्यो नही ?'—ये बातें ही उसके मन मे समाज तथा पुरुष जाति के प्रति एक तीखी प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं। रानी का यह गुप्त विद्रोह उसकी आतरिक सीमाओं तक ही आकर रह जाता है। मजबूरिया उसे गतिहीन बना देती हैं। उसकी यह घुटन और कुण्ठा उसमें मानसिक उद्वेलन को जन्म देती है। 'अपने चारा ओर आशाओ, विश्वासा से फले फूले प्रेम चाहना के बाग-बगीचो को देख कर उसके मन मे भी हूक उठती है और जीवन निस्सार लगने लगता था। अपने अकेले पन की पीडा उसे बरछी की तरह भेदती थी।' रानी बाला इन कुण्ठाओ से ग्रस्त अवश्य है किन्तु उनके सम्मुख वह अपने आपको समर्पित नहीं करती। सघर्षों का सामना करने की उसमे अद्भुत क्षमता है। उसके पिता बेकार हैं तथा पारिवारिक स्थिति भी शोचनीय है किन्तु अपने उत्तरदायित्व के प्रति वह पूर्णत सजग है। सम्पूर्ण परिवार का बोझ उसी के कन्धो पर है परन्तु वह अपने कर्त्त व्यो से मुह नही मोडती। वह आधुनिक विचारो की एक अध्ययनशील तथा प्रतिभावान छात्रा है। अपनी मानसिक कुण्ठाओ और परेशानियों को वह अध्ययन के माध्यम से भुलाने का प्रयास करती है। स्वभाव से वह अत्यन्त गभीर और शान्त है। परन्तु जहा एक ओर उसके चरित्र मे उदारता, दया, करुणा तथा सरलता जसे पक्ष स्पष्ट हुए हैं दूसरी ओर साहस, निडरता और निर्भीकता जैसे गुण भी उसमें विद्यमान है। मि० और मिसेज खन्ना उसकी इन्हीं विशेषताओ के कारण उससे प्रभावित होकर उसके प्रति स्नेह तथा सहानुभूति बरतते हैं। उसकी व्यावहारिक सरलता ही उसे अपने और अपनी सौतेली मा के बीच स्नेह सम्बन्ध बनाये रखने में योग देती है। यही नही अपनी सौतेली मा के प्रति उसमे पर्याप्त आदर और सम्मान की भावना है। अपनी छोटी बहनो के प्रति भी उसमें असीम प्रेम है यहा तक कि अपने बेकार पिता के प्रति भी उसमे आदर की भावना है। पुनर्विवाह की अभिलाषा उसके चरित्र को नया मोड देती है। उसका प्रणय-सम्बन्ध रमेश से होता है। रमेश के प्रति उसका आकर्षण सच्चे हृदय से होता है। उसके

दोस्ती को बढावा दें।' मिसज खन्ना का उक्त कथन आधुनिक विचारो का नेतत्व करता है।

अपने व्यक्तिगत जीवन मे वे नि सतान हैं। यह अभाव ही उनके मन म अन्य लडके-लडकियों के प्रति स्नेह और प्रम उत्पन्न करता है रमेश और रानी उनके सरक्षण म पूर्ण आत्मीयता का ही अनुभव करते हैं। वे व्यवहार-कुशल तथा अत्यत सरल और नम्र स्वभाव की हैं। स्नेह और प्रम की वे साक्षात मूर्ति हैं। पीडित तथा शोषित वर्ग के प्रति उनके हृदय मे आपार करुणा और सहानुभूति है। अपने क्षेत्र की वे लोकप्रिय तथा सम्मानित महिला हैं श्रद्धा और आदरपूवक लोग उन्हे 'बहन जी' कहते हैं। 'पिछडे मुहल्लो की पिछडी हुई लडकियो और औरतो के लिए वे साक्षात् मसीहा हैं। उपन्यास मे कुसुम लता खन्ना का चरित्र मूल्त एक समाज-सेविका के रूप म स्पष्ट हुआ है। वे एक अनन्य लगनवाली सामाजिक काय कर्त्री हैं। उनका चरित्र नई पीढी का समथन करने वाला तथा नारी-समाज की कुरीतियो और वधना को मिटाने के लिए सकल्प वद्ध एक सक्रिय भूमिका का चरित्र है।

नारी-पात्रो के इन प्रमुख तथा प्रभावशाली चरित्रो के अतिरिक्त कतिपय अन्य गौण चरित्र भी हैं जो अपने गुण-दोष को लिए हुए उपन्यास मे छाये हुये हैं। इन चरित्रो मे सुमित्रा, गहांबानू, मिसेज माथुर और वहीदन के चरित्र उल्लखनीय हैं। सुमित्रा रुद्रसिंह की दूसरी पत्नी तथा रानीबाला की सौतेली मा है। उसका व्यवहार तथा स्वभाव अत्यत प्रभावशाली है। सौतेली माँ के लिए कही जाने वाली परम्परागत प्रवत्तियो से वह परे है। उसमे कही भी कठोरता ईर्ष्या-भाव तथा अपने-पराये का भेद नही है। वह अत्यत शांत तथा गभीर प्रकृति की है। रानी के प्रति उसका सम्बन्ध सगी मा क समान ही है। उसकी यही चरित्र विशेषताए पाठक को शीघ्र ही प्रभावित करती हैं। उसका चरित्र एक आदश भारतीय नारी का चरित्र है।

गहाबानू का चरित्र नारी-समाज का वह चरित्र है जो सामाजिक वधना को तोडकर अपने अभिशप्त जीवन से मुक्त होना चाहता है। उसका चरित्र यद्यपि उपन्यास मे थोडी ही देर के लिये आया है किन्तु अपनी निडरता और साहस से वह पाठक को प्रभावित करन मे सफल होता है। वह नारी होने क बावजूद एक घुटन भरे वातावरण से मुक्ति पाने के लिये अपूव साहस का परिचय देती है। अकेलेपन की घुटन से उबरन क लिये वह स्वतन्त्रता चाहती है। वह कहती भी है 'मैं आजाद रहूगी, पढूगी। आगे कुछ नौकरी

यगरा तगारा करके अपनी जिन्गी का नक्शा आप बनाऊगी।' वह आधुनिक विचारों की महिला है किन्तु घर के कठोर और नियन्त्रित वातावरण म अपना सामजस्य न,ा बिठा पाती है। इस वातावरण से मुक्त होने के लिए वह रमन स सहायता की याचना करती है किन्तु जब रमन अपनी असमर्थता प्रकट करता है तो पुरुषा क प्रति उसम तीव्र प्रतिक्रिया होती है। वह कहती है' चाहे कलमुहे ऊगूर री ममन पे भरोसा कर लेना पर मरद की अक्लि पे कभी भूल के भी अकीदा न लाना, पढते पढते सड जाती है। बदानवाज माफ कीजियेगा, जब आप हमारे जमाने क होत हुए भी मरी बातो से साफ डरत मा गय तब इकयासी बरस क नाना जान का क्या होगा।

अभी-अभी आपस अज कर चुकी हूँ कि मैं इस बहाने आजाद होकर अपना जिन्गी का नक्शा खुद बनाना चाहती हू। बानू रा उक्त कथन उसकी पीडा की सच्ची अभि यक्ति करता है।

वहीदन का चरित्र अवगुणा स पूण है। वह एक वेश्या है जिसका जीवन अत्यन्त वासनामय तथा घृणित भूमिकाओ पर स्पष्ट हुआ है। वह सर गोभाराम की एक तवायफ द्वारा उत्पन्न लडकी, सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता डा० आत्माराम की सौतेली बहन है माँ के सस्कारो का उसम स्पष्ट प्रभाव है वह 'शरीर बेचने वाली और खुद शारीरिक लालसाओ और वासनाओ के प्रति बिकी हुई' एक घणित भूमिका पर अपने चरित्र को स्पष्ट करती है। उसका चरित्र दूषित वातावरण की ही सष्टि करता है। मिसेज उमा माथुर के चरित्र को भी हम इसी भूमिका पर रख सकते हैं। वह एक कामुक तथा बदचलन स्त्री है तथा अपने चरित्र के दुबल पक्षो को भी स्पष्ट करती है। अपने पति के होते हुए भी दूसरे पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करना और अपने प्रेम जाल म फसाना उसका एक मात्र शौक है। समग्रत उसका चरित्र स्त्री कामोन्माद का शिकार है जो दूषित और घणित वातावरण की सष्टि करता ह। वहीदन और उमा माथुर पाठक की घणा के ही पात्र बने हैं।

इन नारी पात्रो के अतिरिक्त महरोई का चरित्र भी अत्य त मार्मिक भूमिका पर चित्रित है। विवाह योग्य हो जाने पर भी वह अविवाहित है। ऊपर से शान्त, सीधी तथा गम्भीर परन्तु मन म कुण्ठाएँ—इस दोहरी भूमिका पर नागर जी ने उसके चरित्र का बडी सजीवता से चित्रित किया है। गोपी और सती अपनी बदचलन और उच्छ खल प्रवृत्तिया के कारण पतनशील

भूमिकाओं पर चित्रित हैं। रूसी लड़की तमारा नूरुद्दीनोवा का चरित्र भी प्रभावशाली बन पड़ा है।

समग्रत 'अमृत और विष' की संपूर्ण चरित्र-सृष्टि अपने आप में पुरानी और नई पीढ़ी के विभिन्न व्यक्तियों के विभिन्न रूपों, समस्याओं और स्तरों को उद्घाटित करने वाली एक बहुरंगी सृष्टि है। पुरुष और नारी दोनों ही वर्गों की सामान्य और विशिष्ट भूमिकाएँ उसमें प्रत्यक्ष हुई हैं और उसके माध्यम से आधुनिक समाज--विशेषत मध्यवर्गीय समाज-- का एक बड़ा स्पष्ट और सजीव चित्र भी।

'अमृत और विष' उपन्यास की कथावस्तु और उसकी चरित्र-सृष्टि के उपर्युक्त विवेचन के पश्चात स्पष्ट हो जाता है कि इस कृति में नागर जी ने भारतीय समाज के एक लम्बे काल-खण्ड को लेकर उसके अनेकानेक वर्गों का एक एक क्रास सेक्शन प्रस्तुत किया है। उपन्यास में ऐसे अनेक पात्र हैं जो अपने व्यक्तित्व के साथ अपने समूचे वंशगत इतिहास को भी हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं, और वस्तुत यही वह माध्यम है जिसका आधार लेकर इतने लम्बे काल खण्ड की कथा लेखक द्वारा उपन्यास में सफलतापूर्वक कह दी गई है। इसका कथा-पट इतना विस्तृत है कि डा० धर्मवीर भारती का यह कथन कि 'वर्गों परिस्थितियों और पात्रों का वैविध्य हमें आश्चर्य में डाल देता है।'[1] नितान्त सत्य प्रतीत होता है। वस्तुत नागर जी ने अपनी इस कृति में हमारे समाज का जो गम्भीर समाज शास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह उनकी गहरी सूझ बूझ यथार्थ दृष्टि और अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा अनुभवों की एक विशाल राशि समेटे हुये है। एक उपन्यासकार से जिस लक्षकीय तटस्थता की अपेक्षा की जाती है वह नागर जी में पूरी मात्रा में विद्यमान है। उन्होंने अपने इस सामाजिक विश्लेषण में उन दोनों ही प्रधान शक्तियों का चित्र दिया है जो क्रमश समाज को आगे की ओर बढ़ा रही हैं या उसे पीछे की ओर फेंक रही हैं। समाज की ये प्रगतिशील तथा प्रतिगामी शक्तियां ही वस्तुत -- अमृत और विष के रूप में इस उपन्यास में आई हैं और इस अमृत और विष को अपने कथानक में स्थान देने के लिए नागर जी ने परिस्थितियों तथा पात्रों दोनों से सहायता ली है। हम कह चुके हैं कि इस उपन्यास की परिस्थितियां तथा चरित्र-सृष्टि अत्यन्त वैविध्यपूर्ण है, और यह विविधता समाज

१—धर्मयुग, २७ नवम्बर, १९६६।

के छोटे-बड़े स्तरों, छोटे-बड़े पात्रों तथा इनकी लगभग सब प्रकार की मन स्थितियों को स्पर्श करती है। हमारे सामाजिक जीवन का एक बड़ा ही प्रामाणिक इतिहास इस कृति मे नागर जी ने हम दिया है। नागर जी ने स्वातन्त्र्योत्तर युग को विशेष विस्तार के साथ इस कृति म प्रस्तुत किया है, और इस स्वातन्त्र्योत्तर युग में जो तमाम समस्यायें हमारे सामाजिक जीवन की सतह पर अकस्मात उतराने लगी हैं उनका भी गम्भीर विश्लेषण किया है। स्वातन्त्र्योत्तर युग का कोई भी महत्वपूर्ण प्रसग इस उपन्यास मे लेखक की दृष्टि से छूटने नहीं पाया है। हम कह सकते हैं कि आज की तमाम समस्याओं पर जितनी गम्भीर टिप्पणी, उनका जितना गम्भीर विश्लेषण और उनके समाधान के जितने तत्व स्पर्शी सुझाव नागर जी ने इस कृति मे दिये हैं वे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञो तथा समाजशास्त्रियो के सुझावो से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

केन्द्रीय रूप म यह कृति आज के सामाजिक जीवन मे टूटते हुए मध्य वग की कथा कहती है। राजनीतिक नेता समाज-सुधारक लेखक, कलाकार, विद्यार्थी, क्लर्क, दूकानदार तथा सडक पर नीची गदन किये नौकरी के लिए घूमते हुये बेकार नवयुवक सबके सब इसी मध्यवग के ही नाना स्तरो से सम्बन्धित हैं। कहने की आवश्यकता नही कि इस मध्यवग का मानस आज न जाने कितनी प्रकार की कुण्ठाओ से परिपूर्ण है। य कुण्ठायें अधिकतर तो इस मध्यवग को भीतर ही भीतर खाती रहती है, और कभी-कभी उसे लक्ष्यहीन विद्रोह के लिए उत्प्रेरित करती हैं। इस उपन्यास मे मध्यवग के ये दोनो ही स्वरूप सामने आये हैं। नागर जी ने बडी ही सवेदनात्मक गहराई के साथ उनका चित्रण किया है। उनका निष्कष है कि आज पुराने मूल्य टूट जरूर रहे हैं, परन्तु नये मूल्यो के निर्माण के लिए अनुकूल वातावरण नही बन पा रहा। टूटते हुये मध्यवग से नये मूल्यो की अपेक्षा भी कसे की जाय ? परन्तु नागर जी ने लेखक अरविंद शकर के माध्यम से समस्या का एक उज्ज्वल पक्ष भी सामने रखा है। उनका यह भी निष्कष है कि सक्रान्तिकालीन इस वातावरण में सबसे अधिक जरूरत आस्था की है। लेखन को ही अपनी जीविका बनाने वाले अरविंद शकर तन और मन से बुरी तरह टूटे हुये हैं, उन्हे कही से कोई भी आधार नही प्राप्त होता, अन्तत अपनी आस्था के बल पर ही वे अधेरे से उबरकर प्रकाश म आते हैं। नागर जी ने अरविंद शकर की आस्था को एक उदाहरण के रूप मे टूटते हुये, समूचे मध्यवग के समक्ष प्रस्तुत किया है। यही, यथाथ के घटाटोप के बीच से, उभरने वाला नागर जी का

आदशवाद है, जो भारतीय जीवन तथा पश्चिमी आधुनिकता दोनो की ही सबल रेखाओ से पुष्ट है। उपन्यास के प्रमुख पात्र अरविंद शकर का यह कथन नागर जी की आस्था तथा आदश का सबसे बडा प्रमाण है। यही आधुनिक समाज का अमृत है जिसके सामने उसका समूचा विष अमहत्वपूण हो उठता है। "ये अफसर, नेता, मुनाफाखोर सकीण स्वार्थो, और मत धार्मिकता के ठेकेदार इन अनान के प्रतीको से जूझे बिना ही रह जाऊँ विश्राम करू और मर जाऊँ तब तो हेमिग्वे के बूढे मछेरे से हार जाऊगा मुझे जीना ही होगा, कम करना ही होगा।"[1]

जसा कि हमने प्रारम्भ म कहा है इस मछेरे का और इस मछेरे से भी अधिक बछडे का प्रतीक इस उपयास की बहुत बडी उपलब्धि है। नागर जी का यह उपयास नि सन्देह "बूद और समुद्र" की भाति ही प्रेमचन्दोत्तर युग की महत्वपूण कृति है।

१—अमृत और विष—पृ० ७१६।

नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यास

(विस्तृत विवेचन)

(क) शतरज के मोहरे (१९५८)

(ख) सुहाग के नूपुर (१९६०)

नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यास–

श्री अमृतलाल नागर के संक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनके साहित्यिक और अध्येता व्यक्तित्व का उल्लेख करते हुये दूसरे अध्याय के अन्तर्गत हम कह चुके हैं कि साहित्य के अलावा यदि उन्हें किसी अन्य दिशा मे सर्वाधिक रुचि है तो वह इतिहास तथा पुरातत्व की दिशा है। इतिहास तथा पुरातत्व के प्रति नागर जी का यह लगाव साहित्य के प्रति उनके लगाव से, कम महत्वपूर्ण अथवा कम गहरा नहीं है। अपने इतिहास तथा पुरातत्व प्रेम के बल पर ही वे भारत के अतीत से अपना निकट परिचय स्थापित कर सके हैं, और इस प्रकार परम्परा को सही भूमियो पर परख सके हैं। परम्परा के दुर्बल तथा सशक्त सभी पक्षों के इस घनिष्ट परिचय ने नागर जी के आधुनिक चिंतन को भी एक सन्तुलन प्रदान किया है। व न तो अंध परम्परावादी ही बन सके हैं, और न परम्परा से कटे हुये कोरे आधुनिकतावादी। उनकी जीवन दृष्टि परम्परा और आधुनिकता के सही ज्ञान पर आधारित होने के कारण ही ग्राह्य है।

इतिहास के प्रति नागर जी की रुचि किसी एक काल-खण्ड तक ही सीमित नहीं है। उन्हें भारत के प्राचीन इतिहास से जितना लगाव है उतने ही मध्यकालीन तथा आधुनिक इतिहास के व ममन हैं। उन्होंने इतिहास सम्बन्धी अपने अध्ययन तथा ज्ञान का अपने साहित्यिक निर्माण मे भी उपयोग किया है जिसका प्रमाण उनके दो एतिहासिक उपन्यास हैं। 'शतरंज के मोहरे' नामक अपने प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास में उन्होंने सन् १८५७ की क्रान्ति से पहले के अवध का बहुत ही यथार्थ एवं कलात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। यह वह समय था जबकि नवाबों के ह्रासशील जीवन सन्दर्भों, और शासन के लिए सर्वथा अयोग्य उनके कमजोर हाथों, मे पड कर समूचा अवध प्रदेश अराजक स्थितियों से होकर गुजर रहा था। अंग्रेजो ने उन्हीं स्थितियों का लाभ उठाकर अन्ततः समूचे अवध प्रदेश को हड़प लिया। इतिहास का यह सारा वृत्तान्त अवध प्रदेश की सामान्य जनता के सजीव क्रिया-कलापों के साथ उस उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है। 'सुहाग के नूपुर' नामक उनका दूसरा

एतिहासिक–उपन्यास एतिहासिक तथ्यो को नही, किन्तु दक्षिण भारत की प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सामने लाता है। इस उपन्यास म प्रथम उपन्यास के विपरीत सारी घटनाए तथा पात्र कल्पित हैं। परन्तु लेखक ने कल्पना की इस भूमि को इतिहास की सजीव पृष्ठभूमि द्वारा कलात्मक बना दिया है। इस उपन्यास मे लेखक न नारी जीवन की विवशताओ को ऐतिहासिक सदर्भों म उभारा है और इस प्रकार समाज व्यवस्था म नारी क लिय समुचित न्याय की माग की है। य दोना उपन्यास इस बात क प्रमाण हैं कि नागर जी न केवल आधुनिक सामाजिक जीवन क ही पारखी हैं, वरन इतिहास के पन्नों मे बिखरी भारतीय समाज की धडकनो को भी सुन सकन में समान रूप से सफल हुए हैं। अगली पक्तियो म हम क्रमश नागर जी क इन ऐतिहासिक उपन्यासो का विस्तृत विवेचन करत हुए एक इतिहास दृष्टा के साथ-साथ उनके सवेदनशील कलाकार रूप का भी परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

इसक पहल कि हम इन उपन्यासो का विस्तृत विवेचन करें एतिहासिक उपन्यास लखन की उस प्राथमिक आवश्यकता का उल्लख कर दना आवश्यक समझत है जिसक अभाव म सफल एतिहासिक उपन्यास नहा रच जा सकते। यह आवश्यकता है, इन उपन्यासो के अतगत देश-काल और वातावरण के यथाथ चित्रण की। एतिहासिक उपन्यासो म इतिहास को ज्यो का त्यो प्रस्तुत नही किया जाता वल्कि उस कल्पना के द्वारा आकषक बनाया जाता है। यदि उपन्यास केवल इतिहास की पृष्ठभूमि मात्र लकर चला है और शष बातें उपन्यासकार की कल्पना पर निभर हैं तो ऐस उपन्यास म इतिहास को पृष्ठभूमि को अत्यत सजीव रूप देने की चेष्टा की जाती है। उपन्यासकार प्रयास करता है कि जिस युग के ऐतिहासिक वातावरण के बीच उसने उपन्यास की घटनाओ तथा पात्रो की सृष्टि की है, वह युग अपने पूरे यथाथ म उन्घाटित हो सक। साथ ही लेखक की कल्पना से प्रस्तुत की गई घटनाए तथा पात्र उस एतिहासिक पृष्ठभूमि से जुडकर ही सामने आयें, कल्पित होत हुए भी तत्कालीन वातावरण से भिन्न न प्रतीत हो। इसके हेतु उपन्यासकार पात्रो की वेशभूषा, क्रियाकलाप तथा घटनाओ की सृष्टि तत्कालीन युग की सगति म ही करता है, और इस प्रकार उन्ह उस युग का ही अभिन्न अग बना दता है।

कुछ उपन्यास इतिहास स अधिक जुडे हुए होने हैं। यहाँ पृष्ठभूमि ही नहा, अधिकाश घटनाएँ तथा पात्र भी इतिहास की वस्तु होत हैं। कल्पना

का आश्रय ऐसे उपन्यासों में भी लिया जाता है, अन्यथा कृति उपन्यास न रह कर इतिहास ही बन जाय। परन्तु कल्पना का प्रयोग करते समय उपन्यासकार इस बात का ध्यान रखता है कि ऐतिहासिक पात्रों तथा घटनाओं का मूल व्यक्तित्व तथा रूप इतिहास का ही अनुसरण करता हो और कल्पना द्वारा उन्हें जो नई समृद्धि दी गई है, वह भी इतिहास में वर्णित उनके व्यक्तित्व तथा रूप की अवहेलना न करे। विशुद्ध कल्पित पात्र तथा घटनाओं की सृष्टि भी इस प्रकार की जाय कि वे भी तत्कालीन ऐतिहासिक *यथार्थ का अंग* मालूम हों।

एतिहासिक उपन्यास की रचना सरल नहीं है। श्री राहुल सांकृत्यायन के अनुसार—"ऐतिहासिक उपन्यास में हमे ऐसे समाज और उनके व्यक्तियों का चित्रण करना पड़ता है जो सदा के लिए विलुप्त हो चुका है। किन्तु उसने पद चिन्ह कुछ जरूर छोड़े हैं जो उनके साथ मनमानी करने की इजाजत नहीं देते। इन पद चिन्हों या एतिहासिक अवशेषों के पूरी तौर से अध्ययन को यदि अपने लिये दुष्कर समझते हैं, तो कौन कहता है, आप जरूर ही इस पथ पर कदम रखें? ऐतिहासिक उपन्यासकार का विवेक वैसा ही होना चाहिये जैसा कि इतिहासकार का होता है। उसे समझना चाहिये कि कौन सी सामग्री का मूल्य अधिक है और किसका कम है। लिखित सामग्री वही प्रथम श्रेणी की मानी जायेगी जिसे उसी समय लिपिबद्ध किया गया हो। एतिहासिक अनौचित्य से बचने के लिये जिस तरह तत्कालीन ऐतिहासिक *सामग्री और* इतिहास का अच्छी तरह अध्ययन आवश्यक है, वैसे ही भौगोलिक अध्ययन की भी आवश्यकता है। जिस तरह ऐतिहासिक मानदण्ड स्थापित करने के लिए तत्कालीन राजाओं के राज्य और शासन काल की पहले से ही तालिका बनाकर उसमें वर्णनीय घटनाओं के अध्याय क्रम को ठीक कर लेना जरूरी है, उसी तरह भौगोलिक स्थानों, उनकी दिशाओं और दूरियों का ठीक-ठीक अंदाज रहने के लिए तत्सम्बन्धी नक्शे का सारा हर वक्त सामने रखना चाहिए। ऐसा न करने से अक्षन्तव्य गलती हो जाती है।"[१]

राहुल जी के ये विचार एतिहासिक उपन्यास लेखन के संदर्भ में कितने मूल्यवान हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं। इतिहास के प्रति पूरी ईमानदारी

१— आलोचना— उपन्यास अंक।

बरतते हुए तत्पश्चात अपनी कल्पनाओं द्वारा उस इतिहास को साहित्य की वस्तु बनाकर कृति के अतगत रखकर जब उसे प्रस्तुत करता है तभी वह कृति इतिहास और साहित्य दोनों से अभिन्न होती है। इन उपन्यासों में सामान्य कल्पना से भी काम नहीं चलता। इनमें ऐसी कल्पना अपेक्षित होनी है जो अपने द्वारा लाई गई वस्तुओं को भी इतिहास का ही रंग दे दे इतिहास जहा मौन है, वहा अपने निर्माण द्वारा शून्य को भरे और जहा इतिहास मुखर है वहा भी इन तथ्यो को सजीव रूप में प्रस्तुत करे।

नागर जी के एतिहासिक उपन्यासों की विशिष्टता वस्तुत उनकी सजीव एतिहासिक पष्ठभूमि तथा उनमें पाये जाने वाले सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन के चित्रण में है। उन्होने बहुत ही सधे हुये चरणों से इतिहास की सीमा मे प्रवेश किया है। उनके एतिहासिक उपन्यासो का हमारा अगला विवेचन इस तथ्य का प्रमाण होगा।

————

अध्याय-७

शतरंज के मोहरे (१९५८)

●

"बाबा! क्या खुदा है? इसाफ है? हक है? सन्यासी सोचता रहा, फिर शात किन्तु दृढ स्वर में कहा—"अवश्य है। रात में दिन छिपा रहता है। मै भी उजाले की बाट मे बैठा हूँ, भाई।" नरककाल बोला—"अच्छा बाबा! ये दुनिया क्या सदा यू ही चलेगी? कमजोर यू ही पिसते रहेंगे, और शहजोर "कहा न भाई, रात के बाद दिन अवश्य आता है। म उसी उजाले की बाट में बठा हूँ।"

सन्यासी भविष्य में आते प्रकाश को देख रहा था।"

—'शतरज के मोहर', पृष्ठ ४२५।

'शतरज के मोहरे'

'शतरज के मोहरे' नागर जी का प्रथम एतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने सन १८२० ई० के कुछ पूव स लेकर–सन १८३७ ई० तक के लखनऊ के नवाबी शासन का यथाथ चित्र प्रस्तुत किया है। गहराई स देखा जाय तो राज नवाबो की ह्रासशील जिंदगी और उनके द्वारा पोषित तथा पल्लवित सस्कृति का जो चित्र इस उपन्यास में अवध की नवाबी को केन्द्र मे रखकर प्रस्तुत किया गया है, उसका सबध मात्र अवध प्रदेश स ही नहीं, समूचे भारत के राजा–नवाबो की अपनी पतनशील जिन्दगी तथा उनके द्वारा पैदा की जाने वाली विकृति स है। यह वह समय था जब कि सामतो राजा-नवाबो के निकम्म शासन चक्र के नीच जन सामान्य का जीवन बुरी तरह आक्रात था उच्छ खलता, विलासिता अन तिकता, कुचक्र छल प्रपच राजा–नवाबो के महलों से बाहर निकलकर समाज की सतह पर उतराने लग थे। राजा–नवाबों के महलों और हरमो के भीतर की इस वस्तु स्थिति तथा सामाजिक जीवन म उसकी व्याप्ति को इस उपन्यास म लेखक ने सम्पूण ऐतिहासिक सच्चाई तथा कलात्मक सजीवता स अकित किया है। इस उपन्यास में यद्यपि बीस वर्षो की घटनाएँ ही चित्रित की गई हैं परन्तु उतनी कम अवधि की घटनाओ क इद गिद लेखक ने जिस जीवन को प्रत्यक्ष किया है वह इतना बहुरगी, विस्तत तथा व्यापक है कि अपने समय का सम्पूण चित्र अदभुत सफाई तथा पारदर्शिता क साथ दता है। बहुत पहल इसी नवाबी जीवन को केन्द्र म रखकर प्रमचन्द न शतरज के खिलाडी नामक अपनी प्रसिद्ध कहानी लिखी थी जिसम उन्होंन नवाबी शासन के अतगत लख-नऊ के ह्रासशील जीवन को उसकी सारी यथाथ रेखाओ क साथ उभारा था। इस कहानी मे नवाबो की वास्तविकता शतरज के मोहरो स अधिक कुछ नहीं थी। प्रस्तुत उपन्यास जसे प्रमचन्द की इस कहानी पर भाष्य सा प्रतीत होता है। बहुत सभव है कि इस उपन्यास के रचे जाने की पृष्ठिभूमि में अन्य तमाम बातों के साथ 'शतरज के खिलाडी' कहानी की भी प्ररणा किसी न किसी रूप म अवश्य हो।

अवध प्रदेश के इतिहास के बारे मे नागर जी की गहरी जानकारी का उल्लेख करत हुये अपने एक निबध मे डा० रामविलास शर्मा कहते हैं–"नागर जी को इतिहास से प्रेम है, और इतिहास में भारत के इतिहास से भारत के इतिहास में अवध के इतिहास स, और अवध के इतिहास मे राजा बेनीमाधव और हजरत महल के इतिहास स उन्हे विशेष प्रेम है। अवध क इतिहास की जितनी गहरी जानकारी नागर जी को है उतनी, मेरी परख के अनुसार, किसी इतिहासकार को नही है। जानकारी के अलावा उनकी मम-दृष्टि तथ्यो की तह के नीचे *सत्य की भागीरथी का पता उस सहज बुद्धि से लगा लती है,* जो उनक कलाकार की विशेषता है।"[1] नागर जी के इतिहास प्रेम की एक विशिष्टता इस बात मे भी है कि वे एतिहासिक तथ्यों, घटनाओ, चरित्रो तथा राजा नवाबों क जीवन को महत्व दते हुये भी वस्तुत अधिक रुचि जन सामान्य के सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन को चित्रित करने म रखते हैं। व घटनाओ के ऊपरी विवरण म न भटककर उनके मम तक पैठने का प्रयास करते हैं, और इसीलिये उनके उपन्यासो म एसी बातें उद्‌घाटित होती हैं जो इतिहासो म या तो नही मिलती या फिर उपलब्ध तथ्यो पर नया आलाक फेंकती हैं। नागर जी की इस विशेषता पर लिखते हुये डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने ठीक ही कहा है–"नागर जी के मन मे भारतीय इतिहास को प्रगतिवादी इतिहास दर्शन के आलोक मे समझने की प्रबल आकाक्षा है अत उनके सम्मुख सामतवादी भारत को रूपायित करने का काय अति महत्वपूर्ण रहा है।"[2]

जन सामान्य के प्रति एक अत्यन्त सहानुभूतिपूण दृष्टि हमे नागर जी के ऐतिहासिक उपन्यासों मे दिखाई पडती है। इन उपन्यासो में उन्होने राजा नवाबा के जीवन के जो भी चित्र प्रस्तुत किए हैं उनम अधिकतर उनकी आलोचनात्मक दृष्टि ही सक्रिय है। उन्होंने इन राज–नवाबो पर व्यग्य की चोटें भी की हैं, जबकि सामान्य जनता के दुख दर्दो के प्रति लेखक सहज रूप से सवदनशील रहा है। उसका मानवतावादी दृष्टिकोण यहा भी समग्र रूप मे उभरा है।

'शतरज के मोहरे' उपन्यास का महत्व उक्त विशेषताओं के कारण

१— धमयुग– २ अगस्त १९६४ डा० रामविलास शर्मा पृ० १६।
२— आलोचना उपन्यास विशेषाक भाग ३ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय।

गी है। जैसा कहा गया है, इस उपन्यास में अवध के नवाबी जीवन की कथा कही गई है। इस कथा से इतिहास के जिस युग का सम्बन्ध है उसे पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत करते हुए ही लेखक ने अपनी कल्पना का समावेश किया है। इतिहास तथा कल्पना के आवश्यक संतुलन के कारण प्रस्तुत उपन्यास की कथा वस्तु पर्याप्त आकर्षक बन पड़ी है।

संक्षिप्त कथावस्तु–

इस उपन्यास में सन् १८२० से लेकर सन् १८३७ तक के लखनऊ के नवाबी शासन की घटनाएँ हैं जिनका सम्बन्ध शाहे अवध गाजीउद्दीन हैदर तथा उनके पुत्र नसीरुद्दीन हैदर के शासन काल से है। इन नवाबों के शासन काल में राजमहलों से लेकर सामाजिक जीवन तक में जिस भ्रष्टाचार, अराजकता, आतंक, दमन, कुचक्र, छल प्रपंच आदि का बोलबाला था, कथा की घटनाएं इसी के बीच से विकास प्राप्त करती हैं। नवाबों का नैतिक पतन इस सीमा तक हो चुका था कि उनके बीच में उत्पन्न धोबियों तथा नाइयों के पुत्र नवाबजादों के रूप में गद्दी के अधिकारी घोषित किए जा रहे थे। नवाबों के अंतःपुर कुचक्रों के केन्द्र थे। नवाब गाजीउद्दीन हैदर के कोई औलाद न थी। उधर उनकी पत्नी बादशाह बेगम से उनकी पटती भी न थी। गाजीउद्दीन हैदर को वजीर आगा मीर नवाब को अपने वश में किए हुए था। बादशाह बेगम हर सम्भव प्रयत्न द्वारा आगा मीर को अपदस्थ किए जाने के लिए संकल्पबद्ध थी। असली संघर्ष बादशाह बेगम और आगा मीर के बीच था, गाजीउद्दीन हैदर जिसमें मोहरा बने हुए थे। बादशाह बेगम चाहती थी कि कम से कम गाजीउद्दीन हैदर के बाद राजगद्दी का संचालन उनके हाथ में ही हो। उन्होंने घोषणा करा दी थी कि नवाब गाजीउद्दीन हैदर शीघ्र ही पिता बनने वाले हैं। आगा-मीर बादशाह बेगम की इस चाल को समझता था। उसे मालूम था कि बादशाह बेगम ने जिस दासी के गर्भ से गाजीउद्दीन हैदर को पुत्र सम्बन्धी घोषणा कराई है, वह झूठ है। वह षड्यंत्र को विफल करने का प्रयत्न करता है परन्तु बादशाह बेगम अपनी योजना में सफल होती है। राज्य भर में घोषणा कर दी जाती है कि नवाब गाजीउद्दीन हैदर को पुत्र की प्राप्ति हुई है। बादशाह बेगम अब अपनी अगली योजना बनाती हैं। जिसका लालन-पालन उन्हीं की देख रेख में होता है। तमाम कुचक्रों तथा षड्यंत्रों का सामना करते हुए अंततः वह गाजीउद्दीन हैदर की मृत्यु के बाद इस नवाबजादे को गद्दी का अधिकार दिलाने में सफल होती है। नये नवाब नसीरुद्दीन हैदर के नाम से अवध की

गद्दी पर आसीन होते हैं। इसके पश्चात् की उपन्यास की घटनाएं नसीरुद्दीन हैदर से और उनके शासन काल से जुड़ जाती हैं। नसीरुद्दीन हैदर नवाबी शासन की पुरानी परम्परा को कायम रखते हैं। नाचरंग और शराब में डूबे हुए उनके दिन कटने लगते हैं। राजमहल कुचक्रों का गढ़ बन जाता है। नई नई नारियाँ नवाब के सम्पर्क में आती हैं और नवाब को अपने-अपने जाल में फाँसने का प्रयत्न करती हैं। बादशाह बेगम और आगा मीर का संघर्ष अब भी चलता रहता है। पहले तो नये नवाब बादशाह बेगम के अनुशासन में ही रहते हैं परन्तु बाद को बादशाह बेगम से उनका खटक जाती है और वे बादशाह बेगम को अपमानित भी करते हैं। इधर बादशाह बेगम को नये उत्तराधिकारी की चिंता होती है। बादशाह बेगम फिर नई चाल खेलती हैं और खबर फैला देती हैं कि नये नवाब जल्द ही पिता बनने वाले हैं। नवाब स्वयं इस चाल को समझ जाते हैं परन्तु कुछ कर नहीं पाते। उधर नवाब की प्रमिका दुलारी अपने पुत्र को गद्दी पर बिठाने के लिए तत्पर थी। दोनों नये उत्तराधिकारियों में से नवाब नसीरुद्दीन हैदर का किसी से भी सम्बन्ध न था। वह विवश सब कुछ देखते रहते हैं। अंत में भय, आशंका तथा आतंक से पूर्ण वातावरण में विक्षिप्त होकर नसीरुद्दीन हैदर भी चल बसते हैं। इधर बादशाह बेगम नये उत्तराधिकारी मुन्नाजान को गद्दी पर बिठा देती हैं परन्तु तब तक नवाबी शासन की नींव हिल चुकी थी। अंग्रेजी फौजें महल में घुस आती हैं। सभी लोग बंदी बनाए जाते हैं, तमाम भाग निकलते हैं। अवध की नवाबी पूरी तरह अंग्रेजों के चंगुल में आ जाती है और वे अपने मोहरों को गद्दी पर बिठाने में सफल हो जाते हैं। यह सन् १८५७ का समय था।

कथा की मुख्य धारा यही है। इसके अलावा कुछ प्रासंगिक कथाएं भी हैं जिनका सम्बन्ध भी किसी न किसी रूप में मुख्य कथा से है। एक कथा दुलारीऔर उसके जीवन की है जो कुछ दूर तक स्वतन्त्र रहकर बाद में मुख्यकथा से जुड़ जाती है। दुलारी नवाब की फौज के एक मामूली सिपाही रुस्तम अली की बीबी है। रुस्तम अली नवाबी सेना के साथ अपने गाँव के पास से गुजरता है। उसकी इच्छा घर जाकर परिवार के लोगों से मिलने की होती है। घर में उसकी पत्नी दुलारी के अतिरिक्त उसकी माँ, साथ तथा दो छोटे सौतेले भाई भी थे। वह घर जाता है दुलारी ऊपर ऊपर से प्रसन्न अवश्य होती है परन्तु सचमुच उसे रुस्तम अली से कोई लगाव न था। वह रुस्तम अली के छोटे भाइयों तथा अपने एक अन्य प्रेमी [illegible] को अपने आकर्षण जाल में फँसा कर भाँति-भाँति की प्रेम-लीला रच रही थी। दुलारी अपने [illegible]

पूर्ण युवती थी। अपने यौवन तथा रूप के जाल म लोगों का फांस लेना उसके लिए कोई बडी बात नही थी। जिस रात रुस्तम अली घर पहुँचता है, उसी रात वह अपने नईम के साथ कही भाग जाने को प्रस्तुत थी। उसका षड्यन्त्र असफल होता है। पडास की धार्मिक महिला बीबी मुलाटी उसे रगे हाथ पकडती है और धिक्कारती हैं। दुलारी उनस क्षमा मागती है और अतत उन्हीं के प्रयत्न से नवाब क महल म नौकरी पा जाती है। बादशाह बेगम को नवाब नसीरुद्दीन हैदर के तथाकथित नए उत्तराधिकारी मुन्नाजान के लिए आया की जरूरत थी। बादशाह बेगम दुलारी को अपने पास रख लेती है। अपने चाल चलन और व्यवहार से दुलारी बादशाह बेगम को प्रभावित कर लेती है। परन्तु यही दुलारी बाद में नसीरुद्दीन हैदर पर अपना जाल फेंकती है और उसे फास लेती है। नसीरुद्दीन हैदर उसे मलिकए-जमानिया का खिताब देते हैं। अब बादशाह बेगम और दुलारी के बीच भयानक सघर्ष प्रारम्भ होता है। बादशाह बेगम मुन्नाजान को नया उत्तराधिकारी घोषित करती हैं और दुलारी अपने पुत्र केवाजान को। अतत सबके इरादे पस्त हो जाते हैं और शासन का सूत्र अग्रेजी फौजो के हाथ म चला जाता है।

एक तीसरी कथा राजा शिवनन्दन सिंह ठाकुर और दिग्विजय ब्रह्मचारी की है। कतिपय गौण कथाए और भी हैं। मुख्य कथा और ये सारी गौण कथाएँ जिस एक तथ्य को पूरी तरह से उभार कर सामने रखती हैं उसका सम्बन्ध लखनऊ के नवाबी शासन की ह्रासशील भूमिकाओ तथा उनकी लपेट में सिसकते हुए सामान्य जनता के जीवन से है।

कथावस्तु का विवेचन–

'शतरंज के मोहरे' ऐतिहासिक उपन्यासो की उस कोटि के अन्तर्गत रखा जाने वाला उपन्यास है जिसमे इतिहास तथा कल्पना दोनो की समान स्थिति तथा समान भूमिका होती है। ऐसे उपन्यास की कथावस्तु का निर्माण करते समय लेखक को विशेष सजग रहने की आवश्यकता होती है। उसे ध्यान रखना पडता है कि न तो एतिहासिक तथ्यो की ही इतनी प्रचुरता होने पाये कि उपन्यास की कथावस्तु बोझिल हो उठे और दूसरे, इतिहास की जो घटनायें कथावस्तु मे आयें वे भी इस रूप मे आयें कि उनमे इतिहास के रूखेपन तथा नीरसता के स्थान पर कलात्मक सरसता हो। कथावस्तु की जो घटनायें लेखक की कल्पना की उपज होती हैं एक प्रकार की

सजगता वहाँ भी आवश्यक है। कल्पना का प्रयोग ऐसा हो जो इतिहास की सीमा का अतिक्रमण न करे तथा उसकी संगति में हो। इतिहास तथा कल्पना का सही संतुलन ही ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास को आकर्षक तथा कला की वस्तु बनाता है। 'शतरंज के मोहरे' उपन्यास की कथावस्तु दूर तक ऐतिहासिक उपन्यास की इन शर्तों को पूरा करती है। अवध के इतिहास की नागर जी को गहरी तथा प्रामाणिक जानकारी है। यही कारण है कि कथावस्तु में इतिहास का जो अंश है वह भी अत्यन्त प्रामाणिक है। इस इतिहास की विशेष जानकारी रखते हुये भी कथावस्तु में उसकी नियोजना करते समय नागर जी ने पर्याप्त संयम से काम लिया है। इसीलिए कथावस्तु इतिहास—बोझिल होने से पूरी तरह बच सकी है। लखनऊ के दोनों नवाबों—गाजीउद्दीन हैदर तथा नसीरुद्दीन हैदर—सम्बन्धी इतिवृत्त इतिहास द्वारा अनुमोदित है। उनके सारे क्रिया कलाप, बादशाह बेगम तथा आगा मीर के संघर्ष नवाबों की विलासिता, सनकीपन, निर्वीयता, राजमहल के आन्तरिक कुचक्र, अंग्रेज रेजीडेन्टों की साजिशें—आदि घटनायें ऐतिहासिक आधार पर वर्णित की गई हैं। इतना अवश्य है कि इतिहास के सूत्रों को लेखक ने अपनी कल्पना द्वारा सजीव बनाया है। इन नवाबों के शासन में लखनऊ तथा आस-पास के प्रदेशों के सामाजिक जीवन का चित्रण भी ऐतिहासिक सचाई लिये हुये है। कथा का अधिकांश भाग कल्पना द्वारा आकर्षक बनाये गये ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण है। अवध के इतिहास से सम्बन्धित पुस्तकों, गजेटियरों तथा जनता के बीच प्रचलित किंवदंतियों से सहारा लेते हुए ही लेखक ने इस कार्य को सम्पादित किया है।

कथावस्तु का जो अंश लेखक की कल्पना पर आधारित है वह भी उपन्यास के अंतर्गत इस रूप में नियोजित है कि ऐतिहासिक घटनाओं तथा तथ्यों के बीच पूरी तरह खप गया है। दुलारी से सम्बन्धित कथा का अधिकांश, दिग्विजय सिंह सम्बन्धी इतिवृत्त तथा राजमहलों के आन्तरिक क्रिया-कलापों के वर्णन में अधिकतर कल्पना का योग है। कई छोटी छोटी प्रेमकथायें भी कल्पना की भूमि पर ही प्रस्तुत की गई हैं। परन्तु जैसा कहा गया इतिहास तथा कल्पना दोनों उपन्यास में इस तरह दूध पानी की तरह घुल मिल गई हैं कि उन्हें अलगाना मुश्किल प्रतीत होता है। हम उसे लेखक की समर्थ प्रतिभा का ही प्रमाण मानते हैं।

कथावस्तु का जो पक्ष उपन्यास के अन्तर्गत ज्वलंत रूप में उभरता है

यह उसमें चित्रित ऐतिहासिक यथार्थ है। नागर जी एक सजग यथार्थ द्रष्टा साहित्यकार हैं। अपने सामाजिक उपन्यासों में वे सामाजिक यथार्थ के प्रति जितने सजग रहे हैं, ऐतिहासिक उपन्यासों में भी उन्होंने ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति उतना ही आग्रह प्रदर्शित किया है। नवाबी शासन में सिसकते हुए अवध प्रदेश के जन-जीवन को उभारने की पूरी चेष्टा इसमें हुई है। सामाजिक जीवन में व्याप्त अराजकता तथा ह्रास को उन्होंने निर्ममतापूर्वक उभारा है। उन्होंने नवाबी शासन के इतिहास के बहुत ही मलिन पृष्ठ को पाठक के सामने उद्घाटित किया है और सन् १८५७ की क्रांति के पहले के अवध प्रदेश को उसकी समग्रता में उसकी सारी शक्ति तथा दुर्बलताओं के साथ चित्रित करने में सफलता पाई है। सामन्तवादी व्यवस्था की अनैतिक भूमि पाना, ह्रासशील चरित्र तथा समाज पर उतराती हुई मवाद का इससे अधिक यथार्थ चित्रण कठिनाई से प्राप्त होगा। यह दुष्करतम कार्य नागर जी अपनी सजग ऐतिहासिक यथार्थ दृष्टि के बल पर ही सम्पन्न कर सके हैं। न केवल सामाजिक जीवन की अस्त-व्यस्तता वरन राजमहलों के आन्तरिक जीवन को भी उन्होंने यथार्थ के समग्र पैनेपन के साथ उभारा है। इस प्रकार से उन्होंने अवध के नवाबी शासन की शव परीक्षा की है और उसके रोंगटे खड़े कर देने वाले निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। इस यथार्थ चित्रण में उनकी सवंदना ह्रास के गर्त में सिसकते हुए जन सामान्य को प्राप्त हुई जब कि सामंतों के क्रिया कलाप उनकी घृणा के पात्र बने हैं। स्पष्ट है कि अवध प्रदेश के इतिहास की सारी पुस्तकों में उस युग के जीवन का यह चित्र प्राप्त नहीं हो सकता जो कि अपनी पैनी यथार्थ दृष्टि के बल पर नागर जी ने इस उपन्यास में दिया है। यही नागर जी के ऐतिहासिक यथार्थ की सफलता है। एक ओर नवाबों की विलासिता दूसरी ओर सामान्य जनता का दारिद्र्य, एक ओर नवाबों का अनैतिक जीवन दूसरी ओर उस अनैतिकता से ग्रस्त समाज, एक ओर समाज की शिथिल रूपरेखा, दूसरी ओर चारों ओर व्याप्त अराजकता, छोटे छोटे राजाओं जागीरदारों आदि का नवाबी शासन से स्वतन्त्र होकर अपनी मनमानी करना, बलात्कार हत्या, चोरी डकैती, अंग्रेजों के अत्याचार, सबके सब उपन्यास में पारदर्शी सफाई के साथ वर्णित किये गये हैं। ऐतिहासिक यथार्थ के सजीव चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास और इसकी कथावस्तु नागर जी की प्रसिद्धि के अनुकूल है।

उपन्यास की कथावस्तु महज कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों तथा घटनाओं के विवरण तथा कल्पना की मनोरमता से ही सम्बन्ध नहीं रखती। लेखक के

अन्य उपन्यासों की भांति इस कथावस्तु में भी लेखक ने कुछ समस्यायें उठाई हैं। उसने टूटती हुई सामंतवादी व्यवस्था को उसकी सारी विकृतियों के साथ कथावस्तु में चित्रित किया है और इस प्रकार पाठक को उससे परिचित करा कर उसकी ऐतिहासिक समझ को विकसित किया है। सामंतवादी व्यवस्था में जनसाधारण का जीवन कितना निरीह हो उठा था और वह किस प्रकार नई जीवन-व्यवस्था के लिए उत्सुक था, इसका स्पष्ट परिचय उपन्यास की कथावस्तु हमें देती है। वर्ग विषमता, शोषण और अनाचार के बीच पलते हुए इतिहास का यह चित्रण और उसके प्रति उपन्यासकार का आलोचनात्मक दृष्टिकोण कथावस्तु के अन्तर्गत स्थान स्थान पर अभिव्यक्त हुआ है।

अन्य उपन्यासों की भांति इस उपन्यास में भी नारी जीवन की विवशता को लेखक ने अपनी सम्पूर्ण संवेदना के साथ चित्रित किया है। इस उपन्यास में वेश्यायें हैं, नवाबों की परित्यक्ता बेगमें हैं, उनकी काम-वासना को तृप्ति देने वाली नौकरानियां, बांदियां तथा साधारण घरों से भगा कर लाई गई स्त्रियां हैं, अछूती कुमारियां हैं, शाही फौजों तथा अंग्रेजों की क्रूरता की शिकार और भी न जाने कितनी बेबस नारियां हैं जो मिल जुल कर सामंतवादी व्यवस्था के अन्तर्गत नारी की असहाय स्थिति का उद्घाटन करती हैं। लेखक ने इस शोषित नारी समाज की व्यथा, विवशता तथा असहायता को ऐतिहासिक यथार्थ के एक अंग के रूप में अपने सारे मानवतावादी दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया है। नारी के अनेक रूप इस उपन्यास में उभरे हैं और वे सारे रूप कुल मिला कर नारी जीवन की वेदना तथा निरीहता को ही सामने रखते हैं।

इस उपन्यास की कथावस्तु घटना तथा पात्र बहुल है। मुख्य कथा के अतिरिक्त गौण कथाएं भी हैं परन्तु सबका नियोजन अवध की नवाबी के इस विशिष्ट काल को उसकी सम्पूर्णता में उद्घाटित करने के लिए ही हुआ है। गौण कथाएं स्वतन्त्र रूप से आगे बढ़ती हुई सहज गति से मुख्य कथा का अंग बन जाती हैं। उनमें पर्याप्त रोचकता भी है। राजमहलों की कथा मुख्य कथा है जिसमें दुलारी के अपने जीवन की कथा तथा शेष कथाएं अन्तर्भूत हो गई हैं। दिग्विजय ब्रह्मचारी की कथा अपेक्षाकृत स्वतन्त्र है परन्तु उसकी यह स्वतन्त्रता सोद्देश्य है। विलास तथा अनैतिकता के समूचे वातावरण में दिग्विजय ब्रह्मचारी और कुसुम की कथा ही पावन दीप शिखा की भांति जगमगाती है। कथावस्तु में पाठक को अपने आकर्षण में बांध सकने वाले सारे गुण हैं।

कथावस्तु को लेखक ने और अधिक ग्राह्य बनाने के लिए कतिपय सजीव मार्मिक प्रसगो से युक्त किया है। कथा के ये मार्मिक प्रसग पाठक को दीर्घकाल तक स्मरण रहते हैं। दिग्विजय ब्रह्मचारी और उसकी भतीजी कुल्सुम की कथा का जिक्र हम कर चुके हैं। अपनी अनाथ भतीजी की लिए दिग्विजय ब्रह्मचारी अन्त तक घूमते रहते हैं। कथावस्तु का सबसे मार्मिक प्रसग वह है जहाँ अंग्रेज अफसर तेरह वर्षीय हरिजन बालिका भुलनी के साथ बलात्कार करता है और वह बालिका अन्न जल छोड कर अन्तत अपने प्राणों का त्याग कर देती है। यह समूचा का समूचा प्रसग बहुत मार्मिक है। मार्मिक प्रसगो म एक कडी नवाब नसीरुद्दीन हैदर और कुदसिया बेगम की प्रेमकथा भी जोडती है। कुदसिया बेगम भी नसीरुद्दीन की प्रमिका बनने का सौभाग्य पाती है। कदाचित नवाब की प्रेमिकाओ तथा रखेलो म वही सच्चे हृदय से और निस्वार्थ भाव स नवाब को प्यार करती है। निश्छल हृदय कुदसिया अन्तत राजमहलो के षडयन्त्र का शिकार बनती है। नवाब उसके चरित्र पर सन्देह करता है जिसके फलस्वरूप कुदसिया बगम जहर खाकर आत्महत्या कर लेती है। मरते समय नवाब से कहे गये उसके शब्द उसक प्रति पाठक की सारी सवेदना के अधिकारी बनते हैं। 'मैं तुम्हारी थी तुम्हारी रही और तुम्हारी होकर ही जा रही हू। मरते वक्त खुदा की गवाही मे मैं तुम्हे यकीन दिलाती हू कि मेरे हमल म मेरे साथ जो एक और नन्हा सी जान भी दुनिया देखे बिना ही दुनिया से जा रही है तुम्हारी ही औलाद है। मैं बडी साध से तुम्हारे बच्चे की मा बन रही थी तुमने मरा ख्वाब चूर चूर कर दिया, तुमने अपना मकद्दर मिटा डाला।'[1] कुदसिया की मौत होत ही शोक में पागल नसीरुद्दीन का अपनी नवाबी भूल 'बचाओ बचाओ की आवाज करते हुए सडक पर बेतहाशा भागते हुए जाना एक रोमाचकारी दृश्य उपस्थित करता है। इसी प्रकार के अन्य मार्मिक प्रसग भी कथावस्तु मे हैं जो उसे ग्राह्य बनाते हैं। समग्रत 'शतरज के मोहरे उपन्यास की कथावस्तु इतिहास और कल्पना के सतुलित समन्वय, एतिहासिक यथार्थ क सजीव चित्रण, तत्कालीन सामाजिक जीवन को उसकी सम्पूर्ण सच्चाई के साथ सामने लाने के कारण, नारी जीवन की विवशता के उदघाटन तथा मार्मिक प्रसगो की स्थिति आदि बातो के फलस्वरूप बहुत महत्वपूर्ण हो उठी है। वह एक एसा दर्पण है जिसमें

१—शतरज के मोहरे, पृष्ठ–३१६

नवाबी शासन की सारी सडाध को उसके समूचे परिवेश के साथ सफाई से देखा जा सकता है।

चरित्र सृष्टि–

'शतरज के मोहरे' उपन्यास यद्यपि आकार मे 'बूद और समुद्र' की तुलना में छोटा है परन्तु जहा तक जीवन के बहुविधि चित्रण और उसके प्रति निधि पात्रो की सष्टि का प्रश्न है उसी की भाँति सम्पन्न है। 'बूद और समुद्र' तथा 'शतरज के मोहरे' की चरित्र सष्टि मे एक अन्तर यह है कि यह उपन्यास नागर जी का ऐतिहासिक उपन्यास है और नागर जी की अपनी कल्पना तथा अनुभवो के आधार पर प्रस्तुत किय गये पात्रों क साथ-साथ इसमे कुछ ऐसे पात्र भी हैं जो या तो इतिहास से सम्बद्ध हैं या अपना एतिहासिक व्यक्तित्व रखते हैं। जहाँ तक चरित्र सष्टि की विविधता तथा सजीवता का प्रश्न है 'शतरज के मोहरे' उपन्यास भी नागर जी के अन्य उपन्यासो की भाँति सफलता की अनेक सीमाओ का स्पश करता है। नागर जी की दृष्टिजन्य एक विशेषता जो प्राय उनके समस्त उपन्यासो मे दिखाई पडती हैं, उसका समाज शास्त्रीय होता है। वे जिस युग अथवा काल का चित्रण अपने उपन्यासो मे करते हैं, साहित्यकार के साथ–साथ एक समाज शास्त्री का दृष्टिकोण भी उनमे प्रस्तुत होता है। यही कारण है कि नागर जी प्राय समाज के प्रत्येक वग से पात्रों का चुनाव करते हैं और इन पात्रों के माध्यम स उस युग अथवा काल के समाज का प्रतिनिधि चित्र देते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी उनका प्रयत्न यही रहा है। इस उपन्यास मे उन्होने अवध के नवाबी शासन का एक चित्र प्रस्तुत किया है और स्वभावत यह चित्र सामाजिक जीवन के तत्कालीन परिवेश मे प्रस्तुत हुआ है। इसमें न कवल नवाबो के महलो के ही क्रिया-कलाप हैं वरन् सामाजिक जीवन की भी सजीव झाकियाँ हैं। यही कारण है कि इस उपन्यास में नवाबों तथा सामतवग के सुविधा भोगी पात्रो के साथ-साथ सामान्य जनता के प्रतिनिधि पात्र भी हैं। वस्तुत नागर जी ने पात्रो को एक वगगत आधार पर ही प्रस्तुत किया है, 'तभी पात्र विचारो के पुतले न बनकर विभिन्न समूहों के प्रतिनिधि बन गये हैं।'[१]

१— आलोचना– विश्वम्भरनाथ उपाध्याय।

उपन्यास के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रमुख चरित्र नवाब नसीरुद्दीन हैदर का है। वह नवाब गाजीउद्दीन हैदर का बान्दी से उत्पन्न पुत्र है। उसका चरित्र वस्तुत अनेक प्रकार के विरोधी गुणो का सम्मिलित रूप है। नवाबी गद्दी पर बैठते ही वह राजमहलो के आतरिक षडयत्रो और कुचक्रो मे इस तरह घिर जाता है कि उनसे छुटकारा नही प्राप्त कर पाता। वस्तुत राज महलो की पारस्परिक स्पर्धा, षडयन्त्र तथा कुचक्र उसे उसी समय भोगने पडते हैं जब वह गद्दी पर बैठा भी न था। एक ओर पिता नवाब गाजीउद्दीन और मत्री आगा मीर दूसरी ओर बादशाह बेगम, सब उसे अपने प्रभाव मे रखना चाहते हैं और दुर्बल व्यक्तित्व वाला नसीरुद्दीन तय नही कर पाता कि वह क्या करे। प्रारभ मे तो वह बादशाह बेगम के प्रभाव में रहता है पर त जवान होते ही उच्छृखल हो जाता है। मानसिक कशमकश से छुटकारा पाने के लिये वह शराब और नाचरग मे डूबता चला जाता है। नवाब बनने के बाद स्वतत्र होने की उसकी इच्छा और भी बलवती हो उठती है। जब दुलारी महल मे प्रवेश करती है और उसे अपने आकर्षण मे बाध लेती है तब एक ऐसा स्थिति भी आती है कि वह बादशाह बेगम के प्रति विद्रोही तक हो उठता है परन्तु अब वह दुलारी के इगितो पर नाचने लगता है। उसके चरित्र की सबसे प्रधान प्रवृत्ति उसकी यही मानसिक अस्थिरता है। वह लाख स्वतन्त्र होने का निर्णय करता है किन्तु उसकी नकेल सदैव ही किसी दूसरे के हाथ मे रहती है वह बादशाह बेगम हो वजीर आगामीर हो दुलारी हो अथवा और कोई। मानसिक अशाति से छुटकारा पाने के लिए ही वह विलास लीलाओ मे डूबता है। विलास जर्जर व्यक्तित्व उसके चरित्र की दूसरी प्रधान प्रवृत्ति है। सत्ता का सघर्ष उसे यहा तक पीडित करता है कि वह घोर सनकी तथा शक्की बन जाता है। उसे किसी के प्रति भी विश्वास नही रह जाता। हर व्यक्ति को शका की दृष्टि से देखना हर बात पर सन्देह करना उसकी प्रकृति बन जाती है। वह सब कहा आना-जाना तक बद कर देता है। उसकी यही शकालु वृत्ति कमसिया बेगम की—जो उसे सच्चे हृदय से चाहती थी—आत्महत्या का कारण बनती है। जब उसे असली रहस्य का पता चलता है, वह विक्षिप्त हो उठता है। यह आघात उसके जीवन का सबसे बडा आघात था। 'बचाओ! बचाओ!' चिल्लाता हुआ महल से निकल कर वह सडक पर तीन मील तक बेतहाशा भागता चला जाता है और घुड दौड के मैदान के पास बनी ख्वाजा खान की कोठरी मे घुसकर बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोने लगता है बादशाह समाज का आदर्श पुरुष था, ईश्वर का प्रतिनिधि था। बादशाह मनुष्य भी था, कमजोर, कमअक्ल,

बेपनाह था।"[1] जनता, पुलिस, फौज नौकर-चाकर सब उसके पीछे भागने लगते हैं। सारे शहर में दहशत की लहर दौड़ जाती है। कुदसिया की मौत उसके हृदय में सच्चे पश्चात्ताप को जन्म देती है और यही पश्चात्ताप अंतत उसे मार भी डालता है।

नसीरुद्दीन हैदर का चरित्र लड़खड़ाते हुए अवध के नवाबी शासन को अपने कमजोर बाजुओं से संभालने वाले व्यक्ति का चरित्र है। असफलताओं का वह पुंजीभूत रूप है। वह अवध के उन विलास जर्जर दुर्बल नवाबों का प्रतिनिधित्व करता है जिनकी नियति शतरंज के मोहरों से अधिक कुछ न थी और जिनके कारण ही अंग्रेज सरलता से अवध के नवाबी शासन पर हावी हो जाते हैं। उसका चरित्र परिस्थितियों के प्रवाह में डूबने-उतराने वाले एक सामान्य और दुर्बल मनोवृत्ति से युक्त व्यक्ति का चरित्र है, परिस्थितियों के प्रवाह में वह निरंतर बहता रहता है।

परन्तु उसके चरित्र के कुछ उज्ज्वल पक्ष भी हैं। बादशाह बेगम के प्रति उसके हृदय में अपार श्रद्धा की भावना है। उसके विरुद्ध वह जो कुछ करता है, दूसरों के उकसावे से ही करता है। अंत में वह उससे क्षमा भी मांगता है। उसके स्वभाव में बच्चों जैसी सरलता तथा हठ है। गरीबों और साधारण जन के प्रति उसके हृदय में सहानुभूति के भाव हैं। वह जब तब उनकी स्थिति का निरीक्षण करता है और उन्हें सुविधायें देने का प्रयत्न करता है। कुदसिया की मृत्यु के पश्चात उसके चरित्र में एक नया मोड़ आता है और वह सारे वैभव के प्रति विरक्त हो उठता है।

लेखक ने उसके मानसिक तनाव, कशमकश, उद्विग्न तथा शंकाकुल मनःस्थिति के कतिपय बड़े ही सजीव चित्र दिये हैं। पश्चात्ताप, भय और आतंक के भाव अंत में उसे एकदम अकेला और निस्सहाय बना देते हैं। अकेलेपन की यह भूमिका उसे अपने समूचे जीवन पर दृष्टिपात करने को प्रेरित करती है[2] और इसी भूमिका में उसके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष भी उभरते हैं। इसी

१— शतरंज के मोहरे, पृ० ३१२।

२— उम्र छोटी पायी मगर तजुर्बा खूब मिला। बादशाह के घर पैदा होकर भी लावारिस रहा, एक सल्तनत के तख्तोताज का मालिक होकर भी फिरंगियों का गुलाम रहा। मेरा कोई अपना न हुआ, मैं किसी का न हो सका। शतरंज के मोहरे—पृ० ३८८–३८९।

समय वह कुलसुम की रक्षा भी करता है और उसे 'बेटी' कहकर पुकारता है। परन्तु जैसे ही उसे अपनी वास्तविक स्थिति का बोध होता है वह एकदम परेशान हो जाता है। कुलसुम से हुआ उसका वार्तालाप उसके चरित्र की बड़ी मार्मिक भूमिकाओं को स्पष्ट करता है। ' नहीं खुदा नहीं है, खुदा झूठ है, खुदा मर चुका है—खैर खुदा न सही मैं हूं, मुझे कहीं से तसल्ली मिले न मिले मगर मैं तेरी जिंदगी की तस्कीन बनूंगा बेटी। परन्तु दूसरे ही क्षण वह कुलसुम से पुनः कहता है "मैं जो कुछ कह रहा हूं झूठ कह रहा हूं। मुझमें किसी की भी हिफाजत करने की ताकत नहीं। मैं खुद अपनी ही हिफाजत नहीं कर सकता। ये शाही महल किसी की भी हिफाजत नहीं कर सकते। नहीं मैं तुझे यहां नहीं रखूंगा मेरी बेटी। पर कहाँ रखूं मैं ? मुझे कोई भी ऐसा घर नहीं दिखलाई देता जिसमें इनसानियत की एक किरण हो, जिसके दिल में खुदा रहता हो। यहाँ तो हरसू शैतान ही का बोलबाला है। और अगर तू अपनी हिफाजत चाहती हो तो शैतान के आगे घुटने टेक दे। लोग अपने प्यारों को खुदा को सौंपते हैं। मैं तुझे शैतान को सौंपता हूं बेटी और अपने आप को भी।"[१]

समग्रतः नसीरुद्दीन हैदर का चरित्र विलास-जर्जर नवाबों का प्रतिनिधि चरित्र होने के बावजूद कतिपय व्यक्तिगत विशेषताओं से भी सम्पन्न है। तमाम दुर्बलताओं के साथ उसमें कुछ ऐसे गुण भी हैं जो अनुकूल परिस्थितियों में उसके चरित्र को बहुत ऊंचा उठा सकते थे। वह विलास-जर्जर नवाब है और एक सहज सामान्य मनुष्य भी। उसके चरित्र का अंतर्द्वन्द्व कला की दृष्टि से बहुत मार्मिक है। नागर जी की लेखनी से उत्पन्न वह एक अत्यन्त सजीव तथा मार्मिक चरित्र है।

नवाब गाजीउद्दीन हैदर का चरित्र भी अवध के नवाबों का प्रतिनिधि चरित्र है। राजमहलों के कुचक्र सत्ता का संघर्ष उसे भी पीडित करता है और वह भी शतरंज के मोहरे से अधिक कुछ नहीं बन पाता। वजीर आगा मीर तथा पत्नी बादशाह बेगम के बीच चलने वाले सत्ता-संघर्ष में वह महज गोट बन कर रह जाता है। पत्नी तथा पुत्र दोनों उसके विरोधी बन जाते हैं और वह खुद आगा मीर के हाथों का खिलौना। वैसे उसके चरित्र में विरोधी गुणों

१— शतरंज के मोहरे– पृ० ३२२।

का सम्मिश्रण है। नाच रग और शराब म उसकी भी रुचि है परन्तु व्यक्तिग वह एक भला इन्सान है। पारिवारिक जीवन की अशाति उसे व्याकुल कर देती है। उसे अपनी इज्जत का भी बहुत ध्यान है। उसके पोते को लेकर नगर भर मे शमनाक चर्चा है, और वह इस चर्चा से परेशान है। बादी सुलखिया के पूछने पर कि हुजूर को किस बात का डर है। वह उत्तर देता है "शरीफ इन्सान दुनिया में सबसे ज्यादा अपनी बेआबरुई से डरता है।"[1] स्वतन्त्र निणय लेने का वह भी प्रयत्न करता है परन्तु विवश हो जाता है। एक स्थिति मे तो वह अपनी बादशाहत तक से विरक्त हो उठता है। पुन सुलखिया से अपने मन की पीडा व्यक्त करता हुआ वह कहता है 'मन को दोस्त बनाना ही पडता है। दिल का दिल से ही राहत है वर्ना इन्सान बेसहारा हो जाये मैं खामोश मन नही चाहता, बोलता मन चाहता हू। मैं बादशाह का मन नही चाहता हू, इन्सान का मन चाहता हू।'[2] अपने एकाकी जीवन से वह इतना दुखी है कि एक स्थान पर ईश्वर से प्राथना करता हुआ कहता है "या खुदा एक को मरा बना या खुदा छाव दे। परवर दिगार मेरे गुनाहों पर रहम।"[3] वस्तुत वह स्वाथ और छलकपट से दूर एक निश्छल हृदय का आकांक्षी है। बादशाहत के षडयन्त्र और कुचक्र ही उसे सामान्य मनुष्यता की ओर प्रेरित करते हैं। नसीरुद्दीन की तरह वह भी पाठक की दया, करुणा और सवेदना का ही पात्र है। लेखक ने उसक चरित्र चित्रण मे भी मनोवज्ञानिक सूझ–बूझ का परिचय दिया है। उसका चरित्र भी अत्यत मार्मिक और सजीव है।

पुरुष पात्रो में अगला महत्वपूण चरित्र वजीर आगा मीर का है। वह अहकारी तथा महत्वाकाक्षी है। छल-कपट स्वाथ तथा कूटिनीति म उसका कोई सानी नही। बादशाह बेगम से उसकी स्पधा अत तक चलती है। आगा मीर मे कुछ आकषक विशषताए भी हैं। वह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि वाला है उसकी बातचीत का ढग इतना प्रभावशाली है कि एक साधारण खानशामा स वह वजीर के पद तक पहुच जाता है। उसकी सगठन शक्ति अपूव है जिसकी सराहना अग्रज तक करत हैं। अवसर से लाभ उठाना भी वह भली-भाति जानता

१— शतरज के मोहरे, प० ७०।

२— वही– पृ० ६९।

३— वही– प० ६९।

है। जनता उनसे घृणा करती है परन्तु समूचे अवध प्रदेश पर उसका एक छत्र प्रभाव है। लेखक के अनुसार 'लम्बा चौड़ा माला डुजम, बाज की चोंच जसी नाक वाला रूखे मिजाज और कुशाग्र पनी बुद्धि वाला यह व्यक्ति अवध का सर्वे सर्वा था।'[१]

दिग्विजय ब्रह्मचारी का चरित्र भी उपन्यास का एक बहुत आकर्षक चरित्र है। व एक उच्च कुलीन क्षत्रिय है और एक क्षत्रिय क सारे गुण उनमे हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यत तेजस्वी और प्रभावशाली है। समूचे उपन्यास मे दिग्विजय ब्रह्मचारी संघर्षशील परिस्थितियों के बीच से ही गुजरते हुए दिखाई पड़ते हैं। जीवन के कड़ुवे-मीठे तमाम अनुभव उन्हे प्राप्त होते हैं। उनके साथ विश्वासघात भी होता है और जनता का सच्चा सहयोग भी उन्हे प्राप्त होता है। मिली जुली परिस्थितियों के बीच लेखक ने उनके चरित्र के अन्तर्द्वन्द्व को बड़ी सजीवता से व्यक्त किया है। वे दूसरो की भलाई करते हैं परन्तु बदले मे उन्हे धोखा मिलता है। वे यहाँ तक विचलित हो जाते हैं कि ईश्वर पर उनकी आस्था टूटती नजर आती है। 'ऐसा क्यो हुआ ?—पुण्य का फल पाप क्यो ? विश्वास का फल विश्वासघात क्यो ?—हे सूर्य नारायण ! हे बजरंग, तुम झूठ हो। ईश्वर नही है प्रेम नहीं है आस्था नही है—सब मिथ्या है, मिथ्या है।'[२] अपनी मुस्लिम भतीजी कुलसुम के प्रति उनके हृदय मे अपार स्नेह है। उसकी रक्षा के लिए वे न जाने कहाँ कहाँ भटकते फिरते हैं। उनके दिन-रात घोड़े की पीठ पर ही व्यतीत होते हैं। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व के कारण आस-पास के छोटे छोटे सामन्त, जमींदार सब अंग्रेजो के विरुद्ध उन्हे सहयोग देते हैं। वर्ण जाति-पाँति और धर्म इन सबसे अधिक उनका विश्वास मनुष्य और मानवता पर है। तेरह वर्षीया हरिजन बालिका मुन्नी पर जब एक अंग्रेज अफसर बलात्कार करता है तो उनका क्षत्रिय रक्त खौल उठता है और वे गाँव वालो का संगठित कर अंग्रेजो के विरुद्ध शस्त्र उठा लेते हैं। सामाजिक विषमता, अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध उनके मन मे तीखी घृणा है। गाँव वालो को वे उद्बोधित करते हुए कहते हैं 'धरती को छुड़ाय सकत है रे ? या हमारि आय, राम जी की आय। औ जब लग हम ठाढ़ हयि सीना फुलाय के चलौ। अस निसाचरी अन्याय कोउ के न सहा जाई।'[३] मृत्यु के लिए तड़पती हुई

१— शतरंज के मोहरे— पृ० ५९।
२— शतरंज के मोहरे— पृ० २०६।
३— वही— पृ० १४६।

भुलनी को देखकर उनकी करुणा और ममत्व जाग उठता है। वे नईम से भुलनी को अपनाने के लिए कहते हैं— "विचार बड़ा होता है बटा, आदमी बड़ा छोटा नहीं होता। भुलनी का बचाना चाहिये, पुण्यात्मा या निर्बल जीव की रक्षा करना सबसे बड़ा धरम है।"[1] वस्तुत ब्रह्मचारी का चरित्र संघर्षों की आग में तप कर निखरता रहता है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में उनका योगी रूप ही अधिक उभरता है। दुश्मनों के षड्यन्त्र से उनकी भतीजी कुसुम गायब कर दी जाती है और वे विह्वल हो उठते हैं। उन्हें जीवन से विरक्ति हो जाती है। सूफी संत कौड़ाशाह से मुलाकात के बाद वे पूर्णत साधक बन जाते हैं।

ब्रह्मचारी जी का चरित्र मानवतावादी चरित्र है। सम्प्रदाय, धर्म वर्ग और वर्णगत कोई भेद उन्हें मान्य नहीं। अन्याय, उत्पीड़न तथा अनाचार के विरुद्ध उनका चरित्र अपनी समूची ज्वाला के साथ धधकता है। वे यहाँ पर अपने क्षत्रियत्व को सार्थकता देते हैं। जीवन की परिस्थितियाँ उनके मानवतावादी विश्वासों को जब-तब तोड़ती हैं परन्तु मनुष्यता के उज्ज्वल भविष्य के प्रति उनकी आस्था कम नहीं होती। ओज और शांति दोनों का अपूर्व मिश्रण है उनका चरित्र। उनके चरित्र में एक साधक जैसी तेजस्विता एक ब्राह्मण जैसी पवित्रता, सादगी, सरलता तथा शांति एक क्षत्रिय जैसी वीरता तथा प्रचण्डता तथा ब्रह्मचारी होने के बावजूद एक पिता जैसी वत्सलता है। वे उपन्यास के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र हैं।

पुरुष पात्रों में नईम का चरित्र भी पर्याप्त आकर्षक है। नईम का चरित्र एक विकासशील चरित्र है और इस विकास के मूल में परिस्थितियों का प्रमुख हाथ है। 'गोरे चिट्टे लम्बे, भूरी सुनहरी दाढ़ी-मूछों और बालों वाले इस खूबसूरत नौजवान का परिचय सर्वप्रथम उपन्यास के प्रारम्भ में दुलारी के प्रेमी के रूप में होता है। अपने व्यक्तिगत जीवन में वह अनाथ है फिर भी अपनी आन पर मरमिटने वाला व्यक्ति है। अपने अपमान को वह कहीं भी सहन नहीं कर सकता। इसीलिए जब उसके प्रणय-सम्बन्ध का रहस्योद्घाटन होता है, तो वह रुस्तमनगर से भाग जाता है। परिस्थितियाँ उसे दर-ब-दर भटकाती रहती हैं परन्तु जीवन के ऐसे अनुभव उसे प्राप्त होते हैं कि वह पहले से बहुत

१— शतरंज के मोहरे – पृ० १५७।

कुछ बदल जाता है। दिग्विजय ब्रह्मचारी से उसका सम्बन्ध उसके चरित्र की कई विशेषताओं को स्पष्ट करता है। भलनी के प्रति होने वाला अत्याचार उसके हृदय को भी विक्षुब्ध कर देता है। भुलनी का आदर्श त्याग तो उसकी जीवन धारा को ही बदल देता है। ब्रह्मचारी जी के कहने पर वह उस हिन्दू हरिजन बालिका भुलनी से विवाह तक करने को प्रस्तुत हो जाता है किन्तु भुलनी का प्रायश्चित उसे भुलनी का पति तो नहीं बनने देता भुलनी द्वारा प्रस्तुत सतीत्व का आदर्श उसे एक नई ज्योति अवश्य देता है। भुलनी के समक्ष दुलारी उसे अत्यंत तुच्छ मालूम पड़ती है। दुलारी के प्रति उसका सारा प्रेम भुलनी की इस त्यागमयी ज्योति में जलकर राख हो जाता है। वह अपना विवाह करके एक सतुलित जीवन बिताने लगता है। इसी बीच पुनः जब उसकी भेंट मलिकाए – जमानियाँ दुलारी से है और दुलारी उसके समक्ष फिर अपने प्रणय का प्रस्ताव करती है तो नईम उसे ठुकरा देता है। जब दुलारी उस राजमहलों के वैभव का प्रलोभन देती है तो इसकी उस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है बल्कि वह बहुत ही सहज भाव में उससे कहता है— 'उसकी जरूरत नहीं, मुझे यकीन है कि तुम एक दिन जरूर खुदा को याद करोगी और उस हालत में मैं जरूर तुम्हारी खिदमत भी अंजाम दे सकूगा मगर आज नहीं। मुबारक हो तुम्हें यह ख्वाब यह शानो-शौकत, ये बादशाही। तुम्हारी बड़ी इनायत होगी अगर मुझे मेरा मड़या में भिजवा दोगी।'' दुलारी की धमकियों के आगे भी वह भयभीत नहीं होता। प्रारम्भ का एक सामान्य प्रेमी नईम उपन्यास के अन्त तक अपनी मनुष्यता से पाठक को प्रभावित कर लेता है। वह वर्गीय भावना से अछूता और साम्प्रदायिकता से परे रहने वाला चरित्र है। जीवन की अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच से विकसित होने वाला उसका चरित्र एक प्रभावशील चरित्र है।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त अन्य गौण पात्र भी हैं जो किसी न किसी रूप में या तो मूल कथा से सम्बन्धित है या अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व लिए हुए हैं। इनमें रुस्तम अली और माता दीन का चरित्र किसी हद तक पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल है। रुस्तम अली दुलारी का पति है उसे अपनी पत्नी से प्रेम है किन्तु पग-पग पर वह दुलारी से विश्वासघात पाता है। यहाँ तक कि दुलारी अततः अपने स्वार्थों की सफलता हेतु उसे कत्ल तक करवा

१— शतरज के मोहरे— पृ० २२९।

देती है। उपन्यास के अन्त मे ब्रह्मचारी जी से उसकी वार्ता उसकी मार्मिक दशा पर प्रकाश डालती है। यहा वह अत्यत मार्मिक ही नही, पाठकों के हृदय मे उसके प्रति करुणा के भाव भी उत्पन्न करती है। उपन्यास के अन्त मे वह मात्र एक नरकंकाल सा शेष बचता है। वह ब्रह्मचारी से पूछता है – "अच्छा बाबा, ये दुनिया क्या सदा यू ही चलेगी ? कमजोर यू ही पिसते रहेंगे और शहजोर–" ब्रह्मचारी उत्तर देते हैं " रात के बाद दिन अवश्य आता है। मैं उसी उजाले की बाट में बैठा हू।" सन्यासी भविष्य मे आते प्रकाश को देख रहा था, नरककाल के टूटे मन के चारो ओर घना अधेरा ही अधेरा था। अपनी पत्नी द्वारा अपमानित तथा सताये गए पति के रूप मे उसका चित्र अत्यत सजीवता से उभरा है। मातादीन का चरित्र मात्र एक छोटे से प्रसग द्वारा पाठको का अपनी ओर आकर्षित करने मे सफल होता है। वह भुलनी का होने वाला पति है। भुल्नी के साथ स्मिथ द्वारा किए गए अन्याय से उसका खून खौल उठता है और वह स्मिथ की हत्या करके अपना बदला लेता है, यद्यपि इस क्रम में अंग्रेजों की गोलिया उसे भी भून देती हैं। जहाँ एक ओर रुस्तम अली अपनी पत्नी द्वारा तिरस्कृत होकर भटकता फिरता है, वहा मातादीन अपनी होने वाली पत्नी पर किए गए अन्याय के विरुद्ध सघर्ष करता हुआ अपनी आहुति दे देता है। ये दोनो चरित्र अपने आप में अत्यत मार्मिक बन पडे हैं। कवि बेनी और सूफी सत कौडाशाह के चरित्र भी अपनी कतिपय विशिष्टिताओ के फलस्वरूप पाठकों को आकर्षित करते हैं। कवि बेनो एक स्थल पर अपनी सहज जातीय भूमिका के साथ आये हैं जो अपने वक्तव्य द्वारा बडे ही पने ढग से नवाबी व्यवस्था पर व्यग्य करते हैं। उनका चरित्र एक मस्तमौला कवि का चरित्र है। कौडा शाह एक सूफी सत हैं। "हिनाई दाढी सुरमगी आखों और इन्न से चुचुआती हिनाई रगी जुल्फों वाले" हजरत कौडा शाह उस समय के एक बडी पहुच वाले खरे साधक हैं। वे एक मौजी किस्म के मस्तमौला सत हैं। अपनी मौजवश वे किसी के यहा भी जा सकते हैं और हो सकता है लाख बुलाने पर भी वे किसी के यहाँ न जायँ। उन पर किसी का बस नही। उनके लिये गरीब अमीर सब बराबर हैं, किसी को भी दुःख दर्द या गमी होती, वहा कौडा शाह दौड पडते हैं। वे सारे दोषो का कारण अपने माशूक' की कठोरता को बत लाते हैं। उनका प्रियतम ईश्वर है वे प्रियतम को कोसते हुए भी आनद का अनुभव करते हैं और उसका गुणगान करते हुए भी। लोग उनकी दुआओ पर विश्वास करते हैं। समग्रत वे सूफी साधको का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इन पात्रो के अतिरिक्त लाल कुअर सिंह, चौधरी मज्जू खाँ, जमींदार–

सजर गी, शिवनन्दन सिंह, नसू खां, नासिम इमामुद्दीन खान सिंह, फजल-अली, महता स । शा रोशनुद्दौला आदि एस पात्र हैं जिनका चरित्र सामताय व्यवस्था व राजमहलों के क्रिया-कलापों के क्षेत्र में शिथिलता प्रमाणा है। इनमें अधिकांश पात्र सामन्तीय व्यवस्था तथा उसकी विकृतियों से ही सम्बन्धित हैं।

समग्रत नागर जी की पुरुष पात्र सृष्टि अत्यंत विस्तृत और सजीव है।

स्त्री पात्रों में सबसे प्रमुख चरित्र दुलारी का है। दुलारी एक साधारण साईस दराम अली की पत्नी है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही दुलारी का चरित्र उसकी यहां मनोवृत्ति का स्पष्ट कर देता है। वह एक चंचल स्त्री है। उपन्यास का प्रारम्भ उसके प्रणय सम्बन्धों को ही स्पष्ट करता है। विवाहित होने पर भी उस अपने सतीत्व का कोई मोह नहीं। अपने पति के प्रति वह विश्वासघातिनी है। एक ओर वह अपने देवरा को अपने अनुराग पाश में बाँध हुए है दूसरी ओर नवाब के बावर्ची नईम को भी। वह एक रूपगर्विता नारी है, अपनी सुन्दरता पर उसे गर्व ही नहीं है बल्कि उसे वह सुन्दरता को सबसे बड़ा अस्त्र समझती है। और अंततः उसका यही गार्वयुक्त माध्य उसे एक सामान्य नारी से मल्लिकाए-जमानिया के पद पर पहुंचा देता है।

मल्लिकाए-जमानिया के रूप में उसका चरित्र तरह साजिशों तथा उलझनों के मध्य से गुजरता है। उसका यह रूप उस राजमहलों के छल-कपट और स्वार्थ भरे वातावरण में जा जाता है जहाँ वह पूर्णतः राजनीति के मध्य ही घिर जाती है। उसकी महत्वाकांक्षा यहां तक बढ़ती है कि वह अपनी आश्रय दात्री बादशाह बेगम तक को नीचा दिखाने के लिए प्रस्तुत होती है, यहाँ तक कि उनकी शत्रु तक बन जाती है। उसकी नीचता यहां तक सक्रिय होती कि वह अपने पति को, जिसे वह अपनी सफलता का राह में रोड़ा समझती है कैद करवा कर जेल में डलवा देती है। पति के प्रति उसका यह अन्याय एक ओर तो उसकी क्रूरता तथा नीचता को स्पष्ट कर उसके चरित्र को कमजोर तथा हल्का बनाता है दूसरी ओर यह पाठकों की दृष्टि में उसे घृणा का पात्र भी बनाता है। बस एक साधारण साईस की पत्नी से मल्लिकाए जमानिया का पद प्राप्त करना अपने आप में कम महत्वपूर्ण नहीं। यह उसके व्यक्तित्व की संघर्षशील क्षमताओं का सूचक है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध मे उसका चरित्र पूर्ण रूप से राजमहलों के कुचक्रों और स्वार्थों के बीच ही पनपता है। कभी वह बादशाह बेगम से संघर्षरत है, तो कभी आगा मीर से।

यहा तक कि वह नवाब पर दवाव डालकर अपने बेटे को उसका उत्तराधिकारी-बनाने का भी प्रयास करती है। समग्रत उसका चरित्र भयानक घात प्रति-घातो से ग्रस्त चरित्र है। उसमे सौंदय है किन्तु वह बदचलन है। वह निधन है फिर भी महत्वाकाक्षिणी, वह अनपढ है फिर भी राजनीतिक दावपेच तथा कूटनीति मे बडे-बडे उस्तादों को भी परास्त करने वाली। उसके चरित्र की यही भूमिकाए उसे नाना सघर्षो मे डालती हैं और उनमे डूबते-उतराते सफलता की बनी से बडी सीमा का स्पश करते हुये भी अततः वह परिस्थितियो के महासागर म विलीन हो जाती है।

बादशाह बेगम का चरित्र आदि से अन्त तक राजमहलो के कुचक्रो तथा षडयन्त्रो से घिरा चरित्र है। आगा मीर उनका सबसे बडा प्रतिद्वन्द्वी है। उपन्यास मे बादशाह बेगम के चरित्र के दो रूप प्रत्यक्ष हुए हैं। एक ओर वे एक धार्मिक और नियम सयम बद्ध महिला हैं, तो दूसरी ओर स्वार्थी कुचकी, अहकारिणी और महत्वाकाक्षिणी भी। एक ओर यदि उनमे मा की सी ममता है, तो दूसरी ओर वे क्रूर तथा अत्याचारिणी भी हैं। उपन्यास में उनके चरित्र के दोनो रूप अत्यन्त सजीवता से उभरे हैं।

स्त्री-पात्रो मे सर्वाधिक मार्मिक और पाठको के हृदय म अमिट छाप छोडने वाले चरित्र कुदसिया बेगम और मुलनी के है। इन दोनो ही चरित्रो की भूमिका दुखान्त है। कुदसिया बेगम उर्फ बिस्मिल्लाह बानू एक सामान्य परन्तु सुन्दर तवायफ है। नाक नक्शे, चाल ढाल, सलीका-समझ हर तरह स सधी हुई, पढी-लिखी, कत्थक नाच के हुनर की चतुर जानकार तथा फारसी की गजलो की एक अच्छी गायिका भी है। उसका नसीब उसे राज महलो म ले जाता है जहाँ वह अपनी सुन्दरता और गुणो से बादशाह नसीरुद्दीन को अपने आकर्षण पाश मे बाध लेती है। परन्तु उसका प्रेम साधारण भूमिका का न होकर विशिष्ट है। वह सच्चे हृदय से बादशाह को प्रेम करती है और एक प्रकार से बादशाह के असन्तुलन को बहुत कुछ दूर कर देती है। राजमहलो के कुचक्रो तथा राजनीति से वह बिल्कुल अनभिज्ञ है और उसकी यह अनभिज्ञता अन्ततः उसकी आत्म-हत्या का कारण बनती है। अपने ऊपर लगाये गये बदचलनी और विश्वासघात के आरोप तथा अपने प्रति बादशाह के सन्देह का प्रायश्चित वह आत्म-हत्या द्वारा करती है। बादशाह नसीरुद्दीन के बेटे को अपने गर्भ म लिये हुए अपने प्राण दे देती है। मृत्यु के पूर्व बाद-शाह से कहे गये उसके वक्तव्य से उसके चरित्र की सहजता तथा निर्दोष भूमिका स्पष्ट हो जाती है।

कुदसिया बेगम की ही तरह अपनी जिंदगी का बलिदान कर देने वाला दूसरा चरित्र गज्जू बँसोर की तेरह वर्षीया पुत्री भुल्नी का है। भुलनी पर अंग्रेज अफसर स्मिथ द्वारा बलात्कार किया जाता है और भुलनी अपने ऊपर किये गये इस अत्याचार का प्रायश्चित अपने प्राण देकर करती है। बिरादरी से तिरस्कृत भुलनी, बिना अन्न-जल लिये मृत्यु के लिए तड़पती रहती है। नईम उससे विवाह करने को प्रस्तुत है परन्तु धर्षिता होने के बाद वह अपने जीवन की कोई सार्थकता नहीं समझती। दिग्विजय ब्रह्मचारी से वह कहती है "जमराज से मोर बियाहु होइ चुका महराज। जियै के बदे अपन धरम न छाड़ब।"[1] वह नईम से प्रार्थना करती है कि वह उसे जीवित ही गंगा में जल-समाधि दे दे। उसकी यह इच्छा पूरी होती है। थोड़ी ही देर के लिए उपन्यास में आया भुल्नी का चरित्र अपने त्याग संकल्प, दृढ़ता एवं बलिदान से पाठक की समस्त संवेदना जीत लेता है।

कुदसिया बेगम और भुलनी के कथा प्रसंगों के मध्य पनपने वाला एक छोटा सा चरित्र कुल्सुम का है। वह दिग्विजय ब्रह्मचारी के मुसलमान भाई की पुत्री है और बचपन में ही अनाथ हो जाती है। उसकी रक्षा का भार ब्रह्मचारी लेते हैं। उसका सम्बन्ध उपन्यास के अनेक पात्रों से होता है। वह नईम की धर्म-बहन, कुदसिया की बहन तथा भुल्नी की सखी बनती है। पाँच-छः वर्ष की अवस्था में ही उस जिन्दगी की कटु परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। उसका अधिकांश समय ब्रह्मचारी के साथ घोड़े की पीठ पर ही गुजरता है। जिन्दगी की ये विषम परिस्थितियाँ इतनी छोटी अवस्था में ही उसके चरित्र को सहनशीलता निडरता तथा साहस से भर देती हैं। गूजरों द्वारा उसका अपहरण किया जाता है परन्तु उसके बीच भी वह अपने निपट साहस का परिचय देती है। उसके चरित्र के ये गुण अपने आप में अत्यन्त सजीव हैं।

इन प्रमुख नारी पात्रों के अतिरिक्त कतिपय अन्य गौण नारी पात्र भी हैं जो अपनी छोटी-छोटी भूमिकायें लिये हुये या तो अपने आप में स्वतन्त्र हैं या मूलकथा से सम्बद्ध होकर उसे गतिशील बनाते हैं। इस चरित्रों में बीबी मुलाटी का चरित्र है जो एक धार्मिक महिला हैं और बादशाह बेगम की विशेष सलाहकार तथा कृपा-पात्री भी। ज्योतिष विद्या पर उनका पूर्ण

१– शतरंज के मोहरे – पृ० १६० ।

विश्वास है और उसकी वे अच्छी ज्ञाता भी हैं। इनके अतिरिक्त गफूरन बुआ, धनिया, वहीदन, दलवी आदि कतिपय ऐसे नारी-पात्र हैं जिनका चरित्र राजमहलो के क्रिया कलापो के इद गिद ही गतिशील है।

समग्रत 'शतरज के मोहरे' उप यास की सम्पूण चरित्र सष्टि नागर जी द्वारा अत्य त सजीवता स एक विस्तत भूमिका पर निर्मित हुई है। इसमे सामा य जनता स लेकर उच्च सामतीय वर्गों तक के पात्र अपनी विभिन्न मनोवत्तिया लिय हुये प्रत्यक्ष हुए हैं। यह नागर जी की कुशल तथा पैनी लेखनी का ही परिणाम है कि उनकी यह बहुरगी सष्टि अत्य त सफल ही नही, कतिपय अविस्मरणीय चरित्रो को भी लिये हुये है।

लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास मे अवध के ह्रासशील नवाबी शासन के माध्यम स सामतवर्गो के पतन को प्रत्यक्ष किया है और वस्तुत यही उसका प्रमुख उद्देश्य भी रहा है। अपने उस उद्देश्य के द्वारा नागर जी न केवल तत्कालीन साम तीय व्यवस्था की असलियत को ही पाठको के समक्ष प्रस्तुत नही किया है, बल्कि एक एतिहासिक सत्य को भी उभारा है। जसा कि हम पीछे कह चुके हैं, नागर जी को इतिहास से प्रेम है, विशेषकर भारतीय इतिहास से, और इसमें भी अवध के इतिहास से। अवध के इतिहास के प्रति अपनी इसी विशेष रुचि के कारण वे इस उप यास की रचना में प्रवृत्त हुए हैं। उनके साहित्यकार की सफलता यही है कि इतिहास का एक कलात्मक आव रण मे बडी कुशलता से अभिव्यक्ति दी है।

उपन्यास की सबसे प्रमुख विशेषता उसका यही ऐतिहासिक यथाथ है। भारतीय इतिहास के एक अन्धकारपूण पृष्ठ को अपने उपन्यास का आधार बना कर ऐतिहासिक सत्य के प्रति लेखक ने अपनी निष्ठा का परिचय दिया है। प्रस्तुत उपन्यास में उसने जिस एतिहासिक सत्य को उभारा है, उसका वणन उसने स्वय किया है। डा० रामविलास शर्मा को लिखे गये एक पत्र में प्रस्तुत उपन्यास के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—'उपन्यास का पहला परिच्छद मैंने सन् १८२२ ई० म गाजीउद्दीन हैदर क काल में—देखा है। मुझे अपने देश की दशा देखने को मिल जाती है। गदर अग्रजो की सेना म हुआ, क्रान्ति अवध, बुन्देलखण्ड और बिहार के किसानों और स्त्रियों में उदय हुई। गदर मे सामन्तो की नेताशाही का अन्त हुआ, उसे पूरे रग में देखना मैंने आवश्यक समझा, इसलिए कथा का सूत्र उस काल म उठाया है जब शाह अवध के बेटे नसीरुद्दीन हैदर के बेटा हुआ है। दादा कहता है ये

मेरा पोता नहीं। दादी पोता कहती है। बाप कभी कहता है,—ये मेरा बेटा है, कभी इन्कार करता है। इस राजनीति में वह औरत जो बच्चे की मां है—समाज की कमनियां का शिकार है। भैयो, लक्ष्मीबाई और हजरतमहल,—कानपुर की तवायफें अवध बुन्देलखण्ड और जगदीशपुर की स्त्रियां कुछ यों ही न निकल पड़ी होंगी। जाने किन किन अत्याचारों की घुटन विद्रोह का एक जबदस्त बहाना पाकर दुर्गा रणचण्डी बन निकली है।"[1] यही उनका वह ऐतिहासिक यथार्थ है जो उपन्यास को एक सजीव रूप देता है। यथार्थ के साथ साथ उनकी आदर्शवादी विचारधारा भी उभरी है। "वर्तमान समाज की व्यापक जानकारी के बल पर वे इतिहास को परखते हैं और इतिहास की परख के बल पर वर्तमान का ताना बाना सजाते हैं।"[2] उनकी यथार्थवादी दृष्टि तथा आदर्शवादी चिंतन दोनों ही इस उपन्यास में सक्रिय हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में नागर जी की जनवादी विचारधारा भी प्रत्यक्ष हुई है। वे एक जनवादी लेखक हैं और इसीलिये उनकी संवेदना तथा सहानुभूति शोषित तथा सामान्य जनता के प्रति ही रही है। इतिहास में भी नागर जी की दृष्टि त्रस्त जनता के स्पन्दन होते हैं। उनकी निगाह समाज के उन वर्गों पर जाती है जिनमें विद्वान लोग वारता की कल्पना भी नहीं करते।[3] प्रस्तुत उपन्यास के आधे से भी अधिक पात्र सामान्य जनता से ही सबंधित हैं। सामान्य जनता में भी उनकी दृष्टि नारी समस्या पर ही अधिक टिकी है। इस उपन्यास में विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त नारियां अपने विभिन्न रूपों में चित्रित की गई हैं। जनता के बीच से ही उपन्यासकार कतिपय ऐसे चरित्रों को सामने लाया है, जिनके सम्मुख सामंतवर्गों के सारे चरित्र फीके पड़ जाते हैं। उसकी प्रभावशाली लेखनी का स्पर्श पाकर वे सामान्य पात्र अत्यंत विशिष्ट ही नहीं अविस्मरणीय बन गये हैं। कथोपकथन अत्यंत स्वाभाविक प्रभावशाली तथा सारगर्भित हैं। उसकी इन्हीं विशेषताओं के कारण उपन्यास की महत्ता एक सीमा में स्थिर व सफल रह सकी है। भाषागत विशेषता भी

१– नागर जी द्वारा डा० शर्मा को लिखा गया पत्र धर्मयुग २ अगस्त १९६४ – पृ० १६।

२– धर्मयुग – पृ० १७।

३– वही – पृ० १६।

उपन्यास की एक प्रमुख विशेषता है। वह गतिशील और प्रभावशाली तो है ही, पात्रों के अनुकूल तथा क्लिष्टता से परे है।

कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी सशक्त कथावस्तु, आकर्षक तथा बहुरंगी चरित्र सृष्टि, ऐतिहासिक यथार्थ तथा कलात्मक समृद्धि आदि विशेषताओं से युक्त यह उपन्यास नागर जी की एक विशिष्ट उपलब्धि माना जा सकता है।

अध्याय-८

सुहाग के नूपुर (१६६०)

•

"पुरुष जाति के स्वार्थ और दम्भ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग–नारी जाति–पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी रख सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वयं ही धक्के खाता है, और खाता रहेगा। नारी के रूप में न्याय रो रहा है, महाकवि! उसके आंसुओं में अग्नि प्रलय भी समाई है, और जल प्रलय भी।"

—'सुहाग के नूपुर' पृ० २६७।

सुहाग के नूपुर (१९६०)

अपने ऐतिहासिक उपन्यासों म नागर जी ने राजाओ महाराजाओं सामतो तथा बादशाहो के जीवन से अधिक जनता के अपने सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन को उदघाटित करना चाहा है। केवल उत्तर भारत के इतिहास और सस्कृति के प्रति ही नही दक्षिण भारत का इतिहास और वहां के सास्कृतिक जीवन क प्रति भी उनकी समान दिलचस्पी रही है। इतिहास को उन्हाने वस्तुत एक साहित्यकार और समाजशास्त्री की दृष्टि से देखा है। 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में उनकी यही दृष्टि देखी जा सकती है।

सक्षिप्त कथावस्तु–

प्रस्तुत उपन्यास जैसा लेखक ने स्वय कहा है महाकवि इलगोवन द्वारा रचित तमिल महाका य 'शिलप्पदिकारम' की कथावस्तु पर आधारित है। लेखक के अनुसार इस महाकाव्य की मूल कथावस्तु अति प्राचीन काल से इस देश के साहित्य म प्राय सवत्र प्रचलित है। घिसी-पिटी 'थीम' होने पर भी पापुलर उपन्यास के लिये मुझे वह अच्छी लगी। मैं अपने दृष्टिकोण से उसमे नवीनता देख रहा था।[1] नागर जी के इस कथन से स्पष्ट है कि उन्होंने प्रचलित कथावस्तु को ज्यो का त्यों ग्रहण नही किया है, वरन् अपने दृष्टिकोण के अनुरूप उसे नये ढग और नये रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। तभी व कह सके हैं 'प्रस्तुत उपन्यास उक्त महाकाव्य की कथावस्तु पर आधारित होते हुए भी प्राय एक स्वतन्त्र रचना है।'[2]

उपन्यास की कथावस्तु के अनुरूप वातावरण का निर्माण करने में नागर जी ने उस समय के जीवन पर प्रकाश डालने वाले अनेक ग्रथो का

१– सुहाग के नूपुर–निवेदनम्।

२– वही।

अध्ययन किया है। और इस प्रकार अत्यन्त सजीव ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अपनी कथावस्तु को गतिशील किया है। इतिहास का यह वह समय था जब दक्षिण भारत का कावेरी पटटणम् अपने कला कौशल व धन वैभव के कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष में अत्यन्त प्रसिद्ध था। बड़ बड़ सेठों का व्यापार न केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित था, उत्तर भारत, यहाँ तक कि विदेशों तक में उनकी व्यापारिक गतिविधियां फैली हुई थीं। ये बड़े बड़े सेठ अपने धन वैभव तथा आधार विचारों के कारण सम्पूर्ण दक्षिण भारत में प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। उस समय की समाज व्यवस्था में इनका बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। वे राजा तक को आर्थिक सहायता देते थे और उन्हें अपने प्रभाव में किये हुए थे। लेखक ने कथावस्तु के अन्तर्गत इन सेठों की व्यावहारिक गतिविधियों तथा समाज व्यवस्था में इनकी अपनी स्थिति तथा प्रभाव का बड़ा ही सजीव कलात्मक तथा खोजपूर्ण विवरण दिया है।

दक्षिण भारत का यह वह समाज था जिसमें कुलवधू की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। वह परिवार की लक्ष्मी मानी जाती थी तथा पारिवारिक जीवन के सुखी भविष्य का स्रोत समझी जाती थी। कुलवधुओं के साथ साथ समाज में नगर वधुओं का भी पर्याप्त सम्मान था जिन्हें सामाजिक जीवन की सम्पन्नता का सूचक समझा जाता था। ये नगर वधुयें धनिकों के मनोरंजन के लिए थीं। संगीत और नृत्य उनका प्रमुख पेशा था। समाज के धनी-मानी व्यक्ति तथा उनके पुत्र इन नर्तकियों के कृपा कटाक्ष के लिये लालायित रहते थे। समाज में उन्हें मान्यता मिली हुई थी। प्रतिवर्ष राजकीय उत्सव होता था, जिसमें सर्वश्रेष्ठ नर्तकी को राजा स्वयं सम्मानित करता था। साधारण जनता भी नाच और रंग में पर्याप्त रस लेती थी। कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत का यह स्वर्ण युग था।

'सुहाग के नूपुर' उपन्यास की कथावस्तु इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विकसित हुई है। कावेरी पटटणम नगर में मासात्तुवान और मानाइहन दो सर्वश्रेष्ठ धनी सेठ थे, जिनकी ख्याति न केवल दक्षिण भारत में ही, वरन विदेशों तक में फैली हुई थी। दक्षिण भारत के विदेशी व्यापारियों में भी इनकी पूरी धाक थी। यहाँ तक कि राजा तक उनके प्रभाव में था। दोनों बड़े व्यापारी एवं कुलीन थे। मासात्तुवान का एक मात्र पुत्र कोवलन व्यापार में अपने पिता का यश विदेशों तक में फैला रहा था। मानाइहन के एक पुत्री थी, जिसका नाम कन्नगी था। दोनों सेठों में पर्याप्त मैत्री थी, और वे पारि

वारिक भूमिका पर भी अपने सबध स्थापित करना चाहते थे। कोवलन का विवाह कन्नगी से सम्पन्न हो जाता है और इस प्रकार दक्षिण भारत के दो सवश्रेष्ठ धनी परिवार भी एक दूसरे से मिल जाते हैं। विवाह के अवसर पर सम्पूर्ण नगर म उत्सव मनाया जाता है और नृत्य का आयोजन होता है।

अपने समय की प्रसिद्ध नतकी चेलम्मा की शिष्या माधवी समारोह में नत्य करती है। माधवी उस समय नगर की सवश्रेष्ठ नतकी थी। राजा द्वारा उसे सम्मान भी प्राप्त हो चुका था। सवश्रेष्ठ नगर वधू होने के कारण जहाँ एक ओर उसे अद्वितीय रूप एव कला के प्रति अपार गव था, दूसरी ओर कुलवधुओं के समान गौरव एव प्रतिष्ठा पा सकने की एक गहरी आकाक्षा भी। यह आकाक्षा उसक मन म भीतर ही भीतर सुलग रही थी, और वह किसी न किसी प्रकार नगर-वधू होत हुए भी, कुल-वधुओ का गौरव प्राप्त कर, कुलवधुओ की परम्परागत प्रतिष्ठा को नीचा दिखाना चाहती थी। कोवलन का जब कन्नगी से विवाह न हुआ था तभी वह अपने हाव भाव एव कला से कोवलन का हृदय जीत चुकी थी। विवाह के अवसर पर होने वाले समारोह में भी वह कोवलन पर अपना वशीकरण छोडती है। कोवलन द्विविधा में था। एक ओर परम्परागत वश प्रतिष्ठा क सम्मान का प्रश्न, सामाजिक आचार विचारो की रक्षा और दूसरी ओर माधवी के प्रति उसका प्रेम और उस प्रेम की राह पर भी दूर तक आगे बढ जाना, यही प्रश्न थे जिन्हें सुल झाने म उसका मस्तिष्क लगा हुआ था। वस्तुत वह बिना किसी द्वद्व के दोनों ही भूमिकाओ पर एक सामजस्य का आकाक्षी था, जबकि माधवी इस साम जस्य म सबसे बडी बाधा थी। वह जानती थी कि उसके प्रति कोवलन का अगाध प्रेम है, और कोवलन की इसी कमजोरी से वह लाभ उठाना चाहती है। उसने विवाह के समय ही कोवलन से वचन ले लिया था कि विवाह के पश्चात प्रथम रात्रि को कोवलन कन्नगी क साथ नही, वरन उसके साथ रहेगा। यही नही वह कन्नगी को लेकर उसक यहा आयगा और कन्नगी उन दोनों के सम्मुख नत्य करेगी। कोवलन कमजोरी के क्षणो मे माधवी को वचन तो दे देता है परन्तु उसके समक्ष बहुत बडा प्रश्न उपस्थित हो जाता है। उसे लगता है कि जसे माधवी कुल-वधू की समस्त परम्परागत गरिमा, सामाजिक रीति रिवाज, उसकी वश प्रतिष्ठा सबको एक साथ ध्वस्त कर देना चाहती है। वह समझ नही पाता कि, वह एसी स्थिति में क्या करे। अतत कोवलन प्रथम रात्रि को ही अपनी विवाहिता पत्नी कन्नगी को लकर माधवी के यहा जाता है।– उधर माधवी की मा माधवी क काय मे एक बहुत बडी विपत्ति की सम्भावना

देखती है और माधवी को समझाती है कि वह अपने निश्चय को छोड दे। परन्तु माधवी अपने निणय पर अडिग थी। वह अपनी माँ स कहती है, 'मैं परीक्षा लूंगी, देखूंगी कि मेरे प्राणेश्वर पर एक सामाजिक नियम का सहारा लेकर अधिकार जमाने वाली स्त्री में ऐसा कौन सा गुण है जो मुझ मे नही है।'[1] वह कन्नगी को नाचने का आदेश देती है। कोवलन मदिरा के नशे म बेहोश सा था। कन्नगी शान्तिपूवक कुल वधू की समस्त गरिमा के साथ अत्यन्त शिष्टतापूवक माधवी की प्रत्येक बात का उत्तर देती है। माधवी लाख प्रयत्न करने के बावजूद कन्नगी को नत्य करने क लिए प्रस्तुत नही कर पाती। कोवलन स्थिति समझ कर अचानक उठता हुआ माधवी की ओर बढ़ता है और माधवी क मुह पर तमाचा मारता है। माधवी का अहकार बिखर जाता है। माधवी को अपमानित करते हुय वह कन्नगी से क्षमा मागता है और कन्नगी को लकर माधवी के घर स निकल जाता है।

अपमानित माधवी निराश नही होती। कन्नगी के परो म पडे सुहाग के नूपुर स्वत पहनने के लिए वह नए प्रयास करती है। उसकी माँ उसकी गुरु चेलम्मा सब उसे समझाती हैं, परन्तु माधवी पर जस कन्नगी को अपदस्थ करके कोवलन की कुलवधू बनने का नशा है। अस्थिर चित्त कोवलन पुन माधवी के प्रणय पाश मे बध जाता है। पत्नी पिता ससुर वश, समाज सबकी प्रतिष्ठा तथा नियमो की अवहेलना करता हुआ वह माधवी के प्रेम म इतनी दूर तक पागल हो जाता है कि घर परिवार सब कुछ छोड बठता है। कोवलन द्वारा माधवी के गभ से एक कन्या भी उत्पन्न होती है। माधवी अपने को पूणत कोवलन की पत्नी समझने लगती है। कोवलन उसे कुलवधू की प्रतिष्ठा देने के लिए उतारू हो जाता है। कन्नगी से लेकर, वह लक्ष्मी गह की चाभी तक, जो परम्परागत नियमो के अनुसार कुल वधू अर्थात कन्नगी की ही सपत्ति थी, माधवी को दे देता है। वह वश पट्टिका पर अपने द्वारा उत्पन्न होने वाली माधवी की कन्या का नाम तक अकित कराने के लिए सहमत हो जाता है। माधवी की अहकार भावना पुष्ट तो होती है परन्तु वह कन्नगी के चरणो म बधे सुहाग के नूपुर अभी तक न पा सकी थी। वह कोवलन पर इसके लिए दबाव डालती है। कोवलन अब तक परिवार और उसकी सम्पत्ति से पूरी तरह कट चुका था। उसके आचरण ने समूचे वश और

१—सुहाग के नूपुर, – प० ९४।

उसकी मान मर्यादा को धूल में मिला दिया था। उसके पिता इस आघात को सहन न कर सकने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे। सारा व्यापार अस्त व्यस्त हो चुका था। कोवलन स्वयं माधवी के घर भिखारी के रूप में पड़ा हुआ था। माधवी सुहाग के नूपुर प्राप्त करने के लिये पूरा प्रयत्न करती है, परन्तु असफल होती है। होश में आते ही कोवलन पुनः उसे अपमानित करता है। माधवी अब तक कोवलन की सारी सम्पत्ति हस्तगत कर चुकी थी। वह कन्नगी को नीचा दिखाने के लिये कोवलन के साथ विश्वासघात भी करती है। कोवलन माधवी के विश्वासघात से विक्षुब्ध हो उठता है, और अन्ततः शांति के लिए पुनः कन्नगी के पास जाता है। कन्नगी का साहचर्य उसे सचमुच शांति देता है। और अन्ततः कन्नगी को लेकर वह अपना प्रदेश छोड़ देता है। उधर कावेरी पट्टणम का समस्त वैभव बाढ़ और भूकम्प से नष्ट हो जाता है। कोवलन और कन्नगी परदेश में पुनः एक नये जीवन का प्रारम्भ करते हैं और यहाँ कन्नगी के सुहाग के नूपुर ही उनका सबसे बड़ा सम्बल बनते हैं। माधवी पागल हो जाती है। वह अपने अहंकार का विश्लेषण करती है, और इसी माध्यम से नारी जाति की मूलभूत स्थिति को भी स्पष्ट कर देती है। उसे बुद्ध धर्म में शरण मिलती है। नारी के प्रति सही न्याय की माँग ही उसकी अंतिम माँग है।

कथावस्तु का विवेचन –

'सुहाग के नूपुर' उपन्यास की कथावस्तु के इस संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि लेखक ने उसे उसके प्रचलित रूप में ज्यों का त्यों प्रस्तुत न करके एक गहरे सामाजिक आशय से सम्पृक्त करके प्रस्तुत किया है। उसने उसे एक समस्या प्रधान रूप दिया है जिसका संबंध एक ऐसी नारी से है जिसे समाज ने यद्यपि एक वेश्या की नियति दी है, परन्तु जो कुलवधू बनना चाहती है। प्रश्न है कि कुलवधू के आचरण का सम्पूर्ण निष्ठा से पालन करने वाली वेश्या को क्या समाज कुलवधू का गौरव दे सकता है? उपन्यास के अंतर्गत माधवी, जो वेश्या होकर भी कुलवधू के आसन की आकांक्षा रखती है, यह प्रश्न प्रस्तुत करती है, और उसका उत्तर उसे यही मिलता है कि वेश्या प्रत्येक स्थिति में वेश्या ही रहेगी कुलवधू का स्थान उसे नहीं प्राप्त हो सकता। कथावस्तु की मूल समस्या यही है यद्यपि घटनाक्रम धीरे धीरे जटिल भी होता गया है और समस्या भी जटिलतर हो उठी है। कोवलन को पति के रूप में प्राप्त न कर पाने की असफलता माधवी को प्रतिहिंसा से भर देती है और फिर उसके प्रयास

एक कुलवधू को उसके आसन से पदच्युत कर स्वत अपने लिए हस्तगत कर लेने की ओर बढ जाते हैं। यहाँ समस्या सामान्य वश्या और कुलवधू की न रह कर खास माधवी की हो जाती है जिसका कुलवधू के पद पर आसीन होना, पहले से ही उस पद पर आसीन एक नारी को अपदस्थ करने से जुड जाता है। स्पष्ट ही उपन्यासकार ने इस स्थिति का समथन नही किया है, और उसने कन्नगी क कुलवधूत्व को पूरी गरिमा के साथ स्थिर रखत हुय ईर्ष्या विद्वष तथा भयानक प्रतिहिंसा से भरी हुई माधवी को अपने प्रयत्नो मे पराजित दिखाया है। कथावस्तु के अतगत माधवी तथा कन्नगी के चरित्र तथा क्रियाकलापों को देखते हुए उपन्यासकार का दृष्टिकोण पूणत उचित प्रतीत होता है। परन्तु जसा हमने कहा मूल समस्या वही है जिसका हमन सबस पहले सकेत किया है, अर्थात कुलवधू की सम्पूण नतिकता क साथ क्या कोई वेश्या कलवधू बन सकती है ? जसा हम लिख चुके हैं सामाजिक व्यवस्था के कणधार यहा भी नकारात्मक उत्तर ही देते हैं। नागर जी ने इस वस्तुस्थिति को भी चित्रित किया है और यहा उन्होंने समाज-व्यवस्था, उसके कणधारो, धम, कानून, याय सभी की असगतियों को उदघाटित किया है, और वस्तुत उस समाज तथा उसके कणधारो के प्रति क्षोभ व्यक्त किया है जो अपने मनोरजाथ वेश्याओ की सृष्टि भी करते हैं, और अपने वयक्तिक स्वाथ के लिए जीवन का कोई भी नया अध्याय उनके लिए असभव भी बना देते हैं। एक प्रकार से दखा जाय तो नारी को वश्या की नियति देने के वही अपराधी हैं और वही यायाधीश क आसन पर बठ कर निणय भी देते हैं। समाज के स्वार्थी पुरुष वग की इस असलियत को नागर जी ने सजगता पूवक उदघाटित किया है और लगता है, जस माधवी के माध्यम से उन्होंने ही वेश्या की नियति से सदा-सदा के लिए बाध दी जाने वाली नारी के लिये याय की माग की हो। उपन्यास के अत म पगली माधवी महाकवि इलगोवन से कहती है कि उसकी यह बात वे अपने महाकाव्य म और जोड दें— पुरुष जाति क स्वाथ और दम्भ भरी मूखता स ही सार पापो का उदय होना है। उसके स्वाथ क कारण ही उसका अर्धांग-नारी जाति-पीडित है। एकागी दृष्टिकोण स सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बना कर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वय ही झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के रूप म याय रो रहा है महा कवि ! उसके आसुओ म अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।[१]

१— सुहाग के नूपुर– पृ० २६७।

वेश्या नारी के जीवन के करुण सदर्भों को समूची सवेदना के साथ प्रस्तुत करने के साथ साथ नागर जी ने कुलवधू की दुखपूण जीवन स्थितियो को भी उतनी ही सहानुभूति से प्रस्तुत किया है। यदि माधवी समाज और उसके कणधारो के अत्याचारो का लक्ष्य बनती है तो गह लक्ष्मी कन्नगी पति के अत्याचारो का। वह उपयास में कोवलन द्वारा जितना अधिक अपमानित और पीडित की जाती है उतना समाज द्वारा माधवी नही। कन्नगी मौन भाव से पति के सारे अनाचारो को सहन करती है। वह उसका विरोध भी नही कर सकती, क्योंकि यहा भी सामाजिक मायतायें पत्नी को पति के विरुद्ध जाने की अनुमति नही देती। इस प्रकार देखा जाय तो माधवी तथा कन्नगी दोनो ही समाज और उसके नियमो द्वारा पीडित हैं। एसी स्थिति मे यदि कहा जाय कि उपयास मे नागर जी ने वश्या या कुलवधू की पीडा नही, वरन सामाजिक व्यवस्था के चक्र मे पिसती कराहती नारी मात्र की दुख गाथा कही है, तो अधिक सही होगा। एक कुलवधू के रूप मे पीडित है दूसरी नगरवधू के रूप म, एक घर की सीमाओ म घुट रही है, दूसरी खुले समाज में असफल विद्रोह के फलस्वरूप घुटती है। यह घुटन मूलत नारी जीवन की घुटन है जिसे इतिहास की पष्ठ भूमि म स्वण युग की ऊपरी चमक-दमक के बीच नागर जी ने प्रस्तुत किया है।

इसालिए प्राचीन भारतीय इतिहास क बीच से उभरने वाला यह यथाथ उपयास की कथावस्तु की दूसरी सबस प्रमुख विशेषता है। नागर जी की दष्टि इतिहास की चकाचौध म ही उलझ कर नही रह गई है, उन्होने तत्कालीन समाज के यथाथ का विशष रूप स देखने और परखने की चेष्टा की है। यदि एक ओर उ होने कावरी पट्टणम के वभव के लुभावने चित्र खीचे हैं, बड बडे राजकीय समारोहो का विवरण दिया है तो दूसरी ओर बड बड श्रेष्ठियो क महलो, राज भवनों तथा मदिरो के सामने बठी हुई भिखमगो की पक्ति को भी उतनी ही पनी दृष्टि से दखा है। यदि उ होने रूप गर्विता नत किया के विलासपूण जीवन के आकपक चित्र प्रस्तुत किए हैं तो किसी समय राय की सवश्रेष्ठ नतकी और अपूव मान सम्मान और वभव भोगने वाली चेलम्मा को दर-दर ठोकरें खाते हुए भी दिखाया है। कहने का तात्पय यह है कि नागर जी ने एतिहासिक यथाथ के प्रति पूरी तरह ईमानदार रहन का प्रयास किया है। उनकी कथावस्तु यथाथ की सजीव रेखाओ स निर्मित हुई है।

कथावस्तु के अतगत वातावरण की सजीवता विशषरूप से दष्टव्य है। स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपयास की कथावस्तु मे इतिहास केवल पृष्ठभूमि के

रूप में ही है जहाँ तक घटनाओं का प्रश्न है यदि मूल तमिल महाकाव्य में वे कल्पित हैं तो यहाँ भी। परन्तु इन कल्पित घटनाओं को इतिहास की यथार्थ पृष्ठभूमि के बीच इस प्रकार चित्रित किया गया है कि वे ऐतिहासिक यथार्थ का अभिन्न अंग मालूम होती हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की यथार्थता अथवा कथावस्तु की सजीवता को स्थिर रखने के लिए लेखक ने उस युग के इतिहास तथा समाज व्यवस्था पर प्रामाणिक ढंग से प्रकाश डालने वाले प्रसिद्ध ग्रंथों की सहायता ली है जिनमें—डा० मोती चन्द्र के सार्थवाह तथा ब्लीच और एच० जी० वेल्स लिखित 'विश्व इतिहास' एवं डानाल्ड मैकेंजी तथा राबर्ट ग्रेव्ज के मिथ्स एण्ड लाजेंडस आफ इजिप्ट और क्लाडियस' जैसे ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों तथा ऐसे ही अन्य ग्रंथों ने देशकाल तथा वातावरण को यथा सम्भव सजीव और यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कथावस्तु की कोई भी घटना ऐसी नहीं है जो तत्कालीन इतिहास की संगति में न हो या अविश्वसनीय हो।

इस उपन्यास में कथावस्तु के गठन में भी नागर जी को पूरी सफलता प्राप्त हुई है। छोटी-बड़ी समस्त कथा धाराएं सहज गति से आगे बढ़ती रहती हैं। घटनाक्रम में कहीं भी ठहराव, शिथिलता अथवा उखड़पन के दर्शन नहीं होते। नागर जी के लिए बहुधा कहा जाता है कि वे लम्बे-लम्बे वक्तव्यों तथा विचारों से अपने उपन्यासों की कथावस्तु को शिथिल बना देते हैं। इस बात का सम्बन्ध नागर जी के पिछले उपन्यासों से अवश्य है, परन्तु प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु इस दोष से लगभग असम्पृक्त है। उसमें इसी कारण पर्याप्त रोचकता है। समस्या गर्भित होने के बावजूद वह इतने गठे हुए रूप में नियोजित की गई है कि पाठक आदि से अंत तक कहीं भी ऊबता नहीं उसे सच्चे कथा रस की प्राप्ति होती है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि अपने विचार प्रधान तथा समस्या प्रधान रूप, ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति ईमानदार आग्रह एवं गठन सम्बन्धी दोष हीनता से 'सुहाग के नूपुर' की कथावस्तु सर्वथा रोचक एवं ग्राह्य है।

चरित्र सृष्टि—

सुहाग के नूपुर उपन्यास में नागर जी ने नारी जीवन की जिस मूलभूत समस्या को प्रस्तुत किया है उसे यों तो उपन्यास के अनेक पात्र अपनी-अपनी भूमिकाओं में प्रकाशित करते हैं परन्तु उसका मूल सम्बन्ध

कोवलन, माधवी तथा कन्नगी के चरित्रों से है। इन चरित्रों का त्रिकोण ही समस्या को उभारता है, और इन्हीं के बीच उस समाधान भी मिलता है। कोवलन उस वर्ग का प्रतिनिधि है, जिसने परिवार के भीतर तथा बाहर, दोनों ही भूमिकाओं मे नारी के ऐसे रूपों की सृष्टि की है जो उसकी अधिकार भावना तथा विलास लिप्सा को तुष्ट करते हुए उसे मनोरंजन प्रदान कर सकें। माधवी तथा कन्नगी वे नारियाँ हैं जो नारी के इन रूपों—वेश्या तथा पत्नी—का प्रतिनिधित्व करती हैं। पुरुष दोनों को ही सन्तुष्ट रखना चाहता है, परन्तु स्थिति यह है कि वह किसी को भी सन्तुष्ट नहीं रख पाता। यदि पत्नी घर की सीमाओं में उसके अतिचार का लक्ष्य बनती है तो वेश्या घर के बाहर उसके द्वारा शोषित होती है। इस विडम्बना को उपन्यास के अन्तर्गत बड़े सजीव रूप में प्रस्तुत किया गया है और इसी भूमि से लेखक ने नारी जाति के लिए सही न्याय की माँग की है।

कोवलन उपन्यास का नायक है। वह कावेरी पट्टणम के सबसे धनी सेठ मासात्तुवान का एक मात्र पुत्र है। कुलीन संस्कारों में पला कोवलन अपने पिता तथा नगरवासियों की आशा के अनुरूप न केवल पिता के व्यापार तथा यश का ही विस्तार करता है, अपने आचरण द्वारा लोगों का हृदय भी जीतता है। उसके गुणों से प्रभावित होकर ही कावेरी पट्टणम के दूसरे महासेठ मानाइहन उसके साथ अपनी एक मात्र पुत्री कन्नगी का विवाह निश्चित करते हैं, जो कोवलन के पिता मासात्तुवान को तो मान्य होता ही है, कोवलन भी पिता की इच्छा को एक आज्ञाकारी पुत्र की भाँति सहज रूप से स्वीकार कर लेता है। इसी बीच घटनाक्रम के दौरान उसका परिचय राज्य की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी माधवी से होता है और यह परिचय शनैः शनैः घनिष्ठता में परिणत हो जाता है। अपने भावी वैवाहिक जीवन के सन्दर्भ में माधवी से अपने इस नए प्रेम सम्बन्ध को लेकर प्रारम्भ में कोवलन के मन में कोई द्विविधा नहीं है। गृहलक्ष्मी की गरिमा से वह न केवल परिचित है, नगर वधू की अपनी सीमाओं का भी उसे ज्ञान है। वह इस सन्दर्भ में अपने मित्र से कहता भी है कि "चतुर पुरुष हाट में हिरती-फिरती धन लक्ष्मी और यौवन-लक्ष्मी को महत्व नहीं दिया करते मित्र, वे इस लक्ष्मी का ही वरण करते हैं जो उनके घर में स्थायी रूप से आती है।"[1] परन्तु कोवलन के ये कुलीन संस्कार और उसके चरित्र की यह प्रारम्भिक दृढ़ता स्थिर नहीं रह पाती,

—१—

१—सुहाग के नूपुर – पृ० १८।

वह नर्तकी माधवी के प्रेम-पाश में इस प्रकार उलझता जाता है कि अन्त उससे छूट पाने में बिल्कुल असमर्थ हो जाता है। माधवी अपने सौन्दर्य, हाव-भाव तथा दूसरे आकर्षणों में उसे पूरी तरह जकड़ लेता है। यहीं से कोवलन के चरित्र में एक नया मोड़ आता है जो उसके चरित्र का एक दूसरा ही पक्ष प्रस्तुत करता है। जिस कोवलन को कभी अपने कुलीन संस्कारों पर गर्व था जिसने कभी एक नागर वधू तथा गृह-वधू की तुलना करते हुए गृहवधू की गरिमा के प्रति अपनी अगाध-निष्ठा प्रकट की थी वही कोवलन माधवी के आकर्षण पाश में बंधकर माधवी के इंगितों पर अपनी गृह लक्ष्मी को भाँति-भाँति से अपमानित करने से बाज नहीं आता। माधवी अपने प्रति कोवलन की कमजोरी का प्रति क्षण लाभ उठाने की चेष्टा करती है और उस पर हर क्षण यह दबाव डालती है कि कोवलन उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर ले। कोवलन के सम्मुख यह एक नई समस्या आती है। उसके कुछ कुछ कुलीन संस्कार दूर तक माधवी की इस आकांक्षा का प्रतिरोध करते हैं और एक बार तो क्रोध में तड़प कर वह माधवी से यहाँ तक कह देता है कि 'बड़े बड़े कुबेरों तक से अपनी सारा पुजाने वाले चटियार मासात्तुवान के पुत्र कोवलन से यह बात कह कर कोई कन्या—कोई स्त्री जीवित नहीं बच सकती थी'[1] परन्तु कोवलन का यह तेज माधवी की चतुराई भरे प्रणय-कटाक्षों के सम्मुख अतत ठंडा पड़ जाता है और एक स्थिति तो ऐसी आती है जब वह माधवी के सम्मुख पूरी तरह से आत्म-समर्पण कर देता है। कण्णगी के प्रति कोवलन की उदासीनता तथा अत्याचार न केवल उसके पिता को क्षुब्ध करते हैं माधवी से उसके संबंध को लेकर समाज में भी कोवलन की प्रतिष्ठा गिर जाती है। कोवलन और वंश प्रतिष्ठा सबकी अवहेलना करता हुआ कोवलन माधवी के हाथ का खिलौना बन जाता है। बीच-बीच में जब तब उसका विवेक जाग्रत होता रहता है और ऐसे भी अवसर आते हैं जब माधवी के आकर्षण को भुला कर वह बार बार अपनी पत्नी कण्णगी के साहचर्य में सच्ची मानसिक शांति पाना चाहता है परन्तु ऐसे क्षण स्थायी नहीं बन पाते और घटना क्रम के समूचे दौरान वह इधर से उधर भटकता रहता है। डा० राम गोपाल सिंह के अनुसार— कोवलन पुरुष के चंचल और उद्दाम रूप-लिप्सु मन का प्रतीक है जो पत्नी के शांत निश्छल सहज प्राप्य प्रेम समर्पण से संतुष्ट न हो, शिराओं

१—सुहाग के नूपुर—पृ० ६३

और मन के तनावों म झनझनी उत्पन्न करने वाले चमक दमक पूण असहज प्राप्य प्रम की खोज मे भटकता है।"[1]

कोवलन के चरित्र का कला की दृष्टि से सबसे आकपक पक्ष उसके मानस का उत्तल द्वद्व ही है। उसका चरित्र वस्तुत एक एसे दुबल मनोवत्ति वाले व्यक्ति का चरित्र है जिसकी भीतरी कमजोरियाँ उसे परिस्थितियो के वाया चक्र म पडे सूखे पत्ते की भाँति कभी इधर और कभी उधर उडने को बाध्य करती हैं। जब उसे अपनी वश प्रतिष्ठा, सामाजिक मान्यताओ तथा अपने कुलीन सस्कारों का होश आता है तब वह माधवी से भाग कर कन्नगी की शरण में आता है और अपनी विवशता स्पष्ट करता है—'मैं कुटटनी लीला से तब भी अपरिचित नही था और आज भी नही हुआ हू। पर विवश हूँ कन्नगी। माया विनी के पास वही उतना ही सच्चा हृदय भी है।"[2] परन्तु जब उसकी वयक्तिक प्रणय भावना आवेगमयी होती है वह सब कुछ भूल कर माधवी के आचल मे मुह छिपाता है यहा तक कि एक स्थिति म पहुच कर वह माधवी से विवाह तक कर लता है। माधवी उसकी सारी सपत्ति की स्वामिनी बन जाती है। कोवलन कन्नगी को विवश करता है कि माधवी को गह वधू के सारे अधिकार सौंप दे। कन्नगी, कोवलन की इच्छा का प्रतिरोध करता है फलस्वरूप कोवलन उसे मारते मारते लहू लुहान कर देता है। वह माधवी को सारी वस्तुएँ तो सौंप देता है परन्तु कन्नगी के पैरो से 'सुहाग के नूपुर' उतारने का साहस उसे नही होता। माधवी के लिए कोवलन अब द्वार के कुत्ते से अधिक महत्व नही रखता।

एसा नही है कि कोवलन अपनी गिरी हुई स्थिति से परिचित न हो। वह जानता है कि वह कितनी दूर तक समाज की तथा खुद अपनी नजरों में गिर चुका है, और यह भी जानता है कि वह माधवी का प्रतिरोध कर सकने की स्थिति मे नही है। फिर भी प्रयत्न करके वह अपने को निरन्तर गिरते जाने से बचाने का यत्न अवश्य करता है। माधवी जब अपनी पुत्री के रिश्ते के सम्बन्ध म उससे राज रत्नम चेटिटयार के यहा जाने को कहती है, कोवलन के कुलीन सस्कार जसे एक बार फिर जाग उठते हैं और वह माधवी से कहता

१— आधुनिक हिन्दी साहित्य— डा० राम गोपाल सिंह चौहान पृ०—२५९
२— सुहाग के नूपुर— पृ० १५५।

है— 'सुनो माधवी, मैं पतित अवश्य हो गया हूँ पर मेरी अन्तश्चेतना अभी मरी नहीं। मैं जग हंसाई तो भोग रहा हूँ परन्तु यह कलंक न सह पाऊंगा कि मानातुमान के वंशधर ने ऐसी ओछी बात मुख से निकाली, जो असमव है, और यदि सभव हो भी तो समाज के लिए घातक है। इससे कुलाचार भंग हो जायेंगे।" यही नहीं और भी कतिपय अवसरों पर वह अपनी विवेक क्षमता का परिचय देता है। माधवी को अपने घर ले आने का अपराध सबके समक्ष स्वीकार करता है, साथ ही अपनी इस विवशता को भी कि वह माधवी को घर से निकाल भी नहीं सकता। इन कमजोरियों के बावजूद उसे विश्वास है कि माधवी सच्चे अन्तःकरण से उससे प्रेम करती है और इस प्रेम को ठुकराना भी एक प्रकार की अनैतिकता है। कोवल्न द्वारा एक स्तर पर अपने पतन तथा अपनी कमजोरियों का यह स्वीकृति तथा दूसरे स्तर पर सच्चे प्रेम के प्रति उसकी निष्ठा उसके चरित्र को बड़ी स्वाभाविक भूमिका पर उभारती है। यह वह भूमि है जहां सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से गिरा हुआ कोवल्न पाठक की सहानुभूति प्राप्त करता है। माधवी को निरन्तर सीमा का अतिक्रमण करते देख अपनी असमर्थता में वह घुट घुट कर रह जाता है। उससे कहता है कि 'पुरुष किसी स्त्री को इहलोक में जो कुछ भी दे सकता है उससे अधिक मैंने तुम्हें दिया। इस नगर के वैभव स्वरूप अपने पिता और श्वसुर की प्रतिष्ठा तक तुम्हें सौंप दी व्यवसाय-वाणिज्य सौंप दिया। कलंक और लोक निंदा ओढ़ी। तुम्हें अब भी संतोष नहीं। तुम कन्नगी से अब व्यर्थ ही ईर्ष्या करती हो प्रिय! तुम्हारे लिये तो असंभव संभव हो गया। तुम मेरी लोक ख्यात हवेली का प्रधान बन कर यहां विराजमान हो और कन्नगी बेचारी अपना सबसे बड़ा अधिकार खोकर निराश्रित है।"[1]

उपन्यास की समाप्ति होने तक अपनी कमजोरियों में वह इतना निरीह हो जाता है कि स्वतः अपने अपमान का भी बदला नहीं ले पाता। वह माधवी के सम्मुख उसके इंगितों पर उसके द्वार से धक्के देकर निकाला जाता है। अपमान की यह पराकाष्ठा कोवल्न को अपने समूचे क्रिया कलापों को नये संदर्भ में देखने को प्रेरित करती है। यहीं उसे माधवी के विश्वासघात का भी पता चलता

१— सुहाग के नूपुर— पृ० १७९।
२— सुहाग के नूपुर— पृ० २११।

है और तब उसे बोध होता है कि जिस नगर वधू के प्रम को अन य मान कर उसने उस गृह लक्ष्मी का आसन दिया, वह सचमुच वश्या ही निकली। यह बोध कोवलन के समक्ष गृह लक्ष्मी की गरिमा को एक बार पुन उदघाटित करता है। और उसे अन्तत कन्नगी के आश्रय में ही सच्ची शांति प्राप्त होती है।

समग्रत कोवलन के चरित्र चित्रण म लेखक ने अदभुत मनोवज्ञानिक सूझ और सफलता का परिचय दिया है। उसने कोवलन के चरित्र के समूचे उत्थान पतन को वडी स्वाभाविक भूमिका मे प्रस्तुत किया है। उसके चरित्र के माध्यम से उसने इस तथ्य को भी स्पष्ट किया है कि पुरुष को सच्ची मान सिक शांति गृह लक्ष्मी की ही छाया म मिल सकती है। कोवलन का चरित्र एक साधारण मनुष्य का चरित्र है, जिसमे मानव सुलभ सभी कमजोरियाँ हैं। उसकी दुगति का सबसे बडा कारण उसकी आभिजात्य भावना है जो एक सामान्य मानव के रूप मे उसकी सहज इच्छाओ से अपनी सगति नही बिठा पाती। उसका चरित्र उप यास का एक सजीव चरित्र है।

माधवी के चरित्र चित्रण मे भी लेखक की मनोवज्ञानिक अन्तर्दृष्टि पूरी तरह सक्रिय हुई है। उपन्यासकार ने माधवी को मूलत एक ऐसी नारी के रूप में चित्रित किया है जो समाज व्यवस्था की असगतियों से बुरी तरह पीडित है, जिसने बनना तो पत्नी चाहा, परन्तु समाज ने जिसे वश्या की नियति दी। माधवी के बाद के सारे क्रिया कलाप उसके जीवन की इसी 'ट्रेजडी' के परि णाम हैं और अवांछित होते हुए भी मनोवैज्ञानिक भूमिका पर सहज स्वाभाविक हैं। वह अपन रूप और गुण से कोवलन को अपने प्रणय-पाश में बाँध लती है। कोवलन क प्रति उसका प्रेम भी सच्चा प्रेम है। समाज ने उसे वेश्या अथवा नतकी की जो नियति दी है उससे वह अपना सामजस्य नही बिठा पाती। उसके हृदय में किसी की परिणीता बनकर गृह-लक्ष्मी का आत्म सम्मान पूण जीवन बिताने की आकांक्षा है। अपने नृत्य द्वारा समाज का मनोरजन उसने अवश्य किया है, परन्तु किसी पुरुष के कामुक स्पश से उसने अपने नारीत्व की सदव रक्षा की है। प्रथम बार कोवलन को ही वह अपना हृदय अर्पित करती है। कोवलन के प्रेम पर भी उसे पूरा विश्वास है और यह सहज विश्वास ही उसे कोवलन क समक्ष अपनी नारी सुलभ आकांक्षा को—गृह लक्ष्मी बनने की आकांक्षा को—व्यक्त करने की शक्ति देता है। पर तु कोवलन की ओर से माधवी को मिलता है एक अत्यत कठोर उत्तर, अपमान तथा लाछना। उसी दिन माधवी

समझ पाती है कि वस्तुत समाज की नजरों म यहा तक कि अपने प्रमी की भी नजरों म वह क्या है। वह कन्या की नियति भोगने के लिए बाध्य है। समाज उसे राज-नर्तकी का झठा सम्मान देकर उससे अपना मनोरंजन कर सकता है और वस्तुत इसीलिए उसने उसकी सष्टि की है उस गृह-लक्ष्मी की पदवी देने को प्रस्तुत नहा। समाज की इस लाछना को वह सहन भी कर जाती है परन्तु उसका प्रमी भी उसकी आकाक्षा को खडित करता है और यह चोट वह नहा सहन कर पाती। यहा स उसक चरित्र म एक नया मोड आता है और वह समाज और उसकी सारी नतिकता क प्रति प्रतिहिसापूण हो उठती है। उसका हृदय समाज द्वारा गृह-लक्ष्मी को दिय गय गौरव स भी घणा करने लगता है। वह पुरुष मात्र म घणा करन लगती है। उसमे बदल की तीव्र भावना जगती है और वह भयानक से भयानक काय करने के लिए तत्पर हो उठती है। वह निश्चय करती है कि गह लक्ष्मी क पद को यदि अपनी सम्पूण निष्ठा के बावजूद वह सहज रूप म न पा सकी तो वह उसे अपने रूप, अपने गुण तथा अपनी चतुराई म बलात हस्तगत करेगी। वह इसके लिए छल-प्रपच का आश्रय भी लगी कोवलन को अपने रूप के जाल म फास कर उसकी कम जोरियो का पूरा लाभ उठायेगी और उस तथा समाज को दिखा देगी कि वह क्या कर सकती है? माधवी अपनी योजनाओ म दूर तक सफलता प्राप्त करती है और अपन रूप तथा आकषण के जाल म कोवलन को यहाँ तक फास लेती है कि कोवलन उसके इगितो का अनुचर बन जाता है। वह कोवलन को अपने साथ विवाह करन क लिए भी सहमत कर लेती है, और उसक गह की स्वामिनी बन जाती है। माधवी की यह सफलता उसके अह कार को सीमातीत रूप म सक्रिय करती है। पुरुषवग, समाज तथा गृह लक्ष्मी पद के प्रति उसकी ईर्ष्या तथा विद्वष यहा तक बढता है कि कावेरी पट्टणम की समूची सामाजिक नीव हिल जाती है। माधवी के साहस तथा प्रतिहिसा की भावना स स्वय कावरी पट्टणम का वेश्या वग तक आतकित हो उठता है। जिस जिस भूमिका पर वह कोवलन द्वारा अपमानित होती है उन्ही भूमिकाओ और उसी सीमा तक वह दोषी कोवलन दोषी समाज तथा निर्दोष कनगी तक को अपमानित करती है। माता पिता यहा तक कि उसकी नृत्य गुरु चेलम्मा तक के समझाने का उस पर कोई प्रभाव नहा पडता। वह अपने अहकार म आग बढती ही जाती है और इसी आवेग म कोवलन के साथ विश्वासघात भी करता है। माधवी की चरित्र कि य सारी गतिविधियाँ उप न्यास म बडे सजीव रूप में चित्रित हुई हैं। नारी की प्रतिहिसा कितनी

भयानक हो सकती है इसका लेखक ने जो रूप प्रस्तुत किया है, वह उसकी असाधारण क्षमता तथा शैली दृष्टि का परिचायक है। अन्तत माधवी का अहकार खडित भी होना है। जिन सुहाग व नपुरो को प्राप्त करने के लिए वह अपने समूचे जीवन को दाव पर लगा देती है बावजूद उसकी सारी सफलता के व नूपुर उसे प्राप्त नही हो पाते। माधवी की यह असफलता उसे बुरी तोड तरह देती है। यहा वह एक नारी के द्वारा ही पराजित होती है। पुरुष वर्ग को तो वह अपने चरणो के नीचे रौंद देती है पर तु एक नारी के ही आत्म सम्मान एव दृढ़ता के आगे वह गिरी हो उठती है और यही उसे पता चलता है कि प्रतिहिंसा से कही अधिक बडी शक्ति व्यक्ति व भी आ तरिक दढता म है। "गह लक्ष्मी पद की गरिमा तो यहा उद्घाटित होती है। उप यासकार ने माधवी के अहकार को जिस भूमि पर ला कर तोडा है वह उसकी नतिक आस्था के साथ मनोवैज्ञानिक ज्ञान का भी परिचय देती है। पुरुष वग के अत्याचारो से पीडित एव विद्रोही कि तु उच्छ खल तथा प्रतिहिंसा स भरी हुई नारी की पराजय उसने दूसरी भूमिका पर पुरुष वग के अत्याचारो स आक्रात किन्तु व्यक्तित्व की दृढ़ता से आयत युक्त मर्यादावाली नारी के द्वारा दिखाई है, और यह सकेत किया है कि अत्याचार क उ मूलन के लिए प्रतिहिंसा अपेक्षित नही यक्तित्व की दढता तथा अपर जेय मनोबल आवश्यक है।

कुल मिला कर माधवी का चरित्र *अत्यन्त सजीव है। प्रतिहिंसा से* भरे हुए उसके क्रिया कलाप मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक एव नतिक दृष्टि से अवाछित हैं परतु ये अवाछित क्रियाकलाप भी माधवी के प्रति पाठको की घणा नही सहानुभूति ही उभारते हैं। वह शोषिता नारी है और उसका शोषण ही उसके प्रति *उपयासकार तथा* पाठक की सवेदना का सबसे बडा आधार है। उसने पत्नी बनना चाहा परन्तु समाज ने उसे वेश्या ही माना अपनी प्रतिहिंसा से वह पत्नी बनी भी तो उसकी उसी प्रतिहिंसा न पत्नी बना कर भी उसे अन्तत वेश्या की ही नियति दी। वह प्रारम्भ म भी वेश्या थी और अत म भी वेश्या ही रही। माधवी के चरित्र का यह दुखात प्रकरण बहुत मार्मिक है। उपन्यासकार ने अनेक स्थलो पर माधवी के चरित्र की मन्भूत असगतियो को स्पष्ट किया है। उसने उसकी समची प्रतिहिंसा के भीतर छिपी उसकी सहज आकाक्षा को भी उतनी ही स्पष्टता से उभारा है, और उसके शोषण के सामाजिक कारणो को भी बिना किसी सकोच के प्रस्तुत किया है। एक स्थल पर माधवी तथा कथित सामाजिक प्रतिष्ठा का मखौल उडाती हुई क्रोध में कहती है – 'मैं

भी न्याय लूगी। वेश्या बनाने के लिये डाकुओं, कुटनियो का जाल फैलाकर जब हम व्यवसाय की वस्तु बनाया जाता है तब सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न क्यों लुप्त हो जाता है। मैं स्वच्छा से वश्या के यहा बिक कर नही आई थी। म भी सती हूँ, मेरे सम्मुख भी अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न ह।'[1] एक दूसरे स्थल पर अपने ऊपर लगाये जाने वाले आरोपो का उत्तर देते हुये अपनी मनोवज्ञानिक भूमिका के साथ साथ वह समाज के ठकेदारो तथा नारी के शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था की असलियत का भी स्पष्टता के साथ पर्दाफाश करती है। उसे इस तथ्य का पूरा अहसास ह कि समाज कुल-वधुओं की प्रतिष्ठा के लिए नगर वधुओं की सत्ता को अनिवाय मानता ह, तभी वह अपनी सारी आ तरिक घृणा उस समाज-व्यवस्था और उसके पोषक पुरुष वग पर उडेलती है—'मैं वेश्या हू। मानव मात्र से द्वष करती हूँ। हि कुछ लोग कहते हैं कि मुझे अपनी ही जाति से द्वष है। मैं गहणियो से, सतियो से देवियो से ईर्ष्यावश मोचा लेती हूँ और उन्हे घुला-घुला कर मारने के उपायो में लगी रहती हूँ। कोइ कहता है कि मुझ मानव मात्र से घृणा है मैं समाज का नाश करती हू। कोई यह नही देखता कि वेश्या स्वय अपने ही से घृणा करने पर बाध्य है क्योंकि परम्परा से घणा के सस्कारों मे पाली जाती है। जो स्त्री किसी भी अन्य गृहिणी की तरह काम काजी और जग सचालन का भार वहन करने के योग्य थी उसे पुरुषो की विलास वासना का साधन मात्र बना कर समाज में निकम्मा छोड दिया जाता है – फिर क्यों न वह समाज से घृणा करे क्यो न पूरी लगन और सचाई के साथ समाज का सवनाश करे, उसे पूरा अधिकार है।"[1]

माधवी के ये उदगार उसके चरित्र की आतरिक और वाह्य समस्त रेखाओं को स्पष्ट कर देते हैं। जहा उसकी प्रतिहिंसा उपन्यासकार तथा पाठक दोनों की ही दृष्टि में अहेतुक है, वहा उस प्रतिहिंसा के मूल में शोषित नारी की जो मूर्ति है वह उपन्यास कार के साथ-साथ पाठक की भी समस्त सवेदना प्राप्त करती है। माधवी उपन्यास के अन्त मे मनुष्य समाज के व्यथित अर्धांग के रूप में अपना परिचय देती है और इस व्यथित अर्धांग अर्थात नारी के लिए समाज से सही न्याय मागती है "नारी के रूप में न्याय रो रहा है। महाकवि!

१ – सुहाग के नूपुर – पृ० १६४–६५।
२ – सुहाग के नूपुर – पृ० २३४।

उसके आसुओं में अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।"[1]

कन्नगी का चरित्र एक आदर्श, पतिव्रता, गृह लक्ष्मी का चरित्र है, जिसे भी लेखक ने बड़ी सधी हुई लेखनी से प्रस्तुत किया है। कन्नगी के चरित्र में न तो कोवलन तथा माधवी के चरित्र के समान उतार चढ़ाव है और न वेग। इसके स्थान पर उसमें गहराई है। भीतर ही भीतर कितने भी उद्वेलन होते रहे परन्तु वह अपनी गहराई के कारण ही ऊपर से शांत और लगभग स्थिर है। उसमें एक आंतरिक दृढता है जो परिस्थितियों की कड़ी चोटों के बावजूद बिखरती नही बल्कि दृढतर होता जाता है। बहुधा इस प्रकार के चरित्र जिनमें गति का वेग नही होता तथा जो आदर्श चरित्र मानकर चित्रित किए जाते हैं, बहुत सजीव नही प्रतीत होते और आदर्शों के पुतले मात्र दिखाई देते हैं, परन्तु कन्नगी का चरित्र इस कथन का अपवाद है। आदर्श रेखाओं से चित्रित होने के बावजूद वह प्रभावित करता है क्योंकि लेखक ने कन्नगी के चरित्र को भयानक घात प्रतिघातों के बीच से प्रस्फुटित किया है, एक प्रकार से विषम से विषम परिस्थितियों की कड़ी आंच मे तपा-तपाकर उसे निखारा है।

कन्नगी कावेरी पट्टणम के दूसरे महासेठ मानाइहन की एक मात्र पुत्री है और कुलीन सस्कारो में पली हुई है। वह एक आदर्श गृह लक्ष्मी के रूप में कोवलन की परिणीता बनती है, परन्तु यही से उसके जीवन की कटकाकीर्ण यात्रा प्रारम्भ होती है। विवाह की प्रथम रात्रि ही उसके लिये प्रलय की रात्रि सिद्ध होती है। नववधू के रूप मे भावी जीवन के उसके सारे स्वप्न इसी रात एक झटके के साथ टूट जाते हैं। जब उससे भेंट होते ही कोवलन उससे प्रश्न करता है "कौन हो तुम ? वह उत्तर देती है–आपकी दासी।' इस पर कोवलन उससे कहता है "यही सुनना चाहता था। पत्नी के रूप मे पुरुष एक स्त्री को दासी बनाकर अपने घर लाता है,—समझी। साधारण स्त्रिया साधारण मोल पर हाट मे बिकती हैं ऊँचे कुलों की स्त्रियो को दासी बनाने के लिए सोने-रुपये की थलियों का मुह खुल जाता है अतर केवल इतना ही है और तुम अपनी सुदरता और सुशीलता के गुमान में न रहना, समझी। तुम्हारा सौंदय भरी दृष्टि में कौडी मोल का नही।'[2] यह कोवलन के साथ विवाह के बाद की कन्नगी की प्रथम रात्रि थी। यही नही इसी रात कोवलन उसे घसी

१— सुहाग के नूपर– पृ० २६७।
२— सुहाग के नूपुर– पृ० ८८-८९।

टता हुआ अपनी प्रेमिका वेश्या माधवी के यहाँ ले जाता है और माधवी से कहता है—"लो प्रिय, तुम्हारी नई दासी को ले आया।" माधवी कन्नगी को अपने पैर के घुंघरू पहन कर नाचने का आदेश देती है। कोवलन मदिरा में चूर था। अत्यंत शांत स्वरों में कन्नगी माधवी को उत्तर देती है—"बहन, मेरे देव तुल्य पति ने सुहाग के नूपुरों से मेरे पैरों को बाँध दिया है। ये घुंघरू तुम्हारे ही पैरों में शोभा पायेंगे।"[1] इसी बात से कन्नगी के समक्ष उसका भावी जीवन स्पष्ट हो उठता है और वह मन ही मन अपने को भविष्य के सारे आघातों को सहन करने के लिये प्रस्तुत कर लेती है। उसके चरित्र की जो आंतरिक दृढ़ता इस बात उसकी मर्यादा को बचाती है वही आगे भी उसका सबसे बड़ा सम्बल होती है। आगे उस पर और भी कठोर अत्याचार होते हैं परन्तु वह एक सच्ची पतिव्रता नारी की भाँति सब कुछ सहन करती है। दरबार द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या उसे कोवलन विवाह की रात्रि बाहर ले गया था? वह झूठ बोल जाती है। कोवलन जब तब कन्नगी से अपने अपराधों के लिए क्षमा भी माँगता है परन्तु माधवी का आकर्षण उसे बार बार कन्नगी को अपमानित करने के लिये विवश करता है। एक स्थिति तो यह आती है जब वह माधवी से विवाह तक कर लेता है और माधवी कोवलन के सामने ही सुहाग के नूपुरों को छीन कर कन्नगी से गृह-लक्ष्मी के सारे अधिकार हस्तगत कर लेती है। अधिकार विहीन होने के बावजूद सुहाग के नूपुरों को ही अपनी सबसे बड़ी सम्पत्ति मानकर कन्नगी संतोष करती है। वह अपने पिता तक से अपने दुःख को व्यक्त नहीं करती और न ही पिता के घर जाकर रहने के लिए प्रस्तुत होती है। कारण उसके मन से वह उसके श्वसुर कुल का अपमान होता है। कोवलन कन्नगी को शारीरिक दण्ड तक देता है उसे घर से भी निकाल देता है, परन्तु उससे सुहाग के नूपुर नहीं ले पाता। परिस्थितियाँ अन्ततः कोवलन को माधवी के सही रूप से परिचित कराती हैं और कोवलन कन्नगी के पास आकर उससे सच्चे हृदय से क्षमा माँगता है। उससे कहता है—'तुम्हारे चरण छू लूँ सती, आज के दिन के लिए मैं सात जन्मों तक भी तुम्हारा उऋण न हो सकूँगा।'[2] वह कन्नगी का प्यार पाकर पलट जाता है। विषमावस्था में सुहाग के नूपुर ही उसका सम्बल बनते हैं। कन्नगी पति से सुहाग के नूपुर बेचकर फिर से व्यापार करने को कहती है। कोवलन कहता है 'इतना संकट आ जाने दिया और अब इतने सहज भाव से दिये डाल रही हो।' कन्नगी उत्तर देती है ये नूपुर

१— सुहाग के नूपुर– पृ० ९३। २— सुहाग के नूपुर – पृ ९ ।

आपकी प्रतिष्ठा के प्रतीक हैं स्वामी, विलास के नही।' परदेश में अपरिचित और विपन्न कोवलन विपत्ति ग्रस्त होता है जब उसे इतने मूल्यवान सुहाग के नूपुर बेचते हुये बंदी बना लिया जाता है, उस पर उस राज्य की महारानी के नूपुरों की चोरी का आरोप लगाया जाता है। बाद में कन्नगी पुनः उसके प्राण बचाती है।

समग्रत कन्नगी का चरित्र उस शोषित नारी का प्रतीक है जिसे पतिव्रता तथा गृह-लक्ष्मी पद की झूठी गरिमा सौंप कर पुरुष वर्ग घर के भीतर अपने शोषण का लक्ष्य बनाता है और जो मर्यादा का झूठा आवरण ओढ तिल तिल कर घर की चहार दीवारी के भीतर घुटती हुई अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती है। पति परमेश्वर की नियति से बंधी हुई जो न घर के भीतर उसका विरोध कर पाती है और न समाज धर्म कानून आदि का ही आश्रय ले पाती है। लेखक ने गृह-लक्ष्मी की गरिमा को कन्नगी के चरित्र द्वारा महत्व अवश्य दिया है परन्तु समाज व्यवस्था की असंगतियां तथा पुरुष के स्वार्थ उसे कितनी दूर तक रौंद डालते हैं, इसका भी स्पष्ट संकेत दिया है। इससे स्पष्ट है कि गृह लक्ष्मी पद की गरिमा को स्वीकार करने के साथ-साथ लेखक यह भी चाहता है कि उसे न्यस्त स्वार्थों के संदर्भ से हटा कर सामाजिक समता तथा न्याय की सही भूमि पर प्रतिष्ठित किया जाय।

चेलम्मा माधवी की नृत्य गुरु है। राज्य की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी के रूप में माधवी को जो सम्मान प्राप्त होता है उसके मूल मे चेलम्मा की साधना ही सक्रिय है। चेलम्मा स्वयं किसी समय राज्य की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी थी, जिस पर कावेरी पट्टणम के धनी मानी सेठ और नवयुवक अपना सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत थे। परिस्थितियां आगे चलकर उसे कोढिन भिखारिनी की नियति देती हैं परन्तु चेलम्मा के आंतरिक गुणों को नष्ट नहीं कर पातीं। माधवी जैसी कुशल शिष्या के प्रति उसका स्वाभाविक स्नेह है। वह उस पर गर्व भी करती है। परन्तु माधवी का अहंकार और महत्वाकांक्षाए उसे प्रिय नहीं। चेलम्मा ने जीवन के तमाम उतार-चढाव देखे हैं। उसके पास समाज के व्यापक अनुभवों की बहुत बड़ी पूंजी है। जिस राह पर माधवी आगे बढना चाहती है चेलम्मा अपने जीवन में उसी राह पर धोखा खा चुकी थी। अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर वह पग पग पर माधवी को सावधान करती है। माधवी उसके परामर्शों की अवहेलना करती है, यही कारण है कि जब माधवी का पतन होता है चेलम्मा उसके औचित्य को सहज ही समझ जाती है। माधवी के लिए उसका यह उपदेश था कि 'धूप सी तपो, पर जाड़े की धूप सी, जो सबके लिए सुहावनी

होती है। प्रखर ताप अच्छा नहीं होता। जीवन भर कुआर की धूप सी तप कर ही मैं अब इस भेद को पहचान पाई हूँ"[1] इस सहज शिक्षा की अवमानना ही माधवी के दुःख का कारण बनती है।

चेलम्मा वेश्या जीवन की सीमाओं और अतिवादों से परिचित है। माधवी और कन्नगी के संघर्ष में उसकी सहानुभूति कन्नगी के साथ रहती है। कोवलन जब कन्नगी से बलपूर्वक माधवी के लिए सुहाग के नूपुर हस्तगत करना चाहता है, चेलम्मा कन्नगी के सुहाग की रक्षा करने में कन्नगी की सहायक बनती है। चेलम्मा स्वतः समाज द्वारा शोषित है। समाज के प्रति उसके मन में भी एक तीखी घृणा है परन्तु जीवन के अनुभवों ने उसे सिखा दिया है कि समाज व्यवस्था की वर्तमान स्थिति में असंतुलित विद्रोह निरर्थक होगा। चेलम्मा का जो भी चरित्र उपन्यास में आया है वह पाठक का आत्मीय बन जाता है। उसका चरित्र अनुभवों की सान पर चढ़ा हुआ चरित्र है।

इन प्रमुख चरित्रों के अतिरिक्त उपन्यास के गौण चरित्र भी स्वाभाविकता से अंकित हुए हैं। मासात्तुवान तथा मानाइहन नगर के सबसे धनी सेठ हैं। उनमें व्यवसाय की असाधारण योग्यता है। अपनी वंश प्रतिष्ठा तथा कुलीन संस्कारों के प्रति भी दोनों पूर्णतः सजग हैं। उपन्यास के अन्तर्गत दोनों का चरित्र आदि से अन्त तक स्वच्छ है। पान्सा विदेशी व्यापारी है जो भारत में ही बस जाता है। पेरियनायकी उसकी प्रेमिका है जिससे उसे एक निष्ठ प्रेम है। पेरियनायकी की पालिता पुत्री होने के कारण वह माधवी का धर्म पिता भी है। व्यवसाय जन्य कुशलता के साथ साथ अपनी प्रेमिका तथा माधवी के प्रति अपने दायित्वों का वह अंत तक पालन करता है। उसका गम्भीर स्वभाव उसके प्रति भी पाठक को आत्मीय बनाता है।

पेरियनायकी माधवी की माँ है और माधवी उसकी पालिता पुत्री। वह भी अनुभव सम्पन्न वेश्या है। परन्तु पान्सा को अपना एक निष्ठ प्रेम देती है। वेश्या जीवन की सीमाओं से परिचित होने के कारण वह माधवी को भी जब तब महत्वाकांक्षा की राह पर आगे बढ़ने से रोकती है। बाद

---

१ – सुहाग के नूपुर —पृ० ४०–४१।

में माधवी द्वारा अपमानित तक होती है । उसका चरित्र सामान्य चरित्र है।

समग्रत उपन्यास के अन्तगत नागर जी चरित्र निर्माण में पर्याप्त सफल रहे हैं। उन चरित्रों के चित्रण में उन्हें विशेष सफलता मिली है जिनमें उत्थान पतन की भूमियों के लिए अवकाश रहा है । विशेषकर कोवलन माधवी तथा कन्नगी के चरित्र उनकी मनोवज्ञानिक सूझ-बूझ तथा चित्रण-कला के श्रेष्ठ उदाहरण माने जा सकते हैं। इन चरित्रो को एक दूसरे की सापेक्षता में विकसित करते हुए उन्होने अपने मूल प्रयोजन की सिद्धि बिना किसी उलझन के कर ली है।

हम कह चुके हैं कि नागर जी का यह उपन्यास विशुद्ध एतिहासिक उपन्यास नही है। इसमें केवल दक्षिण भारत के प्राचीन ऐतिहासिक वातावरण का पृष्ठभूमि के रूप में उपयोग हुआ है। ऐसी स्थिति में नागर जी से यही आशा की जा सकती थी कि वे इतिहास के उस युग को स्वाभाविक भूमिका पर अपने उपन्यास में प्रस्तुत करते । और नागर जी ने वस्तुत ऐसा किया भी है। उन्होंने इस युग के वातावरण को यथाथ रूप मे प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अध्ययन किया है जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं। नागर जी की विशिष्टता यही है कि उन्होंने इतिहास के उस युग को एक समाज शास्त्री की दृष्टि से भी देखा है, और उस युग की तडक भडक के साथ जन सामान्य के जीवन के यथाथ चित्र भी दिए हैं। उपन्यास के अन्तगत हमें उस युग के सामाजिक तथा सास्कृतिक जीवन का समग्र चित्र प्राप्त होता है। यही नही उस युग की सामाजिक तथा नतिक मान्यताएँ भी यथाथ भूमिका पर ही कृति में स्पष्ट की गई हैं। उच्च वर्गों तथा निम्न वर्गो के रहन-सहन, आचार-विचार तथा क्रिया कलापो में भी ऐतिहासिक यथाथ का ध्यान रखा गया है। नाच, रग और उत्सव समारोहो की मान्यता के साथ साथ उपन्यासकार की दष्टि भिखमगों के जीवन की ओर भी गई है।। समग्रत हम कह सकते हैं कि प्राचीन इतिहास की जिस पष्ठ भूमि को लेकर 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास की रचना हुई है वह पृष्ठभूमि तत्कालीन यथाथ की सजीव रेखाओ के साथ इस उपन्यास में मूत हो सकी है और यह लेखक की बहुत बडी सफलता है। एक प्रश्न_ उपन्यास की चलती हुई भाषा को लेकर अवश्य उठाया जा सकता था परन्तु उसके लिए लेखक ने उपन्यास की भूमिका मे स्वत स्पष्टीकरण दे

दिया है—'भाषा मिली जुली सरल रखी है जिससे कि साधारण हिन्दी जानने वाले पाठक पढ़ सकें।'

इस उपन्यास को लिखने में लेखक का उद्देश्य दक्षिण भारत के प्राचीन इतिहास की झलक प्रस्तुत करना ही नहीं था बल्कि उस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत एक ऐसी समस्या प्रस्तुत करना था, जो जितना ही उस युग से संबंध रखती है उतना ही आज के युग से भी। इस समस्या का संबंध उस नारी जीवन से है जो प्रत्यक्ष रूप में प्रारम्भ से लेकर आज तक अभिशाप ग्रस्त रहा है। नारी का यह अभिशाप ग्रस्त जीवन तथा पुरुष वर्ग द्वारा किया जाने वाला उसका शोषण इस उपन्यास में बड़ी स्पष्टता से उभरा है। ऊपर से लगता है कि जैसे समस्या गृह वधू बनाम नगर-वधू के द्वंद्व की है जबकि समस्या वस्तुतः नारी की पराधीनता तथा समाज व्यवस्था में उसकी दयनीय स्थिति से संबंध रखती है। माधवी गृह-लक्ष्मी का पद पाने के लिए जीवन भर संघर्ष करती है, परन्तु गृह लक्ष्मी पद की गरिमा भी वस्तुतः क्या है, इसे कन्नगी का जीवन स्पष्ट कर देता है। माधवी यदि नगर वधू के रूप में शोषित है, तो कन्नगी गृह-वधू के रूप में। नारी जीवन की इस विडम्बना को लेखक ने यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है। उसे उपन्यास की कथा नारी माधवी तथा इस गृह-लक्ष्मी कन्नगी दोनों से ही सहानुभूति है, और वह पुरुष वर्ग के शोषण से दोनों की मुक्ति चाहता है। नागर जी के पिछले उपन्यासों में भी नारी जीवन की दुख गाथा ही बहुधा चित्रित हुई है और यह बात प्रमाणित करती है कि उनका संवेदनशील लेखक किस सीमा तक नारी जीवन के इन दुखद पक्षों से विक्षुब्ध है।

जहां तक नगरवधू तथा गृहवधू के द्वंद्व का प्रश्न है, नागर जी ने समाज व्यवस्था के अंतर्गत गृहलक्ष्मी पद को मान्यता दी है जो एक संतुलित समाज के लिए अनिवार्य है। यह नागर जी की स्वस्थ सामाजिक विचार धारा का उदाहरण है। परन्तु नागर जी गृहलक्ष्मी पद की मर्यादा को स्वीकार करते हुए भी उसके लिए समाज की मणधारा से सहा तथा सच्चे न्याय की माग करते हैं और एक स्वस्थ भूमिका पर उसकी स्थिति चाहते हैं।

१—सुहाग के नूपुर—निवेदनम्।

या तो उपन्यास के अन्तगत नारी जीवन से सबधित कुछ और बातें भी प्रकाश में आई हैं , परन्तु उपन्यास के अतगत लेखक का मूल प्रतिपाद्य समाज-व्यवस्था के अतगत नारी के उचित अधिकारों की माग ही रहा है। उन्होने युग युग से शोषिता नारी के लिए न केवल याय मागा है, उसके व्यक्तित्व की पूरी गरिमा के साथ प्रतिष्ठा भी चाही है। नागर जी सामाजिक उपन्यासो के साथ साथ ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना में भी कितने सक्षम हैं, 'शतरज क मोहरे' तथा 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास उसके प्रमाण हैं।

अध्याय-९

विचार पक्ष और जीवन-दर्शन

●

"मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिये, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिये। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिये। विचारो में भेद हो सकता है, विचारो के भेद से स्वस्थ द्वद्व होता ह और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सबध बना रहे—जसे बूद से बूद जुडी रहती है—लहरो से लहरे, लहरो से समुद्र बनता है—इस तरह बूद में समुद्र समाया हुआ है।"

—'बूद और समुद्र' पृष्ठ ६०६

विचार पक्ष और जीवन-दर्शन--

श्री अमृत लाल नागर प्रेमचन्द परंपरा के एक समर्थ उपन्यासकार हैं। साहित्य तथा जीवन संबंधी प्रेमचन्द के दृष्टिकोण को उन्होंने न केवल अपनाया है वरन नये युग-सन्दर्भों के बीच उसे समृद्धि की नई भूमिकाओं तक भी पहुंचाया है।

प्रथम अध्याय के अंतर्गत प्रेमचन्द की चर्चा करते हुये हम कथा-साहित्य के क्षेत्र में उनके युग-प्रवर्तन की सही दिशाओं पर प्रकाश डाल चुके हैं। हमारी मान्यता है कि तत्कालीन भूमिका पर उपन्यास-शिल्प से संबंधित अनेक नई और महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद प्रेमचन्द का यह युगप्रवर्तन कथा साहित्य को वस्तु तथा विचार की दिशा में ही अधिक सम्पन्न बनाने से सम्बद्ध रखता है। प्रेमचन्द हिन्दी के पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने साहित्य की भूमि पर स्पष्ट रूप से अपने को उपयोगितावादी भी घोषित किया है। उनका यह उपयोगितावादी दृष्टिकोण एक स्तर पर उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का सूचक है,तो दूसरे स्तर पर कला अथवा शिल्प की अपेक्षा साहित्य के वस्तु तथा विचार पक्ष के प्रति उनकी विशिष्ट आस्था का। वस्तुत विश्व के अन्य प्रगतिशील तथा महान् साहित्यकारों की भांति उन्होंने भी शिल्प को स्वतन्त्र महत्व न देकर वस्तु की अभिव्यक्ति के प्रभावशाली माध्यम के रूप में ही स्वीकार किया है। सच पूछा जाय, तो जो व्यक्ति जीवन के व्यापक अनुभवों से शून्य हैं, जिनके पास सम्प्रेषित करने को कुछ है ही नहीं, कला तथा शिल्प की बारीकियों में वही लोग भटकते हैं। इसके विपरीत जिनके पास जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव होते हैं, जो एक संवेदनशील हृदय तथा प्रबुद्ध मस्तिष्क के स्वामी होते हैं, उनके लिये साहित्य में अपने अनुभवों तथा विचारों की अभिव्यक्ति ही मुख्य होती है, और शिल्प उस अभिव्यक्ति का एक माध्यम। प्रेमचन्द के पास अनुभवों का अच्छा-खासा भंडार था, और यही कारण है

अध्याय-9

विचार पक्ष और जीवन-दर्शन

•

"मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिये, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिये। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख-दुख मानना चाहिये। विचारो में भेद हो सकता ह, विचारो के भेद से स्वस्थ द्वद्व होता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट सबध बना रहे–जैसे बूद से बूद जुडी रहती है–लहरो से लहरें, लहरो से समुद्र वनता ह–इस तरह बूद में समुद्र समाया हुआ ह।"

— बूद और समुद्र' पृष्ठ ६०६

कि उनके उपन्यासों में जो बात सबसे अधिक ज्वलन्त बनकर उभरी है, वह उनकी वस्तुगत तथा विचारगत भूमि, उनकी संवेदना जगत ही है। प्रेमचन्द के एक समर्थ उत्तराधिकारी के नाते नागर जी के बारे में भी यही बात कही जा सकती है।—उनका साहित्य संबंधी दृष्टिकोण भी कला वादी नहीं है। साहित्य के माध्यम से उन्होंने भी मानव जीवन तथा मानव चरित्र को ही अभिव्यक्त और स्पष्ट करना चाहा है। उनके उपन्यासों में जितने ही विविध तथा बहुरंगी मानव जीवन के चित्र हैं, उतना ही विविध तथा बहुपक्षीय उनका चिंतन भी। अनुभवों की समृद्धि, अध्ययन की व्यापकता तथा चिंतन की प्रौढ़ता तीनों का बड़ा ही आकर्षक समन्वय और संतुलन उनकी कृतियाँ प्रस्तुत करती हैं। युग जीवन के संपूर्ण यथार्थ को उन्होंने खुली आँखों से देखकर अपने संवेदनशील हृदय तथा मन की पूरी सचाई के साथ उसे आत्मसात किया है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों का वस्तु तथा विचार पक्ष प्रेमचन्द की ही भाँति संपन्न है।

पिछले अध्यायों में नागर जी के उपन्यासों का स्वतन्त्र विवेचन करते हुए हमने देखा भी है कि उनमें वस्तुगत तथा विचारगत भूमिका ही सर्वाधिक प्रगल्भ बनकर उभरी है। केवल वस्तु तत्व की प्रमुखता ही नहीं इस वस्तु का एक वैशिष्ट्य भी है, और वह यह कि वस्तु समस्त उपन्यासों में सदैव ही समस्यागर्भ है। नागर जी के उपन्यासों के विचार पक्ष का एकमात्र आधार वस्तु तत्व की इस व्यापकता तथा समस्या प्रधानता में ही खोजा जा सकता है। वस्तुतः किसी भी कथा कृति की वैचारिक भूमिका को सामने लाने वाली समस्याएं ही होती हैं। इन समस्याओं के विवेचन तथा विश्लेषण के क्रम में ही कृति की वैचारिक भूमिका उभरती है। नागर जी की कृतियों के लिये भी यही बात सत्य है। उनके उपन्यासों में आज के समाज तथा मानव जीवन से संबंध रखने वाले अनेक ज्वलन्त प्रश्न उठाये गये हैं तथा उनकी चर्चा की गई है। ऐतिहासिक कृतियों में भी प्रायः ऐसी ही समस्याएं आई हैं जो अपने युग से घनिष्टता पूर्वक सम्बद्ध होने के बावजूद आज के युग से भी उतनी ही जुड़ी हैं। इन प्रश्नों तथा समस्याओं पर लेखक से लेकर उसके औपन्यासिक पात्र सबने चर्चा की है, और इसी चर्चा के क्रम में पात्रों के विचारों के साथ-साथ लेखक का अपना चिंतन भी स्पष्ट हुआ है। उपन्यासों के स्वतन्त्र विवेचन के दौरान अलग-अलग उपन्यासों की विचारगत भूमिका भी स्पष्ट की जा चुकी है। संप्रति, हम समग्र रूप से इन उपन्यासों में प्राप्त होने वाली लेखक की वैचारिक भूमिका तथा उसके माध्यम से स्पष्ट होने वाले उसके जीवन दर्शन के

आकलन का प्रयास करेंगे। हमारा लक्ष्य यहा भिन्न भिन्न उपन्यासो में उठाये गये प्रश्नो पर की गई समूची चर्चा का उल्लेख करना न होकर उन प्रश्नो से सबद्ध उस चिंताधारा का ही उपस्थापन है जिसे लेखक की अपनी वचारिक भूमि तथा जीवन दशन का प्रतिनिधि माना जा सक।

किसी भी कथा कृति के भीतर समाज तथा जीवन से सम्बन्धित प्रश्नो पर लेखक के अपने विचार अथवा दृष्टिकोण का पता कई स्रोतो से लगता है, जिन्हे हम निम्नलिखित विभागों के अनगत रख सकत हैं —

१ प्रत्यक्षत लखक क द्वारा, अर्थात जहां पात्रो को पीछे हटाते हुये लखक स्वय सामन आ जाता है और समस्याओ पर अपना मत देता है।

२ घटनाओ तथा परिस्थितियो क विकास क्रम के द्वारा अर्थात जहा घट नायें अथवा परिस्थितिया इस क्रम से विकसित होती हैं कि उन्ही के द्वारा लेखक के अपने विचारो तथा जीवन दृष्टि की व्यजना हो जाती है।

३ लखक क प्रतिनिधि पात्रो के द्वारा, अर्थात एसे पात्रो के द्वारा जो लखक के अपन विचारो के प्रतिनिधि बनकर उपन्यासो मे आते हैं। वस्तुत लेखक उनकी सष्टि ही इसीलिए करता है कि उनके आवरण म वह पाठका से अपनी बातकह सके, साथ ही अपने विचारो के अनुरूप आदश पात्र का उदाहरण भी पाठको के समक्ष प्रस्तुत कर सके।

४ ऐसे पात्रों के द्वारा जो सपूणत तो लेखक क प्रतिनिधि नही होते, परन्तु अनेक प्रश्नो पर व लेखक के विचारों का उपस्थापन अवश्य करते हैं।

इन विविध प्रकार के माध्यमो मे सबसे कलात्मक तथा प्रभावशाली माध्यम वह होता है जब कृति या कृतिकार का उद्दश्य तथा उसका चिन्तन उपन्यासकार द्वारा सीधे न कहा जाकर पात्रो तथा परिस्थितियो के माध्यम से व्यजित हो। जहां तक नागर जी का प्रश्न है उन्होने या तो सभी प्रकार की पद्धतियो का प्रयोग किया है, परन्तु प्रधानता व्यजना को ही दी है। उनकी कृतियों म एस अनेक पात्र हैं जो पूणत या अशत उनके विचारों के प्रतिनिधि बन कर आये हैं। प्रमुख पात्रो को लें तो सुहाग के नूपुर की चेलम्मा शतरज के मोहरे के दिग्विजय ब्रह्मचारी, 'महाकाल' क पाचू गोपाल और केशव बाव, 'बूद और समुद्र' क बाबा राम जी दास, कनल, महिपाल, सज्जन, वनकन्या

'अमृत और विष' के अरविन्द शंकर की गणना ऐसे ही पात्रों के अन्तर्गत की जा सकती है। इनमें से निविजय ब्रह्मचारी, पाचूगोपाल, बाबा रामजी दास तथा अरविन्द शंकर बहुत दूर तक लेखक के पूर्ण प्रतिनिधि माने जा सकते हैं, जब कि शेष, कतिपय प्रश्नों पर लेखक के मत को सामने रखते हैं।

नागर जी की कृतियों में जो भी प्रश्न तथा समस्याएं उठाई गई हैं उनका क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ-व्यवस्था, दर्शन, अध्यात्म, जीवन से सबंधित लगभग प्रत्येक क्षेत्र का स्पर्श ये समस्याएं करती हैं। परन्तु यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि नागर जी न तो कोरे राजनीतिक विचारक हैं, और न ही कोरे समाजशास्त्री, अर्थशास्त्री अथवा धार्मिक या आध्यात्मिक चिंतक। वे मूलत: एक साहित्यकार हैं और उनके सारे रूप उनके इसी साहित्यकार व्यक्तित्व के अंग हैं। उन्होंने जीवन के उक्त नानाविध क्षेत्रों से संबद्ध प्रश्नों को उनके अलग-अलग कटघरों में बंद कर नहीं उठाया और न ही इस भूमि से उन पर विचार ही किया है। उन्होंने वस्तुत: एक प्रश्न को दूसरे प्रश्न से जोड़ कर एक क्षेत्र की समस्या को दूसरे क्षेत्र की समस्या से संबद्ध करके ही उस पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। यही कारण है कि यदि हम उनके विचारों को उनकी अलग-अलग कोटियों में बांट कर देखते हैं, तो हमारे समक्ष अनेक प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं। जब उनका समाज-दर्शन उनके राजनीतिक विचारों को भी अपने भीतर समेटता है, और उनकी राजनीति एक स्तर पर मार्क्सवादी भौतिकवाद और दूसरे स्तर पर गांधीवादी तथा सर्वोदयी भूमिका से भी उतना ही प्राण रस खींचती हुई आध्यात्मिक ऊंचाइयों का स्पर्श करने लगती है, तो प्रश्न उठता है कि संश्लिष्ट भूमिका पर प्रस्तुत की गई इन बातों को समाज, राजनीति या अध्यात्म की किसी अलग कोटि में किस प्रकार रखा जाय? एक उदाहरण इस संबंध में पर्याप्त होगा। नागर जी प्रगतिशील चेतना के उपन्यासकार हैं जिन पर मार्क्सवादी दर्शन का भी पर्याप्त प्रभाव है। उन्होंने अपने प्रत्येक उपन्यास में प्रतिगामी सामंतवादी तथा पूंजीवादी व्यवस्था की कड़ी निंदा की है, और समाजवाद का समर्थन किया है। वर्तमान सामाजिक वैषम्य तथा आर्थिक असमानता से भी वे बहुत विक्षुब्ध हैं और एक ऐसी व्यवस्था के आकांक्षी हैं जो मानव मात्र की समता पर आधारित हो। यदि हम नागर जी के विचारों की इस भूमि का सम्बन्ध उनके समाज दर्शन अथवा राजनीति से जोड़ते हैं तो हमारे समक्ष यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि नागर जी की यह समाजवादी विचारधारा किस प्रकार उनके विशुद्ध समाज-दर्शन का

अग मानी जा सकती है, जबकि उनका यह समाजवाद या साम्यवाद एक स्तर पर तो मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष की संदर्भ लिये हैं, दूसरी तरफ उतना ही अहिंसात्मक भी है—सेवा, त्याग, भूदान तथा सपत्तिदान जिसके मूल तत्व हैं। उनका साम्यवाद वस्तुत वह साम्यवाद है जो 'अहिंसा का जनेऊ' धारण किये हुए है-[1] और विश्वात्मा के प्रकाश[2] से भी आलोकित है। यह तो एक उदाहरण मात्र है, इस प्रकार की और भी बहुत सी कठिनाइयां आती हैं, जब हम उनके सश्लिष्ट चिंतन को खण्डश देखने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी स्थिति में आवश्यक हो जाता है कि हम उनकी सश्लिष्ट चिंताधारा को अपना कर ही आगे बढ़ें और उसी भूमि से उनके विचारों तथा जीवन दृष्टि को सामने रखें।

इससे पहले कि हम इस सश्लिष्ट चिंतन तथा जीवन दृष्टि को प्रस्तुत करें, हम उनके उपन्यासों में उठने वाली समस्याओं तथा प्रश्नों पर एक विहगम दृष्टि डालना आवश्यक समझते हैं जो इस विचार पक्ष की वाहिका हैं। इन समस्याओं का सबध व्यक्ति से भी है और समाज से भी, सामाजिक भूमिका से भी है और राजनीतिक तथा अध्यात्मिक भूमिका से भी। ये व्यक्तिगत भी हैं, और वर्गीय भी, राष्ट्रीय भी हैं और सार्व—भौमिक भी।

सबसे पहले हम उनके ऐतिहासिक उपन्यासों को लेते हैं। 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में कुल वधू बनाम नगर वधू के द्वंद्व के बीच मूल प्रश्न समाज में नारी की आर्थिक पराधीनता से सबद्ध है। 'शतरज के मोहरे' कृति ह्रासशील सामती व्यवस्था की विद्रूपियों का उदघाटन करती है और साथ ही नारी के अभिशप्त जीवन की कथा भी कहती है। सामाजिक स्तर की कृतियों में 'महाकाल' उनकी प्रथम कृति है जिसकी प्रमुख समस्या बगाल के अकाल के सारे राजनीतिक सदर्भ के बावजूद व्यक्ति की खुदगर्जी, उसकी स्वार्थ परता, एक वाक्य में कहना चाहें, तो पशुता के स्तर पर उतर आने वाली मनुष्यता की है। साम्राज्यवादी, सामतवादी तथा पूजीवादी स्वार्थों के विद्रूप षडयन्त्र को उसकी सारी असलियत के साथ उद्घाटित करते हुए भी मूलत लेखक ने मनुष्य की पशुता को ही यहां विचारार्थ प्रस्तुत किया

१–बूंद और समुद्र।
२–अमृत और विष।

है। बूँद और समुद्र' में चौक में मध्यवर्गीय जीवन है परन्तु उसके चारों ओर हमारा व्यापक सामाजिक जीवन भी हिलोरें ले रहा है अत उसकी समस्यायें एक स्तर पर मध्यवर्ग की समस्यायें होते हुए भी व्यापक समाज की समस्याएँ हैं। नारी समस्या यहाँ भी प्रमुख है कारण अधिकांश समस्याओं के केन्द्र में नारी ही है। कतिपय ऐसी समस्याएं भी यहाँ हैं जिनका संबंध नारी और पुरुष दोनों से है। अनमेल विवाह, तलाक प्रेम बनाम विवाह की समस्या संयुक्त परिवार व्यवस्था और उसका टूटता हुआ रूप, एक बड़े बनाव सामाजिक ढाँचे में नारी और पुरुष दोनों का घुटता हुआ जीवन किसी प्रकार उससे संगति बठाने का उनका प्रयत्न और विद्रोह, रूढ़ियाँ धार्मिक अंध विश्वास राजनीति का अवसरवादी रूप, वैयक्तिक स्वार्थ-परता आदि-आदि ढेर सारे प्रश्न आज के व्यापक सामाजिक जीवन का अंग बनकर इस उपन्यास में आये हैं। मिटती हुई सामंतीय *जीवन-व्यवस्था की सारी सड़ांध यहाँ है साथ ही मध्यवर्ग का उत्तरदायित्व* भी अपनी सारी रेखाओं में यहाँ प्रत्यक्ष है। जितना हो बड़ा कैनवेस इस उपन्यास का है, समस्याओं का रूप भी उतना व्यापक। 'अमृत और विष' कृति में भी एक बड़े कैनवेस के भीतर लगभग एक शताब्दी का जीवन चित्रित किया गया है। इसके अन्तर्गत सामंती पूंजीवादी जीवन मूल्यों की पारस्परिक टकराहट राष्ट्रीय विचारधारा तथा अंग्रेज परस्ती की मिली जुली भूमिका, प्रतिक्रियावादी तथा जन विरोधी दृष्टिकोणों का प्रगतिशील चिंतन से होने वाला समर, स्वतन्त्रता के बाद के नए संदर्भों में जन्म लेने वाली व्यापक मूल्यहीनता अराजकता तथा दिग्भ्रम साम्प्रदायिकता हिन्दू मुस्लिम दंगे, युवक-छात्र विद्रोह, नई पीढ़ी की दमित तथा पस्तहिम्मती, समाज की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के बीच लेखक अथवा कलाकार का अस्तित्व, न केवल विधवा विवाह वरन् प्रेम विवाह और अन्तर्साम्प्रदायिक प्रेम और विवाह, समाज की विष रूपा तथा अमृतरूपा शक्तियों के बीच उभरने वाली आस्था-अनास्था की समस्या, आदि-आदि अनेक प्रकार की समस्याएं और प्रश्न इस उपन्यास में उठाये और सुलझाये गये हैं। समग्रत नागर जी के उपन्यासों की इस समस्यामूलक वस्तु ने उनके उपन्यासों के विचार पक्ष को बहुत पुष्ट बनाकर प्रस्तुत किया है।

यदि हम इन उपन्यासों में उठाये जाने वाले इन प्रश्नों तथा समस्याओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें, तो व्यापकरूप से हम उन्हें दो विभागों में रख कर देख सकते हैं-सामाजिक और आध्यात्मिक। इन्हीं

दो प्रमुख भूमिया से लेखक ने समस्याओं तथा प्रश्नों को देखा है। उनके कारणों पर विचार किया है और उनके समाधाना की ओर इंगित किया है।

चिन्तन का सामाजिक सदर्भ–

इसके अन्तगत अपने उपन्यासों मे उठने वाली तमाम समस्याओ को लेखक ने एक बडी और व्यापक समस्या का अग मान कर उन पर अपने विचार किये हैं—व सीधे ही उसके माध्यम से सामने आये हो अथवा पात्रो तथा परिस्थितियो के माध्यम से। यह व्यापक समस्या है व्यक्ति और समाज के बीच पाये जाने वाले असामजस्य की। लेखक का निश्चय है कि इस एक समस्या का समाधान ही वस्तुत सारी समस्याओ का समाधान है। जब तक व्यक्ति और समाज के अपने अपने स्वार्थ आपस में टकराते रहेंगे तब तक समस्याए भी बनी रहेंगी।

प्रश्न उठता है कि बगाल का अकाल क्यो पडा ? इसके अपने राजनीतिक कारण हैं परन्तु क्या सारी समस्या व्यक्ति के अपने स्वार्थ से सम्बन्धित नही है ? क्या सामतवादी साम्राज्यवादी अथवा पूजीवादी शोषण की जडें समाज के विरोध में व्यक्ति की अपनी स्वार्थपरता मे गहराई से नही जमी हैं ? 'महाकाल' उपन्यास मे केशव बाबू और पाचू गोपाल इसी तथ्य को सामने रखते हैं, और जो सही भी है। यो, कृति की भूमिका में ही लेखक ने नरेन्द्र शर्मा की कविता का जो उद्धरण दिया है वह भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है—

> 'स्वार्थ की छेनी लिये लेकर हथौडा लोभ का,
> मनुज ने निज पूर्ण पावन मूर्ति को खण्डित किया।"

लेखक ने कृति के समर्पण मे साफ शब्दो मे कहा है—"समस्या अन्न की है कपड की है जीन की है। व्यक्तिगत सत्ता का मोह सामूहिक रूप से मानव की इस समस्या पर परदा डाल रहा है। यह अशांति व्यक्ति के गलत स्वार्थ की कहानी है।'[1]

१– महाकाल–आमुख।

पांचू गोपाल का मस्तिष्क भी इस समस्या के सन्दर्भ में बिल्कुल साफ है। वह जानता है कि "खुदी के लिए सारी दुनिया तबाह हुई जा रही है। व्यक्ति का अहं है जो दूसरे को गिरा कर प्रसन्न होना चाहता है, दूसरे को अपना गुलाम बना कर पाशविक शक्ति के बल पर अपनी सत्ता चाहता है। उसे अपने पिता की बात याद आती है—घृणा की गति है कहां? विनाश ही में न? तुम्हारा यह अकाल क्या है? मनुष्य की घृणा ही न? यह महायुद्ध क्या है? कौन सा आदर्श है इसमें? सत्य एक असत्य के साथ सन्धि करके दूसरे असत्य का सर्वनाश करने के लिये युद्ध कर रहा है। मनुष्य इसे राजनीति कह कर अर्द्ध सत्य का पोषण करता है। अर्द्ध सत्य अज्ञान का कारण है। ज्ञान प्रेम का मूल है। और प्रेम की गति है निर्माण तक निर्माता तक।"[1]

समाज में नारी के अभिशप्त जीवन पर विचार करें तो क्या उसके मूल में एक वर्ग का अपना स्वार्थ निहित नहीं है? क्या वह सामाजिक हित के दांव पर क्या वह वर्ग हित की विजय नहीं है? लेखक का विचार है कि नारी समस्या का मूल उसकी आर्थिक पराधीनता है, एक ऐसी समाज व्यवस्था है जो प्रत्यक्ष स्थिति में नारी के शोषण को प्रश्रय देती है। 'बूंद और समुद्र' में वनकन्या का यह कथन कि "औरत 'एकनामिक्ली फ्री' (आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र) नहीं है" वस्तुतः नागर जी का ही कथन है। आज की समाज व्यवस्था में नारी की स्थिति क्या है? 'मौजूदा समाज में नारी की एक अजीब सामाजिक स्थिति है। खासतौर से हमारे देश में तो यह विचित्रता और भी स्पष्ट होकर झलकती है। हम देखते हैं कि औरतें इस समय आम घरों में किसी न किसी रूप में बेइज्जती का जीवन बिताती हैं। छोटे आदमी कहलाने वालों की कौन कहे बड़े-बड़े सभ्य, रईसों और पंडितों के घरों में भी स्त्री जाति का दमन होता है, तरह-तरह से उसका अपमान होता है। आम-जहनियत में स्त्री घर का काम काज सबकी सेवा टहल करने वाली और पुरुष के भोग की वस्तु होने के अलावा और कुछ भी नहीं। हां उसका एक महत्व यह अवश्य है कि वह बच्चे पैदा करने वाली मशीन भी है। बच्चे चूंकि इन्सानी जिंदगी को बढ़ाने के लिए

१–महाकाल–पृ० २१७

२–बूंद और समुद्र–पृ० ५७

अहम जरूरी है, इसलिये उनका उत्पादन करने वाली फक्टरी का महत्व है।'[1] परन्तु लेखक के विचार से "इतनी बेइज्जती-अमानुषिक व्यवहार होने पर भी नारी से बढ कर पुरुष के लिये और कोई भी वस्तु अधिक आदरणीय नहीं है।"[2] नारी के अभिशप्त जीवन का मूल कारण नागर जी ने पुरुष वग का स्वाथ माना है, और इसक लिय पुरुष जाति को दोषी ठहराया है -'सुहाग के नूपुर' मे माधवी के रूप मे लेखक कहता है पुरुष जाति के स्वाथ और दम्भ भरी मूखता से ही सारे पापो का उदय होता है। उसक स्वाथ के कारण ही उसका अर्धांग नारी जाति पीडित है। एकागी दष्टिकोण मे सोचने क कारण ही पुरुष न तो स्त्री का सती बना कर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर हो। " नारी क रूप म न्याय रो रहा है।[3] इसी प्रकार तलाक, अनमेल विवाह सयुक्त परिवार व्यवस्था की टूटन आदि के मूल म भी यही व्यक्ति गत और सामाजिक हितो का असामजस्य है। वस्तुत आज की सामाजिक व्यवस्था ही इतनी दोषपूण है, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक रूढियो में, कतिपय निहित स्वाथ वाले व्यक्तियों तथा वर्गों द्वारा, वह इस प्रकार जकड दी गई है कि नाना प्रकार की विकृतिया उभर उभर कर न केवल व्यक्ति के जीवन को नरक बना रहा हैं वरन एक सही सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में भी बाधक हैं। लेखक का यह निष्कष है कि "नारी होना आज की सामाजिक स्थिति मे अभिशाप है। स्त्री और पुरुष आम तौर पर एक दूसरे की इज्जत नही करते हैं। स्त्री आम तौर पर आर्थिक दृष्टि से पुरुष की आश्रिता है, उसका व्यक्तित्व स्वतन्त्र नही। इस देश की स्त्रिया सदा से यह दुःख उठाती आई हैं। सीता को भी सहना पडा था, द्रौपदी को भी।"[4]

प्रेम अथवा विवाह के प्रश्न को लें-सामती-पूजीवादी समाज व्यवस्था में प्रेम और विवाह भी भोग और विलास में बदल गये हैं। व्यक्तिगत स्वाथ यहाँ भी सामाजिक स्वाथ पर हावी है। प्रेम के मायाजाल में फस कर-नारी पुरुष के अनाचारों का शिकार होती है और अतत वह नारकीय जीवन व्यतीत करती है। कनकन्या के माध्यम से नागर जी नाना नारियों को सावधान करते हैं कि प्रम का महाजाल जा पुरुष वग द्वारा फैलाया गया है उससे दूर रह-"वे बहनें जो स्कूलो और कालेजा म पढती-पढाती हैं, वे जो घरों की-

१—बूद और समुद्र – पृ० १११। २—बूद और समुद्र – पृ० १११।
३—सुहाग के नूपुर – पृ० २६७। ४—वही " – पृ० ४३७।

चहारदीवारी में बन्द हैं, उन सबसे मेरा सत्याग्रह भरा निवेदन है कि 'प्रेम' शब्द के साथ फली हुई नारी विरोधी जिस गंदी तस्वीर को जनसमाज आज अपनाये हुये है, उससे सांप के फन की तरह दूर रहें। हजारों वर्षों के इतिहास में अधिकतर समाज ने नारी के साथ हर तरह से खेल कर, रस लेकर सदा उसे पैरों तले रौंदा है, जीते जी जलाया है। 'प्रेम' शब्द का लुभान वाला मायाजाल फैला कर स्त्री की मर्जी को पुरुष बड़ी खूबसूरती के साथ झटला लेता है। बेचारी भोली भाली स्त्री समझती है कि पुरुष उससे प्रेम कर रहा है जीवन भर दुख-सुख में वे दोनों एक दूसरे के आधार बनेंगे — पर क्या यही प्रेम है जो आज अमृत और कल हलाहल बन जाता है ? क्या यही प्रेम है जो हमारी एक-एक सांस में विष कर खून को आंसू का खारा पानी बना देता है। ' नागर जी सच्चे प्रेम के पक्ष में अवश्य हैं। वे एक स्तर पर प्रेम की महत्ता को स्वीकार करते हैं, दूसरे स्तर पर विवाह की पवित्रता को। उनके अनुसार प्रेम की परिणति विवाह में ही है। प्रेम की भांति अंतर्जातीय विवाहों की भी आज के समाज मे क्या स्थिति है ? उनका परिणाम अन्ततः क्या होता है इस पर अपना मत देते हुये 'अमृत और विष' उपन्यास के नायक अरविन्द शंकर कहते हैं- 'यह अंतर्जातीय विवाह आज के-सक्रांतिकाल में हमारे समाज द्वारा एक विचित्र स्थिति पैदा कर रहे हैं। पुराने जमाने की तरह इस विवाहों पर न तो कोई बिरादरी प्रभावपूर्ण प्रतिबन्ध ही लगा सकती है और न उसे सहज भाव से स्वीकार ही कर पाती है। ऐसे विवाह करने वाले युवक-युवती अपने आप को विद्रोही की सनक भरी स्थिति में पाते हैं और अपनी सनक में वे कुछ गलत काम भी कर जाते हैं। व्यक्ति समाज को गालियां देता है—उसे अस्वीकार करता है, और वह भी समाजवादी युग में, उफ, कैसी विडम्बना है।''[2] बूंद और समुद्र में सज्जन और वनकन्या के प्रसंगों द्वारा अनेक स्थलों पर प्रेम और विवाह के संबंध में लेखक ने अपने विचारों को स्पष्ट किया है।

मौजूदा समाज में फैला अंधविश्वास ऊँच-नीच का भाव, जाति-पाँति के भेद आदि विकृतियों का क्या कारण है ? लेखक का मत है, सैकड़ों सदियों के रहन-सहन, रीति बर्ताव और मान्यताओं को जो आज भौतिक विज्ञान के युग में एकदम अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं, हमारा समाज अंधनिष्ठा

१—बूंद और समुद्र – पृ० १४७-४८।

२—अमृत और विष – पृ० २४२।

के साथ अपनाये हुये है। हमारे घरों, गलियो में रमे हुये साधु, बरागी, फकीर हैं चडी पाठ करने वाले पडित, व्याह–मुडन जनेऊ से लेकर मृतक सस्कार तक कराने वाले पडित, कथा बाचने वाले पडित, शास्त्रार्थ करनेवाले पण्डित, भूत झाडने वाले ओझा-सयाने, सनीचर का दान लेन वाले भड्डरी, टोना-टोटका, दहेज, ऊ च-नीच तंतीम करोड देवता—यह बेमतलब दिमाग खराब करने वाली दकियानूस बातें भरी हैं। जन जीवन अधविश्वास और भ्रांतियो से जकडा हुआ है।'[1] लेखक के अनुसार इन अधविश्वासो का मूल कारण जन सामाय की व्यापक अशिक्षा है। न केवल जन सामाय वरन् एक स्तर पर पढ लिखे लोग तक इन विकृतियो का पोषण करते हैं। इन विकृतियों का दायित्व भी अतत एक गलत प्रकार का सामाजिक ढाचा है।

जहा तक राजनीतिक विचारो का प्रश्न है, नागर जी समाजवाद और प्रजातत्रीय व्यवस्था के हामी हैं। प्रजातत्र में राजनीतिक दल अनिवाय होते हैं और नागर जी इस अनिवायता को महसूस करते हैं। परन्तु इस सबध में उनका निष्कष है कि एक गलत सामाजिक ढाचे में ये राजनीतिक दल भी सही लक्ष्य पा सकने में असमय हो गये हैं। उनके दलगत स्वाय सामाजिक हितों से अभिन्न नही हो सके हैं। वनकन्या के माध्यम नागर जी ने इसी सत्य को स्पष्ट किया है– 'जसे फुटवाल का मच होता है राजनीतिक पार्टियों का सघष हूबहू वसा ही है। जनता फुटवाल है, मच उसी के नाम पर हो रहा है पोलिटिकल पार्टियो के खिलाडी ठोकरें भी उसी को लगा रहे हैं। जिस व्यक्ति की पीडाओ का सामूहिक रूप में दशन कर ये राजनीतिक सिद्धात बने हैं, उनकी अनुभूति उनकी तडप भी अब हमारे मन से निकल गई है। हमारी नजर अब सिफ पोलिटिकल रह गई है। कोल्हू के बैल की तरह आदत के कारण चक्कर काटते चले जा रहे हैं।'[2] नागर जी का मत है ये राजनीतिक दल ही समाज और जन जीवन में अविश्वास और भ्रम फलाते हैं। सही रूप में आज कोई भी राजनीतिक दल प्रगतिशील नही है। सज्जन के माध्यम से नागर जी अपने विचार यो व्यक्त करते हैं—'हमारे आज के लोक जीवन में फले अविश्वास का दूसरा कारण आज की राजनीतिक पार्टिया हैं। राजनीति जिस रूप में आज प्रचलित है, वह तनिक भी प्रगतिशील शक्ति नही है। राजनीति केवल दाव-पेचों का अखाडा है। मानव हित के आदश से हीन,

---

१— बूद और समुद्र– पृ०– ६०४। २— बूद और समुद्र– पृ० १३२–३३।

व्यक्तिगत अहकार के कारण राजनीति मे खिलाडियो की वृद्धि चतुराई और कार्य कुशलता बढ गई है। वतमान राजनीति का जन्म साम्राज्यवाद से हुआ है। उसी साम्राज्यवादी नीति से औद्योगिक पूजीवाद को शक्ति प्राप्त हुई है। उस शक्ति और जन हित का बर स्वाभाविक है। साम्राज्यवाद चाहे पूजीवाद की हो, राष्ट्रवाद, जातिवाद, धर्मवाद की हो सरया गलत है।
इस देश की प्रतिक्रियावादी राजनतिक शक्तिया भारतीय परम्पराओ को केवल रूढियो में देखती हैं तथाकथित प्रगतिशील शक्तियाँ भी अपना देश को केवल रूढियो ही में पहचानती हैं उनको प्रगतिशील परम्पराओ की जानकारी उन्हे नही है या बहुत कम है।[1] इस प्रकार नागर जी के विचार किसी भी राजनीतिक दल के प्रति आस्थावान नहा है। सभी दल आदर्शों और सिद्धा तो की आड लेकर कुचक्रो, स्वार्थो छल प्रपच तथा बईमानी से जनता का शिकार कर रहे हैं। सभी दलो का सबध समष्टिगत कल्याण पर आधारित न होकर व्यष्टिगत स्वार्थों पर टिका है।

इसी प्रकार आज के समाज म व्याप्त अराजकता और दिशाहीनता का कारण भी वतमान मूल्यहीनता ही है। पुराने मूल्य टूट रहे हैं परन्तु नये मूल्यों का निर्माण नही हो पा रहा है। अपनी बनाई हुई रूढियों मे व्यक्ति और समाज दोनों घुट रहे है। अमृत और विष उपन्यास म जिस मूल्यहीनता की चर्चा लेखक ने की है उसका दायित्व उसने व्यवस्था की इसी असगति पर डाला है।

समूचे उपन्यासो घूम फिर कर तमाम समस्याओ की एक समस्या, व्यक्ति और समाज के असामजस्य और फलत एक सही सामाजिक व्यवस्था के अभाव पर, आकर टिक जाती है। एसी स्थिति में यदि कहा जाय कि सामाजिक स्तर पर नागर जी ने अनेक समस्याओ का सदभ लेते हुए मूलत इसी समस्या पर विचार किया है, तो अनुचित न होगी।

चिन्तन का आध्यात्मिक सदभ–

इस विभाग के अन्तगत हम विविध प्रकार की समस्याओ पर विचार के क्रम मे सामने लाये गये समाधानो की चर्चा कर सकते हैं। हम पहले ही

१— बूद और समुद्र– पृ० ६०४–६०५।

कह चुके हैं कि नागर जी के साहित्यकार व्यक्तित्व का निर्माण भारतीय अध्यात्म और आधुनिकता दोनों के ही ताने-बानों से हुआ है। नागर जी एक मानवतावादी चिन्तक है और अतिवादों को छोडते हुए उन्होंने भारत तथा पश्चिम से अनुकूल आध्यात्मिक और वैज्ञानिक प्रेरणायें लेते हुये अपने इसी मानवतावाद को पुष्ट किया है। व्यक्ति और समाज के बीच पाये जाने वाले असामंजस्य की जिस मूलवर्ती समस्या को उन्होंने उठाया है उसका समाधान इसी मानवतावादी भूमि पर किया है। वस्तुत वे एक ऐसी समाज व्यवस्था अथवा सामाजिक सगठन के आकांक्षी हैं जहा व्यक्ति और समाज के हितो मे पारस्परिक सामजस्य हो। व्यक्ति का हित समाज के हितो से पृथक न हो, और समाज-हित अपने साथ व्यक्ति के हित को लेकर चले। उनकी यह दृढ मान्यता है कि व्यक्ति और समाज के बीच की यह अभिन्नता ही एक स्वस्थ सामाजिक सगठन को जन्म दे सकती है। प्रश्न उठता है कि व्यक्ति और समाज के हितो के बीच यह सामजस्य स्थापित किस प्रकार हो ? 'बूद और समुद्र' उपन्यास म महिपाल के द्वारा नागर जी ने अपने ही विचारों को इस प्रकार प्रकट किया है "व्यक्ति और समाज दोनों ही दोष पूर्ण हैं। जब तक समाज नही बदलता तब तक व्यक्ति बेचारा क्या करेगा ? चरित्र का चरित्र पर प्रभाव पडता है। जब तक बहुत से चरित्र न बदलें, समाज का ढांचा न बदले तब तक व्यक्ति बेचारा ?

व्यक्ति से समाज का निर्माण होता है और समाज द्वारा व्यक्ति का का पोषण। व्यक्ति स समाज के समन्वय का यही मूलभूत आधार है।"[१] यहां लेखक का इस बारे मे यह भी सकेत है कि व्यक्ति को वैयक्तिक भूमिका न ग्रहण करनी चाहिये। उस समाज म यह देखकर चलना चाहिये कि उसके साथ अन्य व्यक्ति भी हैं, उनके भी सुख-दु ख, आशाए, आकाक्षाए है। दूसरे के सुख-दु ख, आशाओ-आकांक्षाओ को व्यक्ति अपना समझकर उसम सक्रिय सह योग दे, तभी व्यक्ति पारस्परिक एकता में बधेंगे और समाज की स्थिति भी सुदृढ होगी। 'बूद और समुद्र' म एक स्थल पर महिपाल के पत्र के माध्यम से लेखक के विचार द्रष्टव्य हैं—" व्यक्ति व्यक्ति अवश्य रहे पर उसके व्यक्ति-वादी चिन्तन मे भी सामाजिक दृष्टिकोण का रहना अनिवार्य हो। दु ख सुख, शांति-अशांति आदि व्यक्तिगत अनुभव है पर य समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हैं। अतएव हमें मानना चाहिये कि समाज एक है–व्यक्ति तो अनेक हैं। सूर्य-चद्रमा धरती यह सब एक-एक हैं भले ही अनेक तत्वो से इनका निर्माण हुआ हो।"[२]

१— बूद और समुद्र– पृ० ४५५। २— बूद और समुद्र– पृ० ६०३।

'बूंद और समुद्र' उपन्यास में बूंद और कुछ नहीं, व्यक्ति ही है और समुद्र समाज का ही प्रतीक है। जिस प्रकार समुद्र में प्रत्येक बूंद का अस्तित्व है उसी प्रकार समाज में व्यक्ति का ही अस्तित्व है। बूंद बूंद मिल कर विशाल समुद्र का निर्माण करती है अर्थात व्यक्ति-व्यक्ति मिलकर ही एक समाज का निर्माण होता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार समुद्र में बूंद का महत्व है उसी प्रकार समाज में व्यक्ति का। लेखक का कहना है कि व्यक्ति को महत्व हीन न समझा जाय, और न ही उसका किसी प्रकार दुरुपयोग हो। 'बूंद और समुद्र' में बाबा रामजी दास लेखक के इसी विचार को स्पष्ट करते हैं। 'हर बूंद का महत्व है क्योंकि वही तो अनन्त सागर है। एक बूंद भी व्यर्थ क्यों जाय? उसका सदुपयोग करो।'[1] परन्तु यही प्रश्न उठता है कि कैसे हो यह सदुपयोग? कैसे यह बूंद अपने आपको महासागर अनुभव करे? इस विशाल जन सागर में वह नितांत अकेली है। उसका कोई अपना नहीं। इसी प्रकार व्यक्ति भी अपनी छोटी छोटी सीमाओं में रहता हुआ भी एक दूसरे से अलग है। बूँद यदि बूँद से शिकायत रखती है तो उससे कहीं अलगाव भी अवश्य रखती है। तब यह सागर कैसा, जिसमें हर बूंद अलग है? इसी प्रकार यदि व्यक्ति भी इतना अलग है, तो समाज क्यों बघता है? यह विरोधाभास लेकर मानव का सामूहिक जीवन कैसे चल सकता है? बूँद का सदुपयोग कैसे हो,[2] उक्त प्रश्नों के समाधान हेतु लेखक ने अपने विचार 'बूंद और समुद्र' में सज्जन के माध्यम से यों प्रकट किये हैं– मनुष्य का आत्म विश्वास जागना चाहिये, उसके जीवन में आस्था जागनी चाहिए। मनुष्य को दूसरे के सुख-दुख में अपना सुख–दुख मानना चाहिए। विचारों में भेद हो सकता है, विचारों के भेद से स्वस्थ द्वन्द्व हो सकता है और उससे उत्तरोत्तर उसका समन्वयात्मक विकास भी। पर शर्त यह है कि सुख-दुख में व्यक्ति का व्यक्ति से अटूट संबंध बना रहे– जैसे बूंद से बूंद जुड़ी रहती है लहरों से लहरें। लहरों से समुद्र बनता है–इस तरह बूंद में समुद्र समाया है।"[3] नागर जी की पंक्तियां उनके समूचे विचार पक्ष और जीवन दर्शन का निचोड़ मानी जा सकती हैं। उन्होंने एक सजग और प्रबुद्ध मस्तिष्क द्वारा तमाम समस्याओं की तह में जाने की कोशिश की है और समस्याओं के ऊपरी समाधान के स्थान पर उनके ऐसे समाधान की बात की है, जो स्थायी समाधान बन सके।

१–बूँद और समुद्र पृ० ३८८। २–वही पृ०–३८८।
३–बूँद और समुद्र–पृ० ६०६।

इसके अतिरिक्त नागर जी ने एक स्वस्थ सामाजिक संगठन के लिये समाज, राजनीति और धर्म सभी भूमियों पर एक सही मानवीय चेतना के विकास की आवश्यकता प्रतिपादित की है। अपने उपन्यासों में वे ऐसे पात्रों को लाये हैं जो इस मानवीय चेतना का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं अथवा उसी माध्यम से अपनी समस्याओं का समाधान पाते हैं। उनकी यह मानवीय चेतना, परम्परा तथा आधुनिक वैज्ञानिक जीवन दृष्टि दोनों की ही रेखाओं से परिपुष्ट है। सेवा प्रेम त्याग और सहिष्णुता उसके मूल तत्व हैं। मनुष्यता ही उसकी आधार शिला है। 'बूंद और समुद्र' के बाबा रामजी दास लेखक की इस मानवीय चेतना के प्रतिनिधि पात्र बनकर सामने आये हैं। बाबा राम जी का मत है कि जब तक समाज में एक सही मानवीय चेतना नहीं जागृत होगी तब तक उसका विकास सम्भव नहीं। यह मानवीय चेतना ही समस्त लोक को अपने प्रकाश से आलोकित कर अंधकार को दूर कर सकती है। हमें अपना आत्म विश्वास नहीं खोना चाहिये। बाबा जी का कहना है 'इस समय वैसा ही समुद्र-मन्थन हुइ रहा है राम जी, जैसा कि पुराणों में लिखा है। देवी और असुरों की विचारधारा मन समुद्र को मथ रही है। जो अनुभव हैं, वही रत्न हैं। भावना ही अमृत है और विष भी। वही लक्ष्मी है और रम्भा है। मन ही उच्चैश्रवा घोड़े के समान आत्मा की अति चंचल सवारी है। और वही ऐरावत हाथी के समान गंभीर सवारी भी है। आत्मा ही ब्रह्मा, व विष्णु और महेश है। ब्रह्मा के रूप में वह अनुभव की सृष्टि करता है विष्णु के रूप में वह अपनी सृष्टि की श्री को ग्रहण करता है और शिव के रूप में निष्काम जोगी बन सृजन और पालन के अहंकार का नाश करता है। हम तो आत्मा के शिव रूप में सिद्धा रखते हैं राम जी हमारा यह अटल विश्वास है कि इस मंथन से विज्ञान के जो अनुपम रत्न निकल रहे हैं, मानवता का व्यापक प्रचार हुइके चेतना का जो अमृत निकलेगा वह समस्त लोक को मिलेगा। और जौन ये स्वार्थपरता, अनाचार का कालकूट निकर रहा है तौन नीलकंठ परम सेवक हैं वो अपनी ड्यूटी से कभी नहीं चूकत।'[1] आज मनुष्य को सेवा व्रत अपनाने की अत्यन्त आवश्यकता है। सेवा करना—और सेवा लेना दोनों ही मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार हैं।[2] बाबा रामजी दास का स्पष्ट कहना है कि सेवा से बढ़ कर कोई दूसरा लक्ष्य नहीं। उनके अनुसार प्रत्येक मनुष्य को शिव संकल्प का सेवक होना चाहिये। अपने इस प्राकृतिक

१—बूंद और समुद्र—पृ० २६१। २—वही—पृ० २६४।

गुण को ग्रहण न करने वाला व्यक्ति सदा भमित मति का रहेगा ।[1] बाबा जी मनुष्यता मे विश्वास करते हैं मनुष्य ही जिनका ईश्वर है और मानव धर्म ही जिनका एक मात्र धर्म है। सेवा, त्याग, सहिष्णुता के साथ साथ बाबा राम जी प्रेम को भी उतना ही महत्व प्रदान करते हैं। उनके तथा लेखक के अनुसार प्रेम मे वह शक्ति होती है जो बडी से बडी हिंसा को भी निरुत्तर कर देती है। समस्त नातो में सारे सबधो मे प्रेम का नाता और प्रेम का सबध ही सबसे दृढ और महान है । परन्तु आज के व्यक्तिगत स्वार्थों के युग मे इसे स्वीकार कौन करता है ? हिंसा और घृणा के विषाक्त वातावरण मे मानवीय सबधो के बीच से प्रेम का जसे लोप होता जा रहा है। परन्तु बावजूद इस स्थिति के लेखक स्पष्टत अपने विचारो को प्रकट करता है–'ये प्रेम का नाता बडा अजब है। अपनी भौतिक मर्यादाओं, भावनाओ तक का तो ऊचा उठना मेरी समझ मे आता है। मगर जहा ये समस्त भावनायें एकमेव प्रेमभाव के रूप म ही प्रकट हों विकसित हों, जूझें और अपनी जूझ में हर बार छलाग मार कर नई दहाइयो तक अदम्य, अबाध रूप से बिजली सी कौधती हुई दौडकर बढ़ती हो, वहाँ उनकी शक्ति क्या कहू कुछ अजब अलौकिक हो जाती है।'[2] प्रेम की महत्ता को और अधिक स्पष्ट करने के लिये लेखक तमिल वेद तिरुक्कुरल के वाक्य का उद्धरण देते हुए अपने विचार यों प्रकट करता है 'जो प्रेमी नही वे अपने स्वार्थ को छोड कर और कुछ नही जानते । वे अपने ही अर्थ साधन मे लीन रहते हैं परन्तु जो प्रेमी हैं वे परहित साधन मे अपनी हड्डिया तक अर्पित करने को तत्पर रहते हैं।'[3]

इस प्रकार नागर जी का विचार है कि जब तक व्यक्ति मे सेवा भाव का जन्म न होगा, सच्चे प्रेम का उदय न होगा, त्याग वृत्ति विकसित न होगी तब तक न तो समाज-व्यवस्था ही सतुलन पा सकती है और न ही सही मानवीय चेतना का विकास हो सकता है। इसी मानवीय चेतना के सदर्भ में ही सही समाजवाद की कल्पना की जा सकती है–'बूद और समुद्र' में नागर जी ने बाबा राम जी के तथा 'अमृत और विष' मे अरविंद शकर के माध्यम से अपने इन्हीं विचारों को पुष्ट किया है। बाबा राम जी दास बातचीत के क्रम मे

१—बूद और समुद्र-पृ० २६३ । २—अमृत और विष-पृ० ४३८ ।
३—अमृत और विष-पृ०४३९ ।

जब कनल और सज्जन के समक्ष उपेक्षितो और पीडितो के लिये आश्रम खोलने की बात कहते हैं तो कनल को उनकी योजना पर आपत्ति होती है। वह बाबा राम जी से कहता है कि 'आसरम फासरम मे अब किसी का बिसवास नही रहा।'[१] बाबा राम जी कनल की आपत्ति को स्वीकार करते हैं परन्तु दूसरे ही क्षण उससे कहते हैं "इस शब्द से लोगों को चिढहो तो कोपरेटिव, सहकारी सघ, कम्पनी जो चाहें सो नाम दीजिये। हमें नाम से नही, काम से मतलब है इन तीन लाख म आप जदि कुटीर उद्योग बढ़ाय कर नगर के पुरुषो को महाजिन्दों की फासी और बेईमानियो से बचाय सकें तथा स्त्रियो को अपनी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए महिलाश्रम जसी सस्थाओ से बचाने के साथ साथ इनका नतिक अस्तर ऊँचा कर सकें, तो बहुत बडा काम हो जाएगा राम जी।'[२] वे कनल से यह भी स्पष्ट कहते हैं कि बठा कर खिलाना हमारे सिद्धान्त के विरुद्ध है राम जी। ड्यूटी करें औ पेट भर भोजन पाव, इसके लिए उद्योग कीजिए।"[३] चलते चलते वे सज्जन स यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि 'राम जी, खरा समाजवादी वही है जो दूसरों के लिए जिये-जिये और जीने देय।'[४] बाबा राम जी दास का दृष्टिकोण मूलत अहिंसावादी है। उनक उस सदश मे गाधीवादी चिन्तन अथवा विचारधारा जो दूसरे रूप मे मानवतावादी जीवन दशन है, प्रतिबिम्बित होती है।'[५]

नागर जी का उपयुक्त चिंतन कतिपय व्यक्तियों को सामाजिक समस्याओ का वयक्तिक समाधान प्रतीत हो सकता है, परन्तु बात ऐसी नही है। नागर जी अपने द्वारा प्रस्तुत किये गए इस समाधान की असगतियो से परिचित हैं, परन्तु उनका यह भी दृढ विश्वास है कि यदि सही रूप से इसका आचरण किया जाय तो वतमान परिस्थितियो म इससे अधिक तात्विक और कोई बात नहीं हो सकती। आवश्यकता आत्म विश्वास और आस्था की है। यह आस्था और आत्म विश्वास उन्हे मिल सकता है जो इस वस्तुत पाना चाहते हैं। 'अमृत और विष' के अरविंद शकर इसे प्राप्त करते हैं। नागर जी का यह समाधान इस कारण भी बहुत हवाई नही प्रतीत होता कि उन्होने उसे सदव ही एक क्रियात्मक सन्दभ सयुक्त रखा है। वे अन्याय अनाचार, स्वयपरता

१—बूद और समुद्र—पृ० ५६६। २—बूद और समुद्र—पृ० ५६७।
३— " पृ० ५६६। ४— " पृ० ५६७।
५—हिन्दी उपन्यास—डा० सुषमा धवन—पृ० ७९।

और पशुता की प्रवृत्तियों से अपनी दृष्टि ओझल नहीं करते वरन उनसे जम कर संघर्ष करने की बात करते हैं। संघर्ष की भूमिका में ही वे व्यक्ति में इस मानवीय चेतना को जन्म देखते हैं। पाचू गोपाल महाकाल उपन्यास में घर वापस लौटता अवश्य है परन्तु स्वार्थी शक्तियों से संघर्ष करने का संकल्प लेकर। अरविन्द शंकर भी निरन्तर कर्म में अपनी और व्यक्ति की सार्थकता मानते हैं। अन्याय का प्रतिकार उनका भी लक्ष्य बनता है। 'बूँद और समुद्र' में पात्र भी रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हैं। यह अवश्य है कि नागर जी ने इस संघर्ष को अतिवादी भूमियों पर न ले जाकर एक ऐसी परिणति की ओर उन्मुख किया है जो भारतीय परम्परा से मेल खाती है।

यही नागर जी का मानवतावादी समाधान है, यही उनका कर्मवाद है और यही उनका समाजवाद है। यह एक स्तर पर जितना ही भौतिक है उतना ही आध्यात्मिक, जितना ही आध्यात्मिक है उतना ही मानवीय। इसका सम्बन्ध किसी अलौकिक भूमिका से नहीं है। एक स्तर पर कहना चाहें तो कह सकते हैं कि नागर जी ने अपने इस समाधान में गांधीवाद और समाजवाद दोनों का समन्वय किया है। साम्यवाद को अहिंसा का जनेऊ' पहनाने वाली जो बात 'बूँद और समुद्र' में नागर जी ने कही है वह उनकी सही विचारणा है। इस भूमि पर नागर जी समाजवादी होते हुए भी गांधीवादी हैं और साम्यवादी होते हुए भी अहिंसक हैं। उनमें खरी वर्ग चेतना है परन्तु इस वर्ग चेतना को उन्होंने व्यापक मानवतावाद में घुला-मिला दिया है। नागर जी, जैसा कि कहा गया समस्त प्रकार के अन्याय अत्याचार और शोषण के विरोधी हैं। वे धार्मिक, सामाजिक, नैतिक सभी प्रकार की रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह चाहते हैं। वे नारी को आर्थिक रूप से स्वतन्त्र देखना चाहते हैं, समाज में पुरुष के समकक्ष ही उसकी प्रतिष्ठा चाहते हैं। धार्मिक पाखण्डों से उन्हें घृणा है, जाति-पाँति, छुआछूत, हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिकता ऊँच नीच का भेद भाव आदि उन्हें कतई सह्य नहीं है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्थल-स्थल पर इन विकृतियों और उनके जिम्मेदार व्यक्तियों तथा संस्थाओं की पोल खोली है। राजनीतिक अवसरवादिता हो अथवा थोथा समाज-सुधार दोनों ही उनके आक्रोश का लक्ष्य बने हैं। वे चाहते हैं कि समाज तथा जीवन की प्रगति में बाधक इन समूचा विकृतियों के प्रति प्रत्येक व्यक्ति के मन में एक आक्रोश का जन्म हो, व्यक्ति-व्यक्ति उनके उन्मूलन के लिए सक्रिय हो, परन्तु वे इस आक्रोश को हिंसा अथवा अराजकता की दिशाओं में नहीं जाने देना चाहते। इसलिए उन्होंने सेवा, प्रेम और त्याग जैसी भूमिकाओं पर बल

दिया है। इसे उनका आदर्शवाद कहा जा सकता है, परन्तु भारतीय चेतना से अनुप्राणित नागर जी इस आदर्शवाद को छोड़ने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं।

निष्कर्ष—

नागर जी के समूचे चिन्तन के बीच से उनके जीवन दर्शन का जो सार तत्व सर्वाधिक ज्वलन्त बनकर उभरता है उसका सम्बन्ध उनकी आस्था से है। जीवन की विषमताओं से, उसकी विरूपता से सक्रिय संघर्ष और एक स्वस्थ जीवन तथा उज्ज्वल मनुष्यता के प्रति आस्था उनकी मानवीय चेतना का सबसे प्रधान अंग मानी जा सकती है। इस आस्था का सम्बन्ध उनकी सजग सामाजिक चेतना से है और इसे उन्होंने 'विचारों और रीतिरिवाजों के महान अजायबघर' भांति भांति की रूढ़ियों और परम्पराओं में जकड़े भारतवर्ष के जन जीवन से प्राप्त किया है। देश की सामान्य जनता के साथ उनकी अभिन्नता ही है जिसने उन्हें वर्तमान सारी अराजकता, सारे मूल्यगत विघटन और परिस्थितियों की सारी कटुता के बीच भी साहस के साथ खड़े रह सकने की शक्ति दी है तथा उनके मन में मनुष्यता के उज्ज्वल भविष्य के एक स्वप्न को भी मूर्त किया है। नागर जी निषेधवादी लेखक नहीं हैं। समूचे अमृत और विष के साथ वे जीवन को स्वीकार करते हैं और यह स्वीकृति उनके चिन्तन की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। वे कर्म और संघर्ष के द्वारा सेवा त्याग और प्रेम का आधार लेकर जीवन के समूचे विष को अमृत में बदल देने के लिये आस्थावान हैं, और कथाकार के नाते उनका संदेश भी यही है। वे उपदेशक नहीं हैं, वरन् सिद्धान्तों को व्यावहारिक जीवन में उतारने वाले कर्मवादी हैं। लेखक अरविंद शंकर के रूप में ये नागर जी ही हैं जो परिस्थितियों की सारी कटुता को झेलते हुए अन्ततः सारे आंतरिक और बाह्य संघर्ष के बीच एक विजयी के रूप में सामने आते हैं। यह कर्मवाद और आस्था वस्तुतः उनके समस्त जीवन दर्शन का निचोड़ है। एक समाज शास्त्रीय विचारक होने के नाते उन्होंने वर्तमान जीवन की सारी असंगतियों को बारीकी से जांचा परखा है और इसी क्रम में आस्था की उपलब्धि की है। यदि यह समाजशास्त्रीय दृष्टि उनके पास न होती तो वे अनास्थावादी भी हो सकते थे। परन्तु ऐसा वे नहीं हो सके। उन्होंने उपन्यासों में यह भी स्पष्ट किया है कि यदि समाज में ऐसी अंधकारपूर्ण परिस्थितियां हैं जो संगठित होकर समूचे मानव जीवन को विष में बदल देना चाहती हैं, तो इसी समाज में प्रकाश की वे किरणें भी हैं जो अंधकार से संघर्ष करते हुये [illegible]

को अमृत में बदल देने के लिये सकल्प बद्ध हैं। प्रकाश की इन किरणों को बड़े बड़े ज्ञाने वालों के जीवन म नहीं, जन सामान्य के जीवन में देखा जा सकता है जो भारत की आत्मा है। नागर जी ने अन्धकार और विष से आखें न चुराकर प्रकाश और अमृत की नवियों से अपना तादात्म्य किया है जिसके फलस्वरूप ही उन्हें यह आस्थावादी जीवन दृष्टि प्राप्त हुई है। अपनी इस आस्था के माध्यम से व सघर्ष और आग बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। 'दुनिया अब अपने पूर्व रूप से बिल्कुल भिन्न हो चली है। विश्वात्मा अब अपने आपको नये नतिक सौन्दर्य के धरातल पर उतार रहा है। मनुष्य अंतरिक्ष में उड़ने लगा है फिर भी तमाम जड़ बन्धन मौजूद हैं मोह और लिप्सायें अब भी विद्यमान हैं इन अज्ञान के प्रतीकों से जूझे बिना ही रह जाऊ विश्राम करू या मर जाऊ ? जड़ चेतन मय, विष अमृत मय अन्धकार प्रकाशमय जीवन में न्याय के लिये कर्म करना ही गति है। मुझे जीना ही होगा, कर्म करना ही होगा। यह बन्धन ही मेरी मुक्ति भी है। इस अन्धकार ही में प्रकाश पाने के लिए मुझे जीना है।"[1] यह आस्था नागर जी के चिन्तन की वह पूजी है जो उन्हें प्रेमचन्द्र और निराला की परम्परा से जोड़ती है।

---

[1]– अमृत और विष-पृष्ठ ७१६।

अध्याय-१०

कला और शिल्प

•

- रचना प्रक्रिया
- कथा-शिल्प
- चरित्र शिल्प
- भाषा-शैली
- कथोपकथन
- देशकाल, वातावरण तथा स्थानीय रंगत
- निष्कर्ष

कला और शिल्प—

साहित्य में वस्तु तत्व की भांति कला और शिल्प का भी अपना विशिष्ट महत्व होता है। कोई साहित्यिक कृति वस्तु तथा विचार तत्व की वाहिका होते हुए भी एक कलात्मक रचना भी होती है। मूलत वह एक कलात्मक सृष्टि ही है, जो कलाकार की अपनी संवेदनाओं अनुभवों तथा चिंतन को इस रूप में पाठकों तक सम्प्रेषित करती है कि पाठक सहज ही उससे एक तादात्म्य का अनुभव करता हुआ इच्छित आनन्द तथा संतोष प्राप्त करता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कला के आवरण में प्रस्तुत की गई संवेदनाएं तथा विचार कण ही साहित्य को साहित्य बनाते हैं और उसे स्थायी महत्व भी प्रदान करते हैं। जिस प्रकार कोरे कला और शिल्प के बल पर श्रेष्ठ साहित्य की रचना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार कोरा अनुभव तथा चिन्तन भी लिपि बद्ध होकर श्रेष्ठ साहित्य की संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकता। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य के अन्तर्गत कला और शिल्प दोनों की अपनी महत्वपूर्ण भूमिका होती है और एक ईमानदार रचनाकार रचना के क्षण दोनों के प्रति सजग रहता है। वस्तु तथा कला तत्व का औचित्य पूर्ण संतुलन प्रस्तुत करने वाली कृति ही सही मानें में सच्ची कला कृति का गौरव पाती है और देश विदेश के महान साहित्यकारों का प्रयास भी इसी संतुलन की उपलब्धि की ओर रहा है।

पिछले अध्याय में हम स्पष्ट कह चुके हैं कि अपने उपन्यासों की रचना के दौरान नागर जी ने कला और शिल्प को अतिरिक्त महत्व न देकर उसे वस्तु की अभिव्यक्ति के प्रभावशाली माध्यम के रूप में ही ग्रहण किया है। इस सम्बन्ध में वस्तुत उन्होंने मध्यम मार्ग ही अपनाया है जो उचित भी है। चूंकि उनके पास पाठकों तक सम्प्रेषित करने के लिए अनुभवों संवेदनाओं तथा विचारों की एक महत्वपूर्ण पूंजी रही है, अत उनका प्रयत्न भी यही रहा है कि किस प्रकार वे अपनी कृतियों को अपने भोगे गये, देखे गये

तथा विचार किये गये जीवन के यथार्थ का ईमानदार और सही चित्र बना कर प्रस्तुत कर सकें। कला और शिल्प की भूमिका के प्रति उनका लगाव इसलिये रहा है कि उनकी कृतियां उनके अनुभूत यथार्थ तथा विचारों को सहेजते हुए भी कलात्मक सृष्टि बनी रह सकें। एक रचनाकार तथा विचारक के रूप में अतिवादों से दूर स्थल पर सजगता पूर्वक बचने वाले नागर जी ने यहाँ भी अतिवाद से बचने का प्रयत्न किया है, और उपन्यासकार के रूप मे उनकी सफलता का यह एक बहुत बड़ा कारण है। नागर जी के उपन्यासों के कला और शिल्प के इस विवेचन के अन्तर्गत हम निम्नलिखित भूमिकाओं पर उसके अध्ययन का प्रयास करेंगे—

१—कथा शिल्प।
२—चरित्र शिल्प।
३—भाषा शैली।
४—कथोपकथन।
५—देशकाल, वातावरण तथा स्थानीय रंगत।

उसके पहले कि हम क्रमशः इन विभागों के अन्तर्गत अपने विवेचन का प्रारम्भ करें, कुछ पंक्तियां नागर जी की रचना प्रक्रिया पर अपेक्षित हैं।

रचना-प्रक्रिया—

किसी रचनात्मक कृति के सही सौंदर्य से परिचित होने के लिये उसकी रचना प्रक्रिया का अध्ययन बहुत आवश्यक होता है। रचना-प्रक्रिया से हमारा तात्पर्य किसी कलाकृति की रचना के दौरान रचनाकार के समूचे सृजन-क्षणों से होता है। उसकी समूची मानसिक भूमिका यहां हमारी दृष्टि का विषय बनती है। वस्तुतः यह रचना के जन्म के पूर्व रचनाकार के मानस का अध्ययन है जबकि एक समूची की समूची कृति अभिव्यक्त होने के पहले उसके रचनाकार मानस में लिख जाती है। रचना प्रक्रिया की दृष्टि से जितना विचार पश्चिम मे हुआ है, उतना भारत मे नहीं। भारतीय आचार्यों ने कलाकृति सम्बन्धी अधिकांश विवेचन सहृदयता या सामाजिकता पक्ष के से ही किया है अर्थात् उन्होंने कला विवेचन का सूत्र उस समय से उठाया है जब कि कलाकृति मानस से गुजरती हुई सामने आ जाती है। कृति के जन्म के पूर्व रचनाकार के मानस उद्वेलन की भूमिकाएँ जहां वह कृति सबसे पहले एक आकार ग्रहण करती है, उनके विचार का विषय नहीं बनी हैं। हमारा तात्पर्य यहां हम—

विषय पर विस्तार म जन का नहीं है। हम केवल यही निर्देशित करना चाहते हैं कि किसी रचनाकार का मूल्यांकन करते हुय उसकी रचना प्रक्रिया के स्वरूप को समझना बहुत आवश्यक है। अनेक रचनाकारो ने स्वत अपनी रचना प्रक्रिया के विषय म पर्याप्त जानकारी दी है जबकि एसे रचनाकार भी हैं जो इस विषय म या तो मौन रह गय हैं या उसे ठीक स स्पष्ट नही कर सके हैं। वस्तुत रचना-प्रक्रिया आसानी स स्पष्ट हो जाने वाली वस्तु है ही नही रचनाकार के लिय भी और पाठक तथा आलोचक के लिए भी। जहा तक नागर जी का प्रश्न है इस सम्ब ध म उ होने बडी ईमानदारी से अपने मन की बात कही है। उनके अनुसार अपनी रचना प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिय मैं जब कभी प्रयत्न किया गया है तभी मेरा मन उल झाव के तरह तरह के प्रश्नो स भर उठा है। रचना-प्रक्रिया क्या हर बार एक ही जमी होती है ? विचार, भावना ए और कल्पनाए रहने हुये भी मन हर समय रचना करने के लिय प्रस्तुत क्यो नही होता ? कभी उत्तप्त उत्त जित और अशात मन भी अपने चरम बिन्दु को पाकर सहसा रचनात्मक हो उठता है, और कभी अडियल बल की तरह लाख उकसाये जाने पर भी टस से मस नहीं होता। इसका क्या कारण है यह बतलाना यदि असम्भव नही तो कठिन जरूर है। हर बार मैं अपने मन म एक नया जवाब बडी महनत से ढूढता हू, और आज तक बराबर ही यह अनुभव करता हू कि मेरा उत्तर पूरा नही हुआ। वहुत नान क समान नेति नेति ही कहना पडता है।[1] उदाहरण के लिये 'बूद और समुद्र' उपन्यास की सामूची सामग्री एकत्र करने के बाद भी और लिखने का बार बार प्रयत्न करने पर भी नागर जी ढाई-पौने तीन वर्ष तक उपन्यास नही लिख पाये। इतने समय के उपरात एक दिन शाम के समय एकत्र की गई सामग्री के आधार पर जब उनके मन में एक कहानी की कल्पना उभरी तो उसी के साथ ताई और फिर नदो, और फिर भभूती सुनार की बहुओ और तारा के चित्र उभरते चले गये। लेखनी जो चली तो चलती गई और कहानी की जगह पूरे 'बूद और समद्र' उपन्यास का जन्म हुआ।

आज जब लेखक वर्षो पहले के इस क्षण पर विचार करता है तो उसे समझ नही पडता कि वह कौन सा शक्ति थी जो उस अकस्मात उसका इच्छित

१–सीमात प्रश्नी–अमतलाल नागर अक–पृ० २२।

फल दे गई। "हो सकता है कि काफी अर्से तक तरह-तरह से बात पकते पकते उस स्थिति तक पहुंच गई थी जहाँ मेरी कल्पना मानो सब कुछ पचा कर अपने स्वतन्त्र विकास के लिये शक्ति पा गई थी। शायद भाव और विचार समस्थिति पाकर रचना करने लायक हो जाते हैं।"[1]

नागर जी के जीवन में कभी कभी ऐसे क्षण आये हैं कि रचना का 'मूड' नहीं है, परन्तु किसी बाहरी या भीतरी दबाववश व लिखने बैठ गये और बिना किसी प्रयास के एक अच्छी रचना बन गई। कभी कभी ऐसे क्षण भी आये हैं कि वर्षों पहले की कोई बात अचानक बेहोशी में सिलसिलेवार कागज पर उतरती चली गई। कभी कभी बौद्धिक अथवा तार्किक विवेचन के क्रम मे उनकी कल्पना स्फूत हो उठी है और उन्हे बराबर लिखने की प्ररणा देती रही है। 'शतरंज के मोहरे' उपन्यास इसी क्रम म लिखा गया है। कभी-कभी भोग गये यथार्थ जीवन के अनुभव, मन की अशान्ति और कशमकश के बीच चिन्तन के क्षण, अकस्मात उन्हे रचना की प्ररणा दे गये हैं और बिना किसी पूव योजना के ही एक पूरा का पूरा उपन्यास उनकी लेखनी से उतर गया है। *'अमृत और विष' उपन्यास का सत्य कुछ इसी प्रकार का है।*

हास्य और व्यग्य की रचनाए अधिकतर लेखक के हारे दुख-मारे क्षणों की उपज है। किसी भी कुठा को देर तक मन म न रख पाने के कारण ऐसे क्षणों में हास्य और व्यग्य की रचनाओ द्वारा लेखक ने अपनी मस्ती और विश्वास को *अर्जित करने का प्रयत्न किया है। लेखक के जीवन मे ऐसे क्षण भी आये* हैं जबकि कोई विचारपूर्ण लेख लिखते हुए अचानक उसे अधूरा छोड किसी दूसरी कहानी अथवा नाटक लिखने का विचार उनके मन में उत्पन्न हो गया है। एसा क्या हुआ, यह-बतलाना जितना लेखक के लिये कठिन है, उतना ही पाठक के लिये भी। समग्रत समूची रचना प्रक्रिया के सम्बन्ध में लेखक का यही कहना है कि 'लगता है कि एकाग्रता मन की ऊपरी सतहों को साधती है और एक ऐसी भी एकाग्रता है जो ऊपरी तौर पर विश्रृंखलित रहने के बाव जूद भीतर ही भीतर अचेतन मे कडी दर कडी सिलसिलेवार जुडती चली जाती है और अपना यह क्रम पूरा करते ही ऊपरी चेतना का अग बन कर सहसा उभर आती है। वैज्ञानिक भाषा में तो अब भी कहते नहीं बनता पर एसा लगता

१— सीमात प्रहरी— अमृतलाल नागर अक— पृ० २३।

है कि कल्पना जब भाव और अभाव दोनों ही स्थितियों में छूट कर समस्थिति में आती है तभी मन रचना करने लायक होता है। रचना प्रक्रिया मनुष्य के चौथे आयाम से ही उठती और सचालित होती है।'[१]

रचना प्रक्रिया के सबंध में लेखक के इस कथन से हम उनकी कृतियों के भीतर गहराई से पठने के क्रम में कुछ सहायता मिलती है। उनकी कुछ रचनाओं के निर्माण के ऐसे सूत्र भी हमें मिलते हैं जो उनकी कला और शिल्प के विवेचन में आगे हमारे पथ को सुलभ करेंगे।

कथा शिल्प–

उपन्यास लेखन की कतिपय अत्याधुनिक प्रवृत्तियों को छोड़ दिया जाय जिनमें कथा-तत्व को एकदम अमहत्वपूर्ण घोषित कर दिया गया है तो उपन्यास रचना की सामान्य भूमि आज भी कथा तत्व की प्रमुखता पर बल देती है। उपन्यासों का यह सर्वाधिक साधारण किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जिसमें सामान्यतः आकर्षक घटनाओं का कुशल संगुम्फन होता है।[२] सच पूछा जाय तो कथा तत्व के अभाव में उपन्यास का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है।[३] आधुनिकतम प्रवृत्तियों वाले उपन्यासों तक में देखा जाय तो किसी न किसी रूप में कथा तत्व की स्थिति हमें अवश्य ही दिखाई पड़ेगी। कथानक की महत्ता के बारे में अपना मत देते हुए आचार्य भगीरथ मिश्र ने अपनी काव्यशास्त्र शीर्षक पुस्तक में लिखा है कि यद्यपि आधुनिक काल में कथानक का महत्व कम समझा जाता है पर यह उपन्यास का मूल है। उपन्यास में प्राप्त कुतूहल का तत्व कथानक के सहारे ही विकास पाता है। उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढांचे पर ही विकसित होता है। यह कारण भ्रान्त है कि उपन्यास में कथानक का कोई महत्व नहीं या सामान्य कथानक को ही वर्णन कौशल द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है।'[४] हमारे कहने का तात्पर्य यहां यही है कि कथा

१— सीमांत प्रहरी– अमृतलाल नागर अंक– पृ० २५।

2—' The most simple form of prose fiction is the story which records a succession of events generally marvellous '
—The Structure of the Novel Edwin Muir P 17

3—Aspects of the Novel E M Forester P 33 34

४—काव्य शास्त्र डा० भगीरथ मिश्र– पृ० ८३।

तत्व या कथानक उपन्यास रचना का एक अनिवार्य अंग है जिसके अभाव में उपन्यास रचना सम्भव नही है।

विद्वानो ने उपन्यास के अन्तर्गत पाये जाने वाले इस कथा तत्व की कई अनिवार्य विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। इस सबंध मे सबसे प्राथमिक महत्व कथानक की सबद्धता को दिया गया है। इस विषय में कुछ लोगो का यह कथन है कि चूंकि आज का मानव जीवन एक अनिश्चित और अनियोजित गति से प्रवहमान है, अतएव कथानक में भी किसी प्रकार की श्रृंखलाबद्धता तथा नियोजन की आवश्यकता नही है, सत्य नही प्रतीत होता है। उपन्यासकार का कार्य केवल अव्यवस्थित जीवन से घटनाओ अथवा परिस्थितियो का चयन मात्र न होकर, उन्हे एक व्यवस्था देना भी होता है और यह व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'कोई उपन्यास (या छोटी कहानी) सफल है या नही, इस बात की प्रथम कसौटी यह है कि कहानी कहने वाले ने कहानी ठीक-ठीक सुनाई है या नही अनावश्यक बातो को तूल तो नही दिया है। सौ बात की एक बात यह कि वह शुरू से अंत तक सुनने वाले की उत्सुकता जागृत रखने में नाकामयाब तो नही रहा।'[1]

कथानक की दूसरी विशेषता उसकी मौलिकता है। मौलिकता से तात्पर्य यह है कि उपन्यासकार ने उपन्यास में जो कुछ कहा है उसका सम्बन्ध उसके अपने जीवनानुभवो से है या नही। भोगे हुये जीवन का यथार्थ ही कथानक मे मौलिकता की सृष्टि करता है।

निर्माण कौशल तथा सत्यता कथानक की अन्य महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। सत्यता का सम्बन्ध भी यथार्थ जीवन के स्वानुभूत तथ्यो से है। यह सत्य है कि कथानक के निर्माण में कल्पना का भी योग होता है, परन्तु कल्पना की यह स्थिति स्वानुभूत तथ्यो के आकर्षक नियोजन मे होती है, न कि ऐसी घटनाओ के निर्माण में, जिनका यथार्थ जीवन से सम्बन्ध नही है। वही कल्पना सार्थक है जो यथार्थ की संगति में सक्रिय हो उससे विच्छिन्न होकर नही।

रोचकता कथानक की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। शिथिल कथातत्व

१— साहित्य का साथी— आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी— पृ० ८२।

वाला उपन्यास (Novel of loose plot) हो या सुगठित कथा-तत्व वाला उपन्यास (Novel of Organic Plot)—रोचकता का सम्बन्ध दोनों से है। वस्तुत यह रोचकता ही है जो पाठक को उपन्यास से आदि से अंत तक सम्बद्ध रखती है। यदि उपन्यास में कहानीपन नही है, और उस कहानीपन में रोचकता नही है, तो लेखक का बडे से बडा आयोजन भी प्रभाव हीन हो सकता है।

कथावस्तु की नाटकीयता भी उसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता है।[1] नाटकीयता से हमारा तात्पर्य कथावस्तु के समुचित विकास, उत्कर्ष चरम-स्थिति तथा समापन आदि के सम्यक नाटकीय विधान से है। इन विशेषताओं के अतिरिक्त कुछ सामान्य विशेषताएं भी निर्दिष्ट की गई हैं। उदाहरण के लिये कथानक में मानव जीवन की समस्याओं की व्याख्या होनी चाहिये, उसमें जीवन की विविध अवस्थाओं का चित्रण तथा जीवन पक्षों के महत्व का मूल्यांकन होना चाहिए। अनुभूति की पूर्ण अभिव्यक्ति भी नितांत आवश्यक है।

उपन्यास में कथावस्तु की स्थिति उसकी नियोजना तथा उसकी अनिवार्य तथा सामान्य विशेषताओं के इस उल्लेख के पश्चात जब हम नागर जी के उपन्यासों पर विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि जहाँ तक कथा तत्व का प्रश्न है नागर जी ने अपने उपन्यासों में उसे समुचित महत्व दिया है। वस्तुत यह कथा तत्व उन्हें प्रेमचन्द परम्परा से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ है। कहानीपन नागर जी के लिये भी उपन्यास की प्राथमिक शर्त है। उनके अनुसार चाहे उपन्यास हो, या रंग मंच, रेडियो अथवा फिल्मी नाटक, सबका आधार कहानी है। कहानी इन्सान की घुट्टी में पडी आदत है इससे कोई बच नही सकता, बतरस होना ही चाहिए।'[२] 'एंटी नावेल' तथा नई-नई शैलियों के प्रयोगों के युग में भी उन्होंने कथातत्व के प्रति पूरी सजगता बरती है और उसके लिये अपने कतिपय नव समान धर्माओं के द्वारा अपने ऊपर लगाए जाने वाले पुराने पन के आरोपों को भी सहर्ष स्वीकार किया है। उनके उपन्यास एक सम्पन्न कथा तत्व की सूचना देते हैं—ऐतिहासिक भी, और सामाजिक भी। आकार में उनके कुछ उपन्यास

1— The Craft of Fiction Percy Lubbock P 120
२—सीमांत प्रहरी—अमृतलाल नागर अंक—पृ० ३२।

बडे हैं और कुछ अपक्षाकृत लघ। 'बूद और समुद्र' तथा 'अमत और विष' वृहत आकार वाले उपन्यास हैं, और महाकाल' तथा सुहाग क नूपुर' छोटे आकार क। 'सठ बाकमल' अत्यधिक लघु आकार वाली कृति है और 'शतरज के मोहरे' उपन्यास की स्थिति, वहृत आकार और लघ आकार वाले उपन्यासो क बीच की है। आकार की इस लघुता अथवा विस्तार का सबध उनक कथा तत्व से ह। जिन उपन्यासो म उन्होने व्यापक सामाजिक जीवन तथा उसकी नाना समस्याओ का चित्रण किया है, व आकार म बड हो गय है, और जिनमे उन्होने जीवन के किन्ही खास अगो को अथवा किन्ही खास समस्याओ को उठाया है, व आकार मे लघु हैं। उदाहरण क लिए 'महाकाल उपन्यास मे बगाल का अकाल और उससे सम्बद्ध समस्या, तथा 'सुहाग क नूपुर' में नारी की आर्थिक पराधीनता की समस्या ही प्रमुख है। 'बूद और समुद्र' तथा 'अमत और विष' बडे चित्रपट वाले उपन्यास हैं।

जहा तक वहृत अथवा लघु आकार वाले इन उपन्यासो में कथा वस्तु के नियोजन का प्रश्न है नागर जी सामान्यत इस काय म सफल रहे हैं। लघु आकार वाले उपन्यासो में उन्हे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। उनमे घटनाए एव परिस्थितिया सुनियोजित हैं। कथा भी प्राय एक ही है। प्रासगिक कथाए लगभग नही हैं। एक ही प्रमुख कथा की स्थिति होने के कारण लेखक बड विश्वास के साथ कथा के सूत्रो को लेकर आगे बढता गया है और इस क्रम मे समस्या का विचारात्मक पक्ष भी बडी सफाई के साथ उदघाटित होता गया है। शतरज के मोहरे उपन्यास म घटनाए अधिक हैं। कुछ उपकथाए भी हैं परन्तु उनका नियोजन कुशलता स हुआ है। सारा उपन्यास एक सुव्यवस्थित कथा तत्व का आभास देता है। घटनाए परस्पर सबद्ध हैं। और प्रासगिक कथाए मूल कथा क साथ आगे बढ़ती हुई अतत उसम मिल गई हैं। वस्तु नियोजन सम्बन्धी प्रश्न बूँद और समुद्र' तथा 'अमत और विष उपन्यास क सन्दभ म अवश्य विचारणीय है। इन्हें शिथिल कथा वस्तु वाला उपन्यास तो नही कहा जा सकता, परन्तु इतना अवश्य है कि इनमें वस्तु योजना बहुत व्यवस्थित नहीं है। इन उपन्यासों की स्वतन्त्र विवचना करत समय हम इस तथ्य पर प्रकाश डाल चुके हैं, अत यहाँ पुनरावृत्ति आवश्यक नही समझते। सबसे बडा दोष इन उपन्यासो की वस्तु योजना में यह है कि लेखक ने अनावश्यक प्रसगो को बहुत विस्तार दिया है। इनम लम्ब-लम्बे वणन हैं, जस अमत और विष में रमश की बहन का विवाह-वणन, गोमती की बाढ का वणन, लच्छू की रस यात्रा आदि के प्रसग, पात्रो के उबारने

वाले वक्तव्य, जैसे 'बूंद और समुद्र' में महिपाल के माध्यम से दिये गये वक्तव्य आदि, तथा लेखक का असयमित चिंतन है। मूल-कथा और प्रासंगिक कथाएं परस्पर सबद्ध हैं परन्तु बीच-बीच में अनावश्यक वर्णन व्यवधान उपस्थित करते हैं। 'बूंद और समुद्र' के लिए यह बात विशेष रूप से कही जा सकती है। उसके संबंध में स्व० डा० देवीशंकर अवस्थी का कथन नितांत सत्य है कि नागर जी के विविध प्रश्नों तथा समस्याओं पर महत्वपूर्ण विचार हो सकते हैं उनका अध्ययन भी व्यापक है परन्तु एक ही कृति में इन सब विचारों तथा ज्ञान को रख देना कहां तक उचित माना जा सकता है।[1] हमारा तात्पर्य यहां केवल यही प्रदर्शित करना है कि वस्तु-योजना में नागर जी अपनी वृहत आकार की कृतियों में छोटे आकार वाले उपन्यासों की अपेक्षा कम सफल हैं।

जहां तक कथा तत्व की अन्य विशेषताओं का प्रश्न है, नागर जी के उपन्यासों में उनकी स्थिति दूर तक है। उनकी कथावस्तु मौलिक कथावस्तु है और सत्यता की शर्त को भी पूरा करती है। इसका प्रधान कारण उनकी अनुभव सम्पन्नता है। उन्होंने खुली आंखों तथा प्रबुद्ध मस्तिष्क से जीवन के जिस यथार्थ को देखा, समझा तथा सोचा है, उसे ही अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। लोक-जीवन में वे गहराई तक उतरे हैं और यही कारण है कि लोक जीवन की जितनी समृद्धि उनकी कृतियों में दिखलाई पड़ती है उतनी आज के अधिकांश उपन्यासकारों में विरल है। वस्तुतः इस दृष्टि से नागर जी अपराजेय हैं। उनके उपन्यासों की कथावस्तु के सम्बन्ध में अन्य बातें भले ही कही जायं, परन्तु जहां तक जीवन के यथार्थ के खरे चित्रण का प्रश्न है, अनुभूतियों की अकृत्रिम अभिव्यक्ति का प्रश्न है, उन पर उंगली नहीं उठाई जा सकती।

नागर जी के उपन्यासों की कथावस्तु सर्वत्र रोचक है। वृहत उपन्यासों में अपवाद रूप से पाये जाने वाले कतिपय नीरस प्रसंगों को छोड़ दिया जाय, तो वहां भी रोचकता का तत्व पूरी तरह विद्यमान है। वे कथातत्व के इस महत्व को भली भांति समझते हैं और इसीलिए उन्होंने उसके प्रति अपनी पूरी निष्ठा सूचित की है। यह रोचकता भी उसके कथातत्व में इसी कारण आ पाई है कि— उसका आधार वास्तविक जीवन है। वास्तविक जीवन के चित्र कभी अरोचक हो ही नहीं सकते और ऐसी स्थिति में तो विशेषकर, जबकि उनका सर्जक एक कुशल लेखनी का स्वामी भी है। उनके उपन्यासों में वर्णनों

१—सीमांत-प्रहरी अमृतलाल नागर अंक, पृ० ३२।

के अनावश्यक विस्तार कथा के प्रवाह मे बाधक भले ही बने, परन्तु जहा तक उन वर्णनो का प्रश्न है, उनकी रोचकता में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता। उत्सुकता का तत्व, ममस्पर्शी स्थल, पात्रो तथा लोक जीवन के आकर्षक रेखा-चित्र, सब के सब इस रोचकता की सृष्टि मे सहायक बने हैं। बूद और समुद्र' मे गली मुहल्लों का जो जीवन चित्रित किया गया है तथा सामान्य पात्रो की जिन जीवन चर्चाओं की स्थिति वहाँ है, उनकी रोचकता की सबने भूरि भूरि प्रशसा की है।

इस क्रम म हम नागर जी की एक सीमा का भी उल्लेख करेग। कभी-कभी अपनी कथा को रोचक बनाने के लिए अथवा उसम कुतूहल का तत्व लाने के लिए व अविश्वसनीय तथा जासूसी तिलस्मी उपन्यासो जैसे कुछ प्रसगो की अवतारणा करते हैं। 'बूद और समुद्र' मे बाबा राम जी दास के चरित्र म ऐसी ही अविश्वसनीयता क कुछ कण विद्यमान हैं। सज्जन को बाबा राम जी दास की आवाजें सुनाई पडना, महिलाश्रम का भडाफोड तथा 'अमृत और विष' में डाकुओं के पकडने के दृश्य तिलस्मी जासूसी उपन्यासो की याद दिलाते हैं। परन्तु य वणन अपवाद रूप हैं। अधिकाशत नागर जी की कथावस्तु विश्वसनीय घटनाओं पर आधारित है--और कल्पना के सयम की परिचायक है।

जहा तक नाटकीयता का प्रश्न है, नागर जी अपनी घटनाओ को चित्रमय बनाकर प्रस्तुत करने म सिद्ध-हस्त हैं। कथानक के विकास म भी वे इस नाटकीयता का आभास देते हैं। उनके उपन्यासो की कथाए समतल गति से आगे बढते हुये उत्कर्ष प्राप्त करती हैं और चरम उत्कर्ष पर पहुचकर उनका समापन होता है। 'अमृत और विष' तथा 'सेठ बाकेमल' भिन्न प्रकार की कृतिया हैं, जिनके कथा-शिल्प पर इन उपन्यासो के स्वतन्त्र विवेचन के क्रम म हम पूरा प्रकाश डाल चुके हैं। लघु आकार वाले उपन्यास इस नाटकीय विधान का अधिक दूर तक सफलता पूर्वक निर्वाह करते हैं।

जहा तक अन्य विशेषताओ का प्रश्न है नागर जी के उपन्यासो की कथावस्तु का आधार मानव जीवन की समस्याओ का उदघाटन करना है। उनके उपन्यासो मे विशेषकर 'बूद और समुद्र' म मानव जीवन क विविध स्तर तथा उनकी नाना समस्याओं का चित्रण हुआ। मानव जीवन के विविध स्तरों मे मध्यवर्गीय जीवन, उनकी समस्याओ तथा समाधान का बहुत ही यथार्थ रूप 'बूद और समुद्र' मे मिलता है। उपन्यासो के स्वतन्त्र

विवेचन के क्रम में हम मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं उनके समाधानों तथा विविध प्रकार के जीवन-स्तरो पर विचार कर चुके हैं, अत यहा उसकी आवश्यकता नही महसूस होती।

समग्रत कथा शिल्प की दृष्टि से कतिपय सीमाओ के बावजूद जिनका सम्बन्ध प्रधानत 'बूद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' है नागर जी की कथा कृतिया पूर्ण सफल हैं। वे पहले एक कथाकार हैं जिनका प्रमुख लक्ष्य कथा को अत्यत रोचक, सुसबद्ध और विश्वसनीय ढग से अपने उपन्यासो मे प्रस्तुत करना है। उन्होंने यह काय अत्यत कुशलता से सपन्न किया है। उनकी कथाओं में कही भी कृत्रिमता या बनावटीपन नही है। यथार्थ जीवन को उसकी समूची प्राणवत्ता के साथ उन्होने अपनी कृतियो मे प्रस्तुत किया है, और इस प्रकार अपने उपन्यासों को एक सशक्त भूमिका प्रदान की है।

चरित्र-शिल्प –

कथा तत्व के पश्चात। उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व पात्र और उनका चरित्र-चित्रण है। पात्र और चरित्र चित्रण पर भी उपन्यास शिल्प की चर्चा करने वाले भारतीय तथा पश्चिमी विचारकों के पर्याप्त विचार उपलब्ध होते हैं। चरित्र चित्रण की महत्ता बतलाते हुए डा० गुलाबराय का कहना है कि यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र चित्रण उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है क्योकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है। चरित्र के ही कारण हम एक मनुष्य को दूसरे से पृथक करते हैं। चरित्र द्वारा ही हम मनुष्य के आप (पर्सनल्टी) को प्रकाश मे लाते हैं। चरित्र मे मनुष्य का बाहरी आपा और भीतरी आपा दोनो ही आ जाते हैं। बाहरी आपे मे मनुष्य का आकार प्रकार वेश भूषा, आचार विचार, रहन-सहन चाल ढाल, बातचीत के विशेष ढग (तकिया कलाम सबोधन आदि) और काय कलाप भी आ जाते हैं। भीतरी आपा इन सब बातो से अनुमेय रहता है। पात्र के भीतरी आप का चित्रण बाहरी आप के चित्रण मे कहीं अधिक कठिन होता है।[1]

विचारको ने चरित्र चित्रण के विषय मे कुछ अन्य महत्वपूर्ण निर्देश भी दिये हैं। उनका कहना है कि उपन्यास के चरित्र यद्यपि उपन्यासकार द्वारा

१—काव्य के रूप डा० गुलाबराय–पृ० १७८।

गढ़े होते हैं परन्तु फिर भी वे 'अपने मानव होने और ईश्वरीय सृष्टि होने का आभास देते हैं। उपन्यासकार अपने कौशल से उनमे एसे गुण भर देता है कि उनसे हमारा निकटतम तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उनके सुख दुख हमारे अपने से प्रतीत होते हैं।"[1] विचारकों के अनुसार उपन्यासकार को उनका निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि वे हम में पूणत यथाथ का भ्रम पदा करें, और उपन्यास समाप्त होने पर भी हमारी स्मति म टिके रहें। इसके लिये उपन्यासकार को पात्रों के मनोविज्ञान पर भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

उपन्यास के अन्तगत-चरित्र चित्रण की दो प्रमुख विधिया बताई गई हैं-(क) प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक विधि, और (ख) परोक्ष या नाटकीय विधि। प्रथम विधि के अन्तगत उपन्यासकार पात्र के चरित्र, उसके आचार विचार आदि पर स्वत प्रकाश डालता है और दूसरी विधि के अन्तगत पात्र स्वत कथोपकथन आदि के माध्यम से अपने चरित्र को स्पष्ट करत हैं।[2] जहाँ तक पात्रो का प्रश्न है उनके चुनाव आदि को लेकर कुछ बातें कही गई हैं। सबसे प्रमुख बात यह है कि पात्रो को कृत्रिम न होना चाहिये। वे जीवन मे मिलने वाले व्यक्तियों का ही औपन्यासिक रूप हो। विशुद्ध काल्पनिक पात्र कितने भी मनोयोग पूवक निमित किये जायें जीवन से चुने गये पात्रो की समता नहीं कर सकते। एसे पात्र निर्जीव पात्र होंगे। पात्रो के बारे मे एक बात और विशेष ध्यान देने योग्य है कि पात्र न तो गुणों के ही पुतले हो और न अवगुणों के ही। सामान्य जीवन में जिस प्रकार हम एसे व्यक्ति मिलते हैं जिनमें गुण तथा अवगुण दोनों होते हैं इसीलिए पात्रो का रूप भी ऐसा होना चाहिये, तभी वे वास्तविक प्रतीत होंगे।

पात्रों के स्वरूप की दृष्टि से विचारकों ने उनकी कुछ कोटिया निर्धारित की हैं। इनमें दो कोटिया प्रमुख हैं व्यक्ति प्रतिनिधि पात्र और वग प्रतिनिधि पात्र। प्रथम प्रकार के पात्र वे होते हैं जो कतिपय ऐसी विशेषताओ से सम्पन्न होते हैं जो सामान्यत दूसरे मनुष्यो में नही पाई जाती अथवा बहुत ही कम व्यक्तियो में पाई जाती हैं। दूसरो कोटि के पात्र एसी विशेषताए

---

1 An Introduction to the Study of Literature
W H Hudson P 145

2 An Introduction to the Study of Literature
W H Hudson P 146-14,

विवेचन के क्रम मे हम मानव जीवन की विभिन्न समस्याओ, उनके समाधानों तथा विविध प्रकार के जीवन-स्तरो पर विचार कर चुके हैं, अत यहा उसकी आवश्यकता नही महसूस होती।

समग्रत कथा शिल्प की दृष्टि स कतिपय सीमाओ के बावजूद जिनका सम्बन्ध प्रधानत 'बूद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' है नागर जी की कथा कृतिया पूण सफल हैं। वे पहल एक कथाकार हैं जिनका प्रमुख लक्ष्य कथा को अत्यत रोचक, सुसबद्ध और विश्वसनीय ढग स अपन उपन्यासो मे प्रस्तुत करना ह। उन्होंने यह काय अत्यत कुशलता स सपन्न किया है। उनकी कथाओं में कही भी कृत्रिमता या बनावटीपन नहा है। यथाथ जीवन को उसकी समूची प्राणवत्ता क साथ उन्होंने अपनी कृतियों मे प्रस्तुत किया है, और इस प्रकार अपन उपन्यासो को एक सशक्त भूमिका प्रदान की है।

चरित्र-शिल्प –

कथा तत्व क पश्चात । उपन्यास का दूसरा महत्वपूण तत्व पात्र और उनका चरित्र-चित्रण है। पात्र और चरित्र चित्रण पर भी उपन्यास शिल्प की चचा करन वाले भारतीय तथा पश्चिमी विचारकों के पयाप्त विचार उपलब्ध होते हैं। चरित्र चित्रण की महत्ता बतलाते हुए डा० गुलाबराय का कहना है कि 'यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र चित्रण उपन्यास का सबस महत्वपूण तत्व है क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसक चरित्र म है। चरित्र के ही कारण हम एक मनुष्य को दूसरे स पथक करत हैं। चरित्र द्वारा ही हम मनुष्य क आप (पसनलिटी) को प्रकाश म लाते हैं। चरित्र म मनुष्य का बाहरी आपा और भीतरी आपा दोनो ही आ जाते हैं। बाहरी आपे म मनुष्य का आकार प्रकार वश भूषा आचार विचार रहन-सहन चाल ढाल, बातचीत क विशेष ढग (तकिया कलाम सबोधन आदि) और काय कलाप भी आ जाते हैं। भीतरी आपा इन सब बातो स अनुस्यत रहता है। पात्र क भीतरी आपे का चित्रण बाहरी आप के चित्रण स कहीं अधिक कठिन होता है।'[1]

विचारको ने चरित्र चित्रण के विषय म कुछ अन्य महत्वपूण निष्कष भी दिय हैं। उनका कहना है कि उपन्यास क चरित्र यद्यपि उपन्यासकार द्वारा

१—काव्य क रूप डा० गुलाबराय–प० १७८।

गढ़े होते हैं परन्तु फिर भी वे 'अपने मानव होने और ईश्वरीय सष्टि होने का आभास देते हैं। उपन्यासकार अपने कौशल से उनमे ऐसे गुण भर देता है कि उनसे हमारा निकटतम तादात्म्य स्थापित हो जाता है और उनके सुख दुख हमारे अपने से प्रतीत होते हैं।"[1] विचारकों के अनुसार उपन्यासकार को उनका निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि वे हम में पूणत यथाथ का भ्रम पदा करें, और उपन्यास समाप्त होने पर भी हमारी स्मति मे टिके रहे। इसके लिये उपन्यासकार को पात्रों के मनोविज्ञान पर भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

उपन्यास के अन्तगत-चरित्र चित्रण की दो प्रमुख विधिया बताई गई हैं-(क) प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक विधि, और (ख) परोक्ष या नाटकीय विधि। प्रथम विधि के अन्तगत उपन्यासकार पात्र के चरित्र, उसके आचार विचार आदि पर स्वत प्रकाश डालता है और दूसरी विधि के अन्तगत पात्र स्वत कथोपकथन आदि के माध्यम से अपने चरित्र को स्पष्ट करत हैं।[2] जहा तक पात्रों का प्रश्न है उनके चुनाव आदि को लेकर कुछ बातें कही गई हैं। सबसे प्रमुख बात यह है कि पात्रों को कृत्रिम न होना चाहिये। वे जीवन म मिलने वाले व्यक्तियों का ही औपन्यासिक रूप हों। विशुद्ध काल्पनिक पात्र कितने भी मनोयोग पूवक निर्मित किये जायें जीवन से चुने गये पात्रो की समता नही कर सकते। ऐसे पात्र निर्जीव पात्र होग। पात्रों के बारे में एक बात और विशेष ध्यान देने योग्य है कि पात्र न तो गुणो के ही पुतले हों और न अवगुणो के ही। सामान्य जीवन में जिस प्रकार हम एस व्यक्ति मिलते हैं जिनमें गुण तथा अवगुण दोनों होते हैं इसीलिए पात्रो का रूप भी ऐसा होना चाहिये, तभी वे वास्तविक प्रतीत होंगे।

पात्रो के स्वरूप की दृष्टि से विचारको ने उनकी कुछ कोटिया निर्धारित की है। इनमे दो कोटिया प्रमुख हैं व्यक्ति प्रतिनिधि पात्र और वग प्रतिनिधि पात्र। प्रथम प्रकार के पात्र वे होते हैं जो कतिपय ऐसी विशेषताओ से सम्पन्न होते हैं जो सामान्यत दूसरे मनुष्यो में नही पाई जाती अथवा बहुत ही कम व्यक्तियों में पाई जाती है। दूसरो कोटि के पात्र ऐसी विशेषताए

---

1 An Introduction to the Study of Literature
W H Hudson P 145

2 An Introduction to the Study of Literature
W H Hudson P 146-14",

रखत हैं जो उनके साथ साथ एक समूच वग का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन्हे 'टाइप' कहा जाता है। इन पात्रा की भी अपनी वयक्तिक विशेषताए होनी हैं परन्तु व अपन साथ साथ एक समूच वग का भी हमारे समक्ष स्पष्ट करत हैं। अन्तमुखी भूमिका वाल उपन्यासा में प्राय प्रथम प्रकार के पात्र पाय जात हैं जबकि बहिमुखी भूमिका वाले उपन्यास अधिकतर प्रतिनिधि या 'टाइप' पात्रो को लकर ही चलत दन हैं।

इसक पूव कि हम नागर जी क उपन्यासा म चरित्र-चित्रण क स्वरूप पर विचार करें हम उनकी पात्र सष्टि पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझत हैं। यदि उनक एतिहासिक उपन्यासा को छोड दिया जाय तो शेष उपन्यासा का सम्बन्ध समाज क मध्यवर्गीय जीवन स है। इस मध्यवर्गीय जीवन को उसकी समग्रता म प्रस्तुत करन के क्रम म लखक न सम्पूण भारतीय सामाजिक जीवन का सदभ ग्रहण किया है। इन सब कारणो से उनके उपन्यासो का फलक पर्याप्त विस्तत हो गया है। उन्होने अपने उपन्यासा म आधुनिक जीवन का अनेक महत्वपूण समस्याए उठाई हैं और उनस सबद्ध प्रतिनिधि परिस्थितिया तथा पात्रा की सष्टि की है। उनके उपन्यासा म जो भी पुरुष अथवा नारी पात्र हैं, व सब मिल जुलकर आधुनिक सामाजिक जीवन का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करत हैं। व अधिकाशत प्रतिनिधि पात्र हैं, यों व्यक्ति-पात्रा की सष्टि भी हम उनक उपन्यासा म प्राप्त होता है। 'बूद और समुद्र' क बाबा राम जी ऐसा एम ही पात्र हैं। वस्तुत पात्र सष्ट के क्रम म नागर जी न मार्क्सवादी विचारक एंगिल्स क प्रतिनिधि परिस्थितिया म प्रतिनिधि पात्रा की सष्टि' वाल सूत्र की पुष्टि की है। तभी उनक उपन्यास और चरित्र यथार्थवादी कला सजन का उत्तम उदाहरण बन सक हैं।

नागर जी क औपन्यासिक पात्र जीवित पात्र हैं। व प्रमचन्द जी की तरह जिन्दगी का गहरी छानबीन करत हैं और बनावटी पात्रो की सृष्टि म बचत हैं किसी पूव धारणा या विचार को व पात्र रचना का मूलाधार नहा बनात। उनक लिए जीवन प्रमुख है परिस्थितिया प्रधान हैं और उनम जन्म लत और विकसित होत वाल पात्र अपनी-अपनी परिधि क अनुकूल अपन विचारो भावो और कल्पनाओ का विकास करत है।"[1] अमत

1– आलोचना-जनवरी १९६६–डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का लख पृ०–१८८।

और विष' उपन्यास मे नायक अरविन्द शकर के माध्यम से जमे नागर जी ने अपनी पात्र सष्टि के रहस्य को उद्घाटित कर दिया है। यह रहस्य और कुछ नही सामान्य जीवन स ही पात्रो को चुन लेने का रहस्य है।[1] इसी कारण उनके अधिकाश औपन्यासिक पात्र स्वाभाविक तथा मानव जीवन के प्रतिनिधि बन सके हैं। ये दनदिन जीवन म मिलने वाले पात्र हैं। लोक जीवन से गहराई के साथ जुडे होने के कारण ही उन्हें जीवित पात्रों की इतनी बडी पूजी प्राप्त हुई है। ताई (बूद और समुद्र) जसे अविस्मरणीय चरित्र की सष्टि का गुर, लोक जीवन के साथ लेखक की इसी अभि नता म खोजा जा सकता है। उन्होने अपने उपन्यासो मे मनुष्य खडे किय हैं, कठपुतले नही, और उन्हे गुण दोष दोनो से ही पूण दिखाया है। इसीलिए वे हमे अपने जाने पहचाने प्रतीत होते हैं और उनसे हमारी निकटता बहुत शीघ्र हो जाती है। जिन कतिपय पात्रो में नागर जी ने खास विशिष्टताओं का आरोप करना चाहा है वे पात्र अवश्य इतने विश्वसनीय नही बन सके हैं, जसे-"बूद और समुद्र' के बाबा राम जी दास। परन्तु इस प्रकार क पात्र-नागर जी के उपन्यासो में अपवाद स्वरूप ही हैं।

नागर जी के पात्र जिस वग के हैं वे अपनी अपनी वर्गीय प्रवत्तियां तथा वर्गीय विशेषताओ के साथ ही उपन्यासो मे अपने दशन देते हैं। उच्च वर्गों के पात्रो में शोषण, एकाधिकार की भावना स्वाथ, छल प्रपच तथा अनतिकता का प्राबल्य है निम्न वर्गीय पात्र अधिकतर सामाजिक व्यवस्था से पीडित चित्रित किये गये हैं। नागर जी के अधिकाश पात्र मध्यवर्गीय पात्र हैं, जिनमें मध्यवग की अस्थिर मानसिक भूमिका को ही प्रस्तुत किया गया है। विविध प्रकार के नारी और पुरुष-पात्रो का, 'आर्थिक तथा कामज य भाति-भाति की कुठाओ मे आक्रात, अपने ही द्वारा निर्मित रूढियो तथा रीतियो के शिकजे मे बुरी तरह जकडा हुआ भाति भाति की वजनाओ से बोझिल, कदम

१— '　　मैं बरात का दृश्य लिखने जा रहा हू। उस दश्य के साथ मेरे पास ही दूकान के पास साइकिलें लिये दो युवक पसा वाला की शान और अपनी परेशानियो पर झुझलाते हुए　,　बस इन्ही दो नवयुवको को लेकर उपन्यास का श्री गणश करूगा ? इन दोनो मे से एक को भगड पाधा का बेटा बनाऊगा　　भगड पाधा, मेरे पडोसी।

—अमत और विष—पृ० ७०।

कदम पर जीवन की असगतियों का शिकार और जिन्दगी से समझौता करने का आत्मिक पराजय, विशेष तथा निराशा की गहरी से गहरी ठोकरों के बावजूद अपना खोखली आन्नवादिता तथा अह की सूचना देने वाला," यह वह वग है जिस यथाय की सजीव रखाओं में नागर जी के उपन्यासों में अभिव्यक्ति मिली है। मध्यवग के कुछ ऐस पात्र भी इन कृतियों में उभरे हैं जो उमडती हुई जिन्दगी का छोडकर आग की भूमिकाओं में काफी दूर तक पहुच जाते हैं।[1] जस 'बूद और समुद्र' के कनल, महाकाल' क पांचू गोपाल तथा 'अमृत और विष' क अरविन्द शकर। परन्तु अधिकतर पात्र असगतियों क शिकार हैं और इसी कारण सजीव भी हैं। वस्तुत मध्यवग का जो सही चारित्र्य है, उस अपने मध्यवर्गीय नारी तथा पुरुष पात्रों द्वारा अतिरजनाओं में डूब बिना नागर जी ने ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया है। नारी चरित्रों के विषय में व विशेष सवदनशील रह हैं। उनक उपन्यासों मे नारी पात्रों की बहुरगी सृष्टि है। कुलीन नारियों स लकर वेश्याओं तक जिसका प्रसार है।

जहा तक चरित्र चित्रण की विधि का प्रश्न है नागर जी ने प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही विधियों का आश्रय लिया है। उन्होंने अनेक स्थलों पर स्वत ही अपन चरित्रों की विशेषताओं तथा दुबलताओं का विश्लेषण किया है और नाटकीय विधि द्वारा परिस्थितियों तथा कथोपकथन क माध्यम स भी उनके चरित्र पर प्रकाश डाला है। य दोनों विधियाँ उनके उपन्यासों में इतनी प्रगुम्फ हैं कि आश्वस्त होकर यह नहा कहा जा सकता कि उन्होंने किस पद्धति के प्रति अपनी विशेष आसक्ति सूचित की है। परन्तु इतना अवश्य स्पष्ट है कि जिन स्थलों पर परिस्थितियों क बीच से, पात्रों क क्रिया कलापों के माध्यम से, चरित्र चित्रण का स्वरूप उभरा ह, वह भूमिका नि सन्देह अधिक कलात्मक है। उन्होंने न केवल बाह्य परिस्थितियो से सघष के क्रम में अपने चरित्रों का स्वरूप उद्घाटित किया है वरन ऐसी भी भूमिकाए लाय हैं जहा अतद्वन्द्वों के क्रम में भी चरित्र की रूपरखा स्पष्ट हुई है। पाँचू गोपाल[3], माधवी[4] नसीरुद्दीन हदर[5] महिपाल शीला स्विग[6] तथा अरविंद शकर[7] जसे कितने ही पात्र हैं, जिनका चरित्र

१— प्रगतिवाद – डा० शिवकुमार मिश्र।   २—वही – पृ० ९२-९३।
३—महाकाल।   ४—सुहाग के नूपुर।   ५—शतरज के मोहरे।
६— बूद और समुद्र। ७— अमृत और विष।

बाह्य संघर्षों के साथ साथ अन्तर्द्वन्द्वों से भी गुजरता हुआ अत्यन्त सजीव बनकर सामने आया है।

कतिपय अपवादों को छोड दिया जाय तो नागर जी के चरित्र सपाट चरित्र नही हैं। परिस्थितियों क उतार चढाव में ही उनकी विशेषताए तथा दुर्बलताए सामने आई हैं, और लेखक ने बिना अतिरिक्त नियत्रण के इन्हे परिस्थितियों क प्रवाह में स्वेच्छा क साथ आगे बढ़ने की छूट दे दी हैं। मानव मनोविज्ञान क प्रति भी लेखक ने अपनी निष्ठा सूचित की है और चरित्रो का सारा उत्थान पतन मनोविज्ञान की सगति म ही प्रदर्शित किया है। अस्वाभाविक मोड देकर न तो किसी चरित्र को ऊचा ही उठाया गया है और न ही नीचे गिराया गया है। कुछ चरित्र एसे अवश्य हैं जिनके प्रति या तो लखक विशेष आग्रही रहा है या जिन्हे उसने विकास का पूरा अवसर नही दिया। 'बूद और समुद्र' के सज्जन तथा महिपाल का चरित्र क्रमश हमारे इस कथन का उदाहरण हैं। चरित्रो के स्वतत्र विवेचन मे हम इस तथ्य पर प्रकाश डाल चुके हैं।

अपनी चित्रण विधि से भी लेखक ने अपने चरित्र को सजीव रूप प्रदान करने की चेष्टा की है। रेखा चित्रों के सजन में नागर जी की क्षमताओं का उल्लेख हम कर चुके हैं। दैनदिन जीवन के साधारण से साधारण क्रिया कलापो के बीच से भी उन्होंने अपने चरित्रो की स्वभावगत तथा अन्य विशेषताओ को स्पष्ट किया है। समग्रत सामान्य जीवन से ग्रहण किये गये साधारण पात्रो के चरित्र चित्रण मे उन्हे अधिक सफलता मिली है। नागर जी के उपन्यासो के चरित्र चित्रण का यह अत्यन्त सशक्त पक्ष है। कथातत्व की भाति उनके उपन्यासों का चरित्र-शिल्प भी उनके उपन्यासो की लोकप्रियता तथा साहित्यिक वशिष्टय का एक प्रधान कारण है। 'उपन्यास मानव चरित्र का चित्र है'— प्रेमचन्द के इस कथन को नागर जी की कृतिया प्रमाणित करती हैं।

भाषा-शैली—

भावो तथा विचारो की अभिव्यक्ति के सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम के रूप में, न केवल उपन्यास लेखन के सदर्भ म, वरन साहित्य मात्र की रचना के सदर्भ म भाषा महत्व असदिग्ध है। भाषा के बिना साहित्य रचना की कल्पना ही नही की जा सकती। रचनाकार को कृति के अन्तर्गत जो कुछ भी कहना होता है, वह भाषा के माध्यम से ही कहता है और इसी माध्यम का आश्रय लेकर पाठक रचनाकार के उद्देश्य और इस उद्देश्य को सामने लाने वाली उसकी समूची रचनात्मक सामग्री के साथ अपना अतरग सबध स्थापित करता है।

भाषा चूंकि मानव जीवन में प्राप्त भावों तथा विचारों की ही अभिव्यक्ति करती है, अतः मानव जीवन में जैसे-जैसे परिवर्तन उपस्थित होता जाता है, वस वस भाषा का रूप भी बदलता चलता है। वस्तुतः साहित्य भाषा तत्व ही मानवीय भावों तथा विचारों की अनुकूलता में ही पल्लवित और विकसित होती है। साहित्य भाषा के स्वरूप निर्माण में रचनाकार के अपने सर्जक व्यक्तित्व का भी बड़ा योग होता है यही कारण है कि हमें एक ही समय के साहित्यकारों में भाषा के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। एक तो स्वतः भाषा की प्रकृति परिवर्तन शील होने के कारण, दूसरे रचनाकार की अपनी निजी बनावट के कारण ही ऐसा होता है। विविध प्रकार की संवेदनाओं, भावनाओं तथा विचारों की अभिव्यक्ति के क्रम में भी भाषा का रूप बदल जाता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों तथा यथार्थवादी उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा का अलग अलग रूप हमारे इस कथन का प्रमाण है। कुछ साहित्यकार अपनी भाषा का निर्माण सीधे जन-समाज की भाषा से करते हैं और कुछ कोशों का आश्रय लेते हैं या नये शब्द गढ़ते हैं। इस प्रक्रिया में भी भाषा का रूप प्रायः बदल जाया करता है। समग्रतः जीवित तथा सार्थक साहित्यिक भाषा वही होती है जो साहित्य की अपनी भावात्मक प्रक्रिया में ढली हुई होने के बावजूद मूलतः जन-समाज की भाषा में ही अपना स्रोत सूचित करती हो, न केवल उसमें उपजी हो उससे घनिष्टता पूर्वक निरन्तर सम्पृक्त भी हो।

जहां तक औपन्यासिक भाषा का प्रश्न है पात्रानुकूल तथा परिस्थिति के अनुकूल भाषा की आवश्यकता सबने प्रतिपादित की है। भाषा की व्यंजना शक्ति भी आवश्यक मानी गई है। यह रचनाकार के निजी चुनाव का प्रश्न है कि वह सामान्य बोलचाल की भाषा को अपनाता है अथवा अधिक परिनिष्ठित तथा परिमार्जित भाषा को। अपेक्षा इसी बात की है कि वह भाषा भावों तथा विचारों को समूची प्रभावात्मकता के साथ अभिव्यक्त कर सके। भावों की अनुगामिनी भाषा ही साहित्य की आदर्श भाषा है।

जहां तक नागर जी के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा का प्रश्न है, प्रेमचन्द परम्परा के अन्य उत्तराधिकारों के साथ उन्होंने भाषा के क्षेत्र में भी उस परम्परा को ग्रहण किया है। जो कुछ अन्तर है वह उनके उपन्यासों में चित्रित जीवन का अन्तर है। प्रेमचंद ने मूलतः ग्राम्य जीवन को ही अपने उपन्यासों का केन्द्र बनाया था जब कि नागर जी के अधिकांश उपन्यास नगर के जीवन से सम्बन्धित हैं। युग की जटिलता के अनुसार उनके उपन्यासों में

समस्यायें भी जटिल तथा अनेक प्रकार की हैं। यही कारण है कि उनकी भाषा बहुरंगी भाषा है। फिर भी उनकी भाषा यदि किसी रचनाकार से अपना सर्वाधिक नकटय सूचित करती है, तो वह प्रेमचंद की भाषा से या प्रेमचंद की भाषा-प्रकृति से।

नागर जी हिन्दी के उन थोड़े से लेखकों मे हैं जिनका भाषा सम्बधी ज्ञान पर्याप्त व्यापक है। गुजराती उनकी मातृभाषा है। इसके अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, अग्रेजी, मराठी, बगला आदि भाषाओं के भी वे अच्छे जानकार हैं। तमिल भाषा से भी वे परिचित हैं और सस्कृत भाषा से भी उनको पर्याप्त रुचि है।[1] केवल विविध प्रातीय भाषाओं की जानकारी तक ही नागर जी का भाषा सम्बन्धी ज्ञान सीमित नही है। जहा तक हिंदी प्रदेश की भाषाओ तथा बोलियो का सम्बध है, वे उनसे भी घनिष्टता पूवक परिचित हैं। केवल बोलियो से ही नही, उन्ह अपने अपने ढग, अपने-अपने लहजे, अपनी स्थानीय रगत मे घुला मिलाकर बोलने वालों से भी उनका निकट का सम्बध है। शिक्षितो अशिक्षितो तथा अल्प शिक्षितो बूढे, जवानों ग्रामीणो नागरिकों, स्त्री-पुरुषो की भाषा, तात्पय यह कि भाषागत सूक्ष्म से सूक्ष्म न्योरा मे वे गये हैं, और उन्होने सफलता पूवक उन्हे आत्मसात किया है। इस कथन के प्रचुर प्रमाण हमे उनके उपन्यासो में दिखाई पडते हैं, जो एक स्तर पर भाषा विज्ञान के कोष तक कहे जा सकते हैं। उन्हें प्राय आच लिक उपन्यासकार की जो सज्ञा दी जाती है, उसका एक प्रधान कारण उनकी भाषा का यह वशिष्टय भी है।

नागर जी ने सबसे अधिक सहज बोलचाल की सादी भाषा का ही प्रयोग किया है। यही वे प्रेमचद की भाषा के साथ—अपनी निकटता सूचित करते हैं। उनकी यह भाषा हमारे नित्य प्रति के प्रयोग की भाषा है, जिसके अतिरिक्त बनाव श्र गार की आवश्यकता उन्होने नहीं समझी। इस भाषा में ही उन्होंने जो कुछ कहना चाहा है, सफलता पूवक कह दिया है। ऐतिहासिक उपन्यासों तक में, यहा तक कि प्राचीन भारतीय इतिहास से सम्बन्धित 'सुहाग के नूपुर' तक में उन्होंने इसी भाषा का प्रयोग किया है। सामान्य बोलचाल की खडी बोली होने के बावजूद भी वह साहित्यिक भाषा है। चूकि नागर जी के उपन्यासो में अधिकतर नागरिक जीवन का चित्रण है जिसका सम्बध अनेक प्रकार के वर्गों के लोगो के जीवन से है यही कारण है कि नगर में बोली जाने

१—नीर-क्षीर—अमृत लाल नागर अक पृ०—२५।

वाली भाषा के बड ही आकर्षक रूप उनके उपन्यासो म हैं। डा० देवीशकर अवस्थी के शब्दो में 'भाषा और चरित्र की नागर जी के पास अदभुत शक्ति है। नगरो में बोली जाने वाली भाषा की नाद योजना, पदावली और वाक्य-गठन उन्होने भीतर से अपनाया है। सम्भवत प्रमचद के बाद इतने विराट चित्र के भीतर एसी सहज भाषा का प्रयोग विरल है। इस भाषा क भी विविध स्तर हैं और ग्रहणशील लखक इन सबको रेकाड करता चलता है।'[1] श्री भगवती चरण वमा न भी नागर जी को 'बोलचाल की मुहावरदार भाषा का आचाय' कहा है। उनकी बोलचाल की भाषा म एक सहज आकषण है। और वह उपन्यास द्वारा आरोपित होने के कारण, कहानी का एक स्वाभाविक अग है।[2]

इस सरल सादा, बोधगम्य मुहावरेदार भाषा के अतिरिक्त नागर जी के उपन्यासो मे भाषा के अन्य सभी रूप देख पडते हैं जिनमें प्रधान वह रूप हैं जहाँ उनके पात्र स्थानीय रगत म रगी हुई भाषा का प्रयोग अपने खास – लहजे और खास ढग स करत हैं। यह वह भाषा है जिसे कुछ लोगों ने आचलिक भाषा भी कहा है। इस प्रकार की भाषा के दो रूप हैं एक तो ठठ आचलिक रूप अथवा ठठ बोली वाला रूप और दूसरा मिला जुला, भिन्न भिन्न लहजे तथा भिन्न भिन्न प्रवृत्तियो वाला रूप। 'शतरज के मोहरे' के कुछ पात्र तथा 'बूद और समुद्र' के महिपाल और कल्याणी (घर म) ठेठ अवधी का प्रयोग करते हैं। शेष पात्र सब मिली जुली स्थानीय रगत वाली भाषा बोलते हैं। उनका भाषा का कोई एक रूप नही है जितनी तरह के पात्र हैं उतनी ही तरह की भाषा है।[3]

१—सीमात प्रहरी–अमतलाल नागर अक–पृ० ३३।
२—नीर-क्षीर–अमतलाल नागर अक–प० ख।
३—कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —
क—कल्याणी की ठठ अवधी भाषा–इ बसत तउबाला के सुकुल अइस अकडिगे जसे–ननौरे वयार तालुकेदारी इ ही के हिस्सा मा परी होय।
—(बूद और समुद्र–१०८)
ख—ताई की ब्रजी रगत लिए हुए खडी बोली–"अर, जइमा जइगा ये सब लोग मेरे ऊपर जुल्म ढाम हैंग, करगा म हैंग, वसा इनकी सात पीढियो के आगे आवगा। वही–प० ४।

अपने उपन्यासों में अनेक स्थलों पर नागर जी ने मिश्रित भाषा का प्रयोग भी किया है, वह भी किसी विशेष पात्र की अपनी प्रवृत्तियों को सामने लाने के लिये। इस प्रकार का एक उदाहरण निम्नलिखित है, पुलिस मन की अंग्रेजी-अवधी मिश्रित भाषा —

"कोतवाली को वरलेस कर दिया हुजूर। मिरजा जी अटेण्ड कर रहे थे, हुजूर, तौन उन्होंने मिसेज दिया कि अस्पताल की गाड़ी भिजवाते हैं-हुजूर।"[1]

पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग नागर जी के उपन्यासों की आवश्यक विशेषता है। उनके ग्रामीण पात्रों की बोली में जन भाषा के शब्दों का प्राचुर्य है, नागरिक पात्रों की भाषा में नगर की भाषा के शब्दों का। हिन्दू पात्रों की भाषा में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्द मिलेंगे, मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू फारसी के शब्द।[2] शिक्षितों तथा अशिक्षितों की भाषा में भी इसी प्रकार का भेद है। इस प्रवृत्ति ने नागर जी की भाषा को स्वाभाविक तथा — प्रभावशाली बनाया है।

न केवल पात्र के अनुकूल वरन् परिस्थिति के अनुकूल भी नागर जी की भाषा का स्वरूप परिवर्तित हुआ। हल्के-फुल्के प्रसंगों पर भाषा का रूप एक है और गंभीर प्रसंगों पर दूसरा। पात्र जब बात करता है तब उसकी भाषा एक स्तर की है और वही जब चिन्तन करता है, तब उसकी भाषा का रूप कुछ बदल जाता है। 'बूंद और समुद्र' के महिपाल और 'अमृत और विष' के अरविंद शंकर की भाषा में हम इस कथन का प्रमाण देख सकते हैं। भावात्मक

ग—अवधी मिश्रित बाबाराम जी दास की हिन्दी—"पूर्व आश्रम में हम मोटर मकेनिक रहे। अन्त में मालिक की चाकरी से छूट कर विंध्याचल मे रम गये।' वही

घ—गोकुलवासी कीर्तनिया जी की भाषा—"मौको झूठो ही दोष लगावे आली" वही—पृ० १६०।

ड—कथावाचक की भाषा— सूत जी बोलेम कि हे जिजमान सुनौ, एक समय जो है सो नारद जी बैकुंठ लोक के बीच म "वही—पृ० ५६९।

१—बूंद और समुद्र — पृ० ५४।

२—"खुदा रसूल और हजरत अली के बाद इस नाचीज के रोयें-रोयें में मलिकए-जमानियाँ का ख्याल ही बसा है।'—(शतरंज के मोहरे—पृ० १०१)

प्रसगो में उनकी भाषा का रूप काव्यात्मक हो जाता है[1], और समाज के द्रोहियों का पदाफाश करने मे निमम। जब भी जसी परिस्थिति आती है उनकी भाषा उसके अनुरूप ढलकर उसे अभिव्यक्ति देने म सक्षम बन जाती है।

नागर जी ने स्थल स्थल पर मुहावरो तथा लोकोक्तियो का सटीक प्रयोग करते हुए अपनी भाषा को व्यजना-गर्भित बनाया है। केवल मुहावर ही नही उपमाओ तथा उत्प्रेक्षाओ स भी उसे अलकृत किया है, जो नागर जी की उवर कल्पना शक्ति का प्रमाण है। य अलकृतिया कहा सीध कवि कल्पना से होड करती हैं और कहीं लोक जीवन से मिलकर हास्य-व्यग्य की सष्टि करती हैं। उदाहरण क लिए—

'रथो, घोडो आदि के साथ राजपथ पर दूर-दूर तक दौडती दिखाई देती मशालें ऐसी लगती हैं माना आकाश पर सूय का आना जान तारे भयकम्प से स्खलित हो धरती पर मुह छिपाने चल आये हा।' (सुहाग के नूपुर, प० ९)

'सहसा लाल का घर वाली ने एटमबम की तरह बीच चौक म फट कर भमूता सुनार के घर का हिरोशिमा बना दिया।' (बूद और समुद्र—प० २५)

"बाया हाथ पीठ की तरफ ज्मीन पर टेक दाहिना, ठोढी पर रक्खे हुये सुरमीली आखें फाडे मुह को लेटर बक्स बना दिया।" (सेठ बाँके मल, पृ० ४०)

'गडा हो गई सुसरी पीठ।"—(वही पृ० २१)

१—देह ने आपम में मिलकर बिजली स्पश की। कन्या की आखें प्रिय की आखा की मोहनी से बधी हुई उसके मुख के भावो स काफा हद तक अलग अनुकूली स्वेच्छा से वश म होकर निश्चल हा गई थी। चेहर पर लाज की लाली और घबराहट की सफदी उसक सहज गौर वण म चक्कर घिन्नी का खेल खल रही थी। दूसरे वस्त्रा म रहत हुय भा नारी दह को पुरुष देह की नसर्गिक गर्मी खामोश मस्ती दे रही थी।'

—'बूद और समुद्र'—प० ३०७।

वस्तुत जसा हमने कहा है, भाषा प्रयोगो की दृष्टि स और भाषा वभव की दृष्टि से भी, नागर जी के उपन्यास बहुत समृद्ध हैं। "वे गली कूचो मे बरसा रहे और घूमे हैं । उन्होने चारों ओर के जीवन को देखा ही नही, उसका रग बिरगा कोलाहल भी सुना है । यहाँ एक शली और एक व्याकरण का प्रयोग करने वाले पात्र नही हैं, प्राय जितने पात्र हैं उतनी तरह की शलिया और उनके अपने-अपने व्याकरण हैं। लखनऊ में विभिन्न जनपदो से सिमटकर जनता एकत्र होती है। उसने अपनी बोली बानी एक हद तक सुरक्षित रखी है, एक हद तक दूसरो की भाषा से, यहा तक कि अग्रजी से भी प्रभावित हुई है। अमृतलाल नागर द्वारा किया हुआ एक मुहल्ले का ('बूद और समुद्र' का चौक मुहल्ला) यह 'लिंग्विस्टिक सर्वे' भाषा विज्ञान की सामग्री का अदभुत पिटारा है। अभी तक एक नगर की इतनी बोली-ठोलियो का निदशन करने वाला उपन्यास देखने मे नही आया । इन शलियो में भाषाओं और समाज का इतिहास बोलता है।"[1] नागर जी के उपन्यासो की इस विशिष्टता का अध्ययन करने के लिए एक पूरे अध्याय की आवश्यकता है। स्थानाभाव अर्थात विस्तार भय के कारण अधिक उद्धरण भी नही दिये जा सके, यो, ये उद्धरण हमारे समूचे प्रबन्ध में यत्र-तत्र बिखरे हुये हैं।

अपने उपन्यासों की रचना मे 'सेठ बाकेमल' और 'अमत और विष' उपन्यास को छोड कर प्राय नागर जी न ऐतिहासिक शली ही अपनाई है। सेठ बाकेमल' उपन्यास म आत्मकथात्मक शली का प्रयोग किया गया है और 'अमत और विष' म आत्मकथात्मक तथा एतिहासिक दोनो शलिया को मिलकर एक मिश्रित कथा शली तयार की गई है, जिसके विषय म इस उपन्यास के स्वतन्त्र विवेचन के अतगत हम प्रकाश डाल चुके हैं। ऐतिहासिक शली मे प्रेमचन्द के भी सारे उपन्यास लिखे गये हैं और हिन्दी के तमाम अन्य उपन्यासकार भी इसी शैली का अनुसरण करते हैं। नागर जी ने भी इसी प्रचलित शली को अपनाकर उसे सजीव रूप मे अपने उपन्यासो मे प्रयुक्त किया है। वस्तुत इस क्षेत्र में वे किसी नए प्रयोग के हामी नहीं हैं। अतएव जहा तक कथा कहने की शली का प्रश्न है नागर जी के उपन्यासा मे हम किसी विशेष नवीनता अथवा सिद्धि के दशन नही होते । हा वणनात्मक एतिहासिक शली को ही अपनाकर जितने प्रभाव की सष्टि की जा सकती है, उसके लिय उन्होने अवश्य प्रयत्न किया है, और उसमें पर्याप्त सफल भी हैं।

१—आस्था और सौन्दर्य डा रामविलास शर्मा पृ० १३६-३७।

उनकी लेखन शली अवश्य कतिपय आकर्षक विशेषताओं से पूर्ण है। उसे रोचक एवं आकर्षक बनाने के लिये उन्होंने रसा चित्रों का आश्रय लिया है, और उनके द्वारा उसे नई समृद्धि दी है। चित्रात्मकता उनकी शैली की दूसरी प्रमुख विशेषता है, जो उनके वर्णनों में देखने पड़ती है। वस्तु वर्णन में एक पूरा का पूरा चित्र पाठक के समक्ष प्रत्यक्ष कर देना उनकी इस चित्रात्मक शैली की विशेषता है। प्रकृति चित्रण हो अथवा शादी बरात, महल्ले के लड़ाई झगड़ों, जुलूस आदि आदि के वर्णन सब इसी चित्रात्मक विशेषता की पुष्टि करते हैं। वस्तुतः अपने इन वर्णनों द्वारा नागर जी ने वातावरण-निर्माण में भी पर्याप्त सहायता ली है— दोपहर की धूप छतों पर जाड़े के दरबार लगाये चारों ओर पसर रही है। औरतों का सीना-पिरोना चल रहा है। गहूं फटके जा रहे हैं, दालें बिनी जा रही हैं, साग बनाये जा रहे हैं, कहीं आराम भी हो रहा है। स्कूल न जाने वाले बच्चों की हुड़दंग मची है पतंग भी उड़ रही हैं। कहीं कोई पेंशन याफ्ता आबकारी कमासुत सताना की तरह रगों और निश्चिंतता देने वाले घाम की सराहना हुआ बुढ़ापे के शरीर पर चढ़े हुए ऊन और रुई के गिलाफ बेखौफ उतारकर हाथों से घुटने सहलाते हुए अपनी गठिया खाल रहा है, देर से रोटी खाने वाले घरों की छतों पर अब भी कोई कोई सिर पर लोटे उड़लते हुए हर गंग कर रहे हैं। जगती दुनिया के फट फट सन-सन धम धम करते, चढ़ते उतरते, क्रोध-ममता-खीझ गम्भीरता और हंसी मजाक से भरे हुए सतरंग स्वर गूंज में सिमट गए हैं गूंज अणु अणु में व्याप रही है। कहीं से कोई एक भी स्वर का तार छू ले आज का दुनिया गूंज उठती है।"[1]

हास्य और व्यंग्य के सफल प्रयोग भी नागर जी के शैलीगत वैशिष्ट्य के ही सूचक हैं। इस क्षेत्र में भी वे सिद्ध हस्त हैं। बहुत से लोग तो उन्हें हास्य और व्यंग्य कथाकार के रूप में ही जानते हैं। 'सेठ बांकेमल' उपन्यास इस कथन का एक प्रमाण है। पात्रों के अनूठे व्यंग्य चित्र उनके उपन्यासों में भरे पड़े हैं। यह हास्य और व्यंग्य की शैली उस परम्परा का विकसित रूप है, जो भारतेन्दु और उनके युग से प्रवाहित होती हुई प्रेमचन्द और निराला जैसे कथाकारों में नया उत्कर्ष प्राप्त कर आज भी जीवित है। नागर जी की यह हास्य और व्यंग्य प्रधान शैली उनके यथार्थवादी कला सर्जन की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है।

१—बूंद और समुद्र पृ० १।

कथोपकथन –

उपन्यास के अंतर्गत कथोपकथन का भी अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। मनोवैज्ञानिक भूमिका पर नियोजित, तर्क सम्मत एवं स्वाभाविक कथोपकथन उपन्यास की बहुत बड़ी शक्ति होते हैं। उपन्यासकार उपन्यास के अंतर्गत कथोपकथन का प्रयोग कई उद्देश्यों से करता है। कथोपकथन के माध्यम से वह अपनी कथावस्तु को गतिशील करता है और उन्हें ही चरित्रों के विकास में भी सहायक बनाता है। कथोपकथन से ही उपन्यास में नाटकीयता का भी समावेश होता है। प्रेमचंद का विचार है कि 'उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही अच्छा है। इस सम्बन्ध में इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए किसी भी चरित्र के मुंह से निकले हुये प्रत्येक वाक्य को उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए। बातचीत का स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल और सूक्ष्म होना आवश्यक है।'[1] इन विशेषताओं के अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि कथोपकथन एक अंतर्धारा के रूप में उपन्यासों में नियोजित होने चाहिए। वे रोचक हों, साथ ही साथ विवरण देने एवं विश्लेषण करने में भी लेखक की सहायता करें।[2] कथोपकथन ही प्रमुख रूप से लेखक के विचार पक्ष और जीवन दर्शन को भी स्पष्ट करते हैं। सार्थक और तात्विक कथोपकथन उपन्यास और पाठक के बीच गहरा तादात्म्य स्थापित करते हैं। उनका पात्र, परिस्थिति एवं वातावरण के अनुकूल होना भी आवश्यक माना गया है।

कथोपकथन की ये कुछ मूलभूत विशेषताएं हैं। वस्तुतः श्रेष्ठ तथा सजीव कथोपकथन का प्रयोग उपन्यास में एक नाटककार की प्रतिमा की अपेक्षा करता है। चूंकि कथोपकथन कथावस्तु को गति देने तथा चरित्रों का चित्रण करने की परोक्ष विधि के अंतर्गत आते हैं, यही कारण है कि उनकी कलात्मक भूमिका भी असंदिग्ध है।

नागर जी उपन्यासकार होने के साथ साथ एक नाटककार भी हैं। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में कथोपकथनों का प्रयोग प्रायः सफलतापूर्वक

१—प्रेमचंद—कुछ विचार, भाग १—पृ० ५५।

2—An Introduction to the Study of Literature W H Hudson P 154

किया गया है। वे अनेक भाषाओं, उनकी प्रकृति, अनेक प्रकार की बोलियों, उनकी ध्वनियों की संगीतात्मकता और लहजे आदि से पर्याप्त परिचित हैं, यही कारण है कि उन्होंने प्राय कथोपकथन को सजीव एवं रोचक रूप में ही प्रस्तुत किया है। उनके कथोपकथनों की सबसे प्रधान विशेषता उनका पात्रों तथा परिस्थितियों के अनुकूल होना है। उच्च वर्गों से लेकर सामान्य भूमिका तक के न जाने कितने प्रकार के पात्र हमें नागर जी के उपन्यासों में दिखाई पड़ते हैं। उनमें शहर के भी पात्र हैं और गाँव के भी शिक्षित पात्र भी हैं और अल्प शिक्षित या अशिक्षित भी, विचारक भी हैं कलाकार भी, लेखक, अध्यापक, दूकानदार, व्यवसायी दफ्तर के बाबू, तात्पर्य यह है कि अनेक भूमिकाओं के नारी और पुरुष पात्रों का एक बहुत बड़ा जमाव उनकी कृतियों में है, नागर जी की विशेषता इसी बात में है कि प्रत्येक प्रकार के पात्र की अपनी मानसिक भूमिका के अनुरूप उसकी बोली-बानी, शिक्षा दीक्षा, संस्कार आदि का ध्यान रखते हुये एसे कथोपकथनों की योजना की है जो मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक तथा सजीव हों। वस्तुतः उन्होंने कथोपकथनों के माध्यम से दो कार्य भली भाँति सम्पादित किये हैं—उनके द्वारा कथावस्तु को गति दी है, और इससे भी अधिक उन्हें चरित्र चित्रण का माध्यम बनाया है। उनके पात्रों के कथोपकथन उनकी मनोवृत्तियों के अंतरंग स्वरूप से हमें परिचित कराते हैं। एक उदाहरण लें तो बूँद और समुद्र में छोटी-बड़ी-तारा और नंदो के पारस्परिक वार्तालाप में नागर जी के कथोपकथनों की शक्ति को देखा जा सकता है। 'महाकाल' उपन्यास में मोनाई केवट की बातचीत उसके चरित्र की भीतरी तहों को उभार देती है। 'सुहाग के नूपुर' में माधवी के कथोपकथन उसके हृदय में निहित पीड़ा, व्यथा, प्रतिशोध तथा प्रतिहिंसा के साक्षी हैं। हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि नागर जी के कथोपकथनों की यह सबसे प्रधान भूमिका है।

नागर जी द्वारा प्रयुक्त कथोपकथनों की एक महत्वपूर्ण सीमा भी है। बहुधा उन्होंने अपने कतिपय पात्रों के वार्तालाप को अनावश्यक विस्तार दिया है। विस्तार ही नहीं उनमें राजनीति, धर्म, संस्कृति तथा समाज दर्शन आदि की न जाने कितनी समस्याएं भी भर दी हैं। ये विचारात्मक कथोपकथन हैं परन्तु उपन्यास कला की दृष्टि से सजीव नहीं कहे जा सकते। इनका अलग से महत्व हो सकता है परन्तु उपन्यास की सीमा में वे बहुत सार्थक नहीं प्रतीत होते—विशेषकर उनका विस्तार। यों तो इस प्रकार के कुछ न कुछ कथोप

कथन उनके प्रत्येक उपन्यास में उपलब्ध हो जायेंगे परन्तु 'बूद और समुद्र' तथा 'अमत और विप' में इनकी अधिकता है-विशेषकर 'बूद और समुद्र' के कुछ पात्र बातचीत नही करते बातचीत के माध्यम से अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं, भाषण झाडते हैं। इसे लेखक की ही कमजोरी के रूप में स्वीकार करना चाहिये। अनेकानेक रोचक तथा सजीव कथोपकथनों के बीच 'बूद और समुद्र' के बीच बीच में दिखाई पडने वाले इस प्रकार के कथोपकथन उपन्यास का बोझ है। यही बात अन्य उपन्यासों के बारे में भी कही जा सकती है।

नागर जी के उपन्यासो में एक अन्य भूमिका पात्र के स्वगत चिन्तन तथा स्वगत कथन की है। यहा भी अनावश्यक विस्तार से वे नही बच सके हैं। इस प्रकार के स्थल अत्यन्त सजीव हैं परन्तु विस्तार अपेक्षित नही था।— महाकाल' के पाचूगोपाल तथा 'अमृत और विष' के अरविंद ठाकुर के स्वगत कथना तथा स्वगत चिंतन को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है।

समग्रत स्थानाभाव के कारण उद्धरण देने तथा अधिक विस्तार मे जाने का मोह सवरण कर, हम इतना ही कहना चाहगे कि कथोपकथन के माध्यम का नागर जी ने सफल और पूर्ण उपयोग किया है। उसकी जो भी विशेषताए-विद्वानो ने निर्देशित की हैं, वे हम उनके उपन्यासों मे प्राप्त होती हैं परन्तु उनके उपन्यास उनकी कतिपय विशिष्ट सीमाओ के भी उदाहरण हैं। नागर जी ने सक्षिप्त कथोपकथनो का भी आवश्यक रूप प्रस्तुत किया है यदि विस्तार सबधी अथवा विचारों की बोझिलता वाली सीमा न होती, तो उनके कथोपकथन अपनी मनोवैज्ञानिक भूमिका, अपने भाषा गत वैविध्य, लहजे, तथा ध्वन्यात्मकता में उनके उपन्यासा की एक बहुत बडी उपलब्धि होते। फिर भी इस दृष्टि से उनके उपन्यास बहुत सफल हैं।

देशकाल वातावरण तथा स्थानीय रगत—

'उपन्यास के देश और काल से हमारा तात्पर्य उसमें वर्णित आचार विचार, रहन सहन और परिस्थिति आदि से है। इसे हम दो भागों मे विभक्त कर सकते हैं—एक तो सामाजिक और दूसरा एतिहासिक या सासारिक। बहुत से उपन्यास आदि तो केवल इसलिये मनोरजक होते हैं कि-उनमें समाज के किसी विशिष्ट वर्ग, देश के किसी विशिष्ट भाग अथवा काल के किसी विशिष्ट अश से सबध रखने वाला ही वर्णन होता है। ऐसी दशा मे जिस

परिवेश अथवा देशकाल का नि सन्देह सबसे अधिक योग है। 'सेठ बाकेमल' उपन्यास को आचलिक कृति कहा ही जाता है, जो स्वत स्थानीय रगत-सबधी वैशिष्ट्य का प्रमाण है। इस कृति में न केवल आगरा जिले के व्यापारियों की बोली बानी, वरन एक मिटते हुये वर्ग का सपूर्ण चारित्र्य मूर्त हो उठा है। 'बूद और समुद्र' कृति को भी आंचलिक कहा जाता है। इस उपन्यास की आचलिकता पर भी, इसका स्वतन्त्र विवेचन करते समय, एक अलग शीर्षक मे हम विचार कर चुके हैं। वस्तुत यह कृति उस अर्थ में आचलिक नही है जिस अर्थ में मैला आचल या परती परिकथा जसे उपन्यास आंचलिक है। इस कृति की आचलिकता का सम्बन्ध नगर के जीवन से है। इसकी विशिष्टता इस बात म है कि इसमें लखनऊ के चौक मुहल्ले को उसकी समग्रता मे लेखक ने साकार कर दिया है।—"यह मुहल्ला एक बूद की तरह है जिसमें समुद्र की तरह विशाल भारतीय जीवन के दर्शन होते हैं। शहर के विभिन्न स्तरो का जीवन कसा है, इसका पता तो उपन्यास से लगता ही है, गावों में भी जनता के सस्कार कसे हैं, इसका परिचय बहुत कुछ इस कथा से मिल जाता है। उपन्यास के नाम की यही सार्थकता है, एक मुहल्ले के चित्र मे लेखक ने भारतीय समाज के बहुत से रूपों के दर्शन करा दिये हैं।"[1]

जहा तक वातावरण वर्णन तथा स्थानीय रगत का प्रश्न है वे इस उपन्यास में और 'अमृत और विष' म भी अपने सजीवतम रूप में उपस्थित हैं। नागर जी की चित्रात्मक शली ने वर्णना को निखार दिया है। लोक जीवन से उनकी अभिज्ञता ने उन्ह राज मार्गों से लेकर गली-कूचो तक, उच्च वर्गों की हवेलियो से लेकर सडक के फेरी वालो तक और आधुनिक रग को परिष्कृत भाषा बोलने वाला स लेकर जन बोलियों को प्रश्रय लेने वाले सामान्य कहे जाने वाले व्यक्तियो तक पहुचाया है। उन्हे जितना बोध आधुनिक सभ्यता का है, उतना ही सामान्य जन के बीच पलने वाली सभ्यता तथा सस्कृति का। सडक तथा होटल, रेस्तरा के जीवन से भी वे परिचित हैं और निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के भीतर के जीवन से भी। हम कह चुके हैं कि वे जितने ही क्षमतावान् लेखक हैं, उतने ही प्रबुद्ध समाज शास्त्री भी। उनके इस ज्ञान ने उनके उपन्यासो को देशकाल, वातावरण चित्रण तथा स्थानीय रगत की दृष्टि से न केवल निर्दोष बनाया है, वह उनकी शक्ति का एक बहुत बडा कारण है। उपन्यासों के स्वतन्त्र

१— आस्था और सौंदर्य— डा० रामविलास शर्मा— पृ० १३४।

विवेचन के अतंगत हम इन सब प्रसगा पर, उनके रेखा चित्र निर्माण, उनके वणन, उनकी सजीव चित्रात्मक शली आदि आदि पर, पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। यहां निष्कर्ष रूप मे इतना ही कहगे कि हिन्दी के बहुत कम कथाकार इन क्षेत्रों में नागर जी की सफलता का स्पश करते हैं। यह उनका प्रिय क्षेत्र है—जिसके सस्कार उनके मन में बचपन से ही पडना प्रारम्भ हो गये थे और जिनमें वे आज भी जीते हैं।"[1] इस क्षेत्र में वे अपराजेय हैं।

निष्कर्ष —

नागर जी के उपन्यासों के कला और शिल्प सम्बन्धी इस सक्षिप्त विवेचन के आधार पर हम सहज ही इस निष्कष पर पहुच सकते हैं कि कला और शिल्प को अभिव्यक्ति का माध्यम मानते हुये भी उन्होने एक सच्चे साहित्यकार की भाति उसके प्रति अपनी निष्ठा सूचित की है। वस्तुत *उनकी कृतिया वस्तु तथा विचार पक्ष के प्रामुख्य के बावजूद कला और शिल्प* की कसौटी पर भी सफल कृतिया हैं। उनके वृहत उपन्यासों के वस्तु विन्यास आदि को लेकर कुछ सीमाए अवश्य बताई गई हैं। हम भी इन सीमाओ पर प्रकाश डाल चुके हैं। सत्य ही, ये उपन्यास अनावश्यक वणनों विवरणो तथा विचारो से बचते हुये आकार मे कम किये जा सकते थे। परन्तु इनकी य सीमाए उपन्यासो के समग्र वशिष्टय को देखते हुये बहुत महत्वपूण नही हैं। एक सजग सामाजिक चतना वाले कथाकार से जो एक ईमानदार रचनाकार भी हो, कला और शिल्प सम्बन्धी जितनी सजगता की अपेक्षा की जा सकती है वह नागर जी मे है।

— — —

१— "इलाहाबाद बक की कोठी के सामने वाली सडक, कोठी के नीचे दूकानो में बसे हुये मुसलमान सब्जीवालो की बातो, उनके यहाँ फुटपाथ पर होने वाले खयालगोई के दगल, तीतर-बुलबुल बटेरो की लडाइयाँ, ब्याह बरातो के जुलूस होली मुहरम के मेले सब मझे बचपन के साथियो से मिले थे।"
—नागर जी द्वारा दिये गय हस्ताक्षर युक्त लिखित साक्षात्कार द्वारा।

उपसहार

प्रस्तुत प्रब ध का प्रारम्भ करते हुए हमने प्रथम अध्याय के अ तगत प्रेमचन्द और उनकी परम्परा के सदभ में ही, हि दी उप यास के क्षेत्र में अमतलाल नागर के प्रवश की चर्चा की थी। प्रब ध के अगले अध्यायो मे नागर जी की औप यासिक कृतियो का विवचन करते हुय भी हमने एकाधिक बार प्रमच द-परम्परा के एक समय कथाकार के रूप मे नागर जी का उल्लेख किया है। प्रब ध के अ तगत अपने विवेचन का समापन करते हुये भी हम प्रमच द और उनकी परम्परा का साथक स्मरण करना चाहेंगे। श्री अमतलाल नागर क सदभ मे अथवा हि दी उप यासो की चर्चा के सदर्भ में प्रमच द और उनकी परम्परा का उल्लेख करने म हमारा तात्पय नागर जी अथवा हि दी उप यास की क्षमत ओ, सभावनाओ तथा उपल ध को किसी सीमित भूमिका में बाध देना नही है, और न ही किसी एक कथाकार को अतिरिक्त महत्व देना ही है, हमारा उद्दश्य एक सवमा य तथ्य को स्वीकार करन के साथ साथ अपने विवेच्य कथाकार नागर जी के कृतित्व को उसके सही परिप्र्य मे देखना है। उप यास के क्षत्र म नागर जी की उपल धियों की चर्चा करते हुये–बहुधा ही नागर जी का स्मरण प्रेमच द परम्परा के व्यक्ति के रूप मे किया गया है और हि दी उप यास की म यतम गतिविधियो पर विचार करते हुये भी मा य समीक्षकों ने प्राय ही प्रमचन्द और उनकी परम्परा की शक्तिशाली तथा समय प्रेरणा का किसी न किसी रूप में अवश्य ही उल्ल्ख किया है इस सम्ब ध में उदाहरणस्वरूप हम हि दी के विख्यात कवि, कथाकार और है विचारक श्री अज्ञेय के एक कथन का उल्लेख करना चाहगे जिसकी सत्यता को स्वीकृति देते हुये हि दी के शीपस्थ समीक्षक आचाय नन्द दुलार वाजपेयी ने भी अपने एक निब ध में नये उप यासों की चर्चा करते हुये उसे उद्धत किया है। श्री अनय का कथन निम्नलिखित है–"हमने आख्यान साहित्य को प्रेमचन्द से आगे बढाया है लेकिन केवल टेक्नीक की दिशा मे साहित्यकार की सवदना को – उनकी मानवीय चेतना को–हमने अधिक विकसित या प्रसारित नही किया है। यही एक कारण है कि प्रेमच द का आख्यान साहित्य

अब भी हमारा मार्ग दर्शक हो सकता है। प्रेमचन्द को हम पीछे छोड़ आये, यह दावा हम उसी दिन कर सकेंगे जिस दिन उससे बड़ी मानवीय संवेदना हमारे बीच प्रकट होगी।'

श्री अज्ञेय हिन्दी के जाने माने व्यक्तिवादी कथाकार और विचारक हैं। उपन्यासों के क्षेत्र में उनका संबंध व्यक्ति-केन्द्रित मनोवैज्ञानिक धारा से जोड़ा जाता है, जो वस्तुतः प्रेमचन्द और उनकी परम्परा से भिन्न लीक पर गतिशील होने वाली धारा है। आचार्य वाजपेयी प्रेमचन्द के उन समीक्षकों में हैं जिन्होंने प्रेमचन्द के महत्व को पूरी स्वीकृति देते हुये भी अपनी समीक्षाओं में उनकी सीमाओं का भी बहुत स्पष्ट उल्लेख किया है। हिन्दी के ऐसे दो प्रख्यात विचारकों के, प्रेमचन्द और उनकी परम्परा के संबंध में व्यक्त किए गए विचारों के इस संदर्भ में, यदि नागर जी, और सामान्यतः हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियों की चर्चा करते हुये हम भी प्रेमचन्द और उनकी परम्परा का उल्लेख करते हैं, तो यह समीचीन ही कहा जायेगा। हमारी मान्यता है कि नागर जी और एक अर्थ में प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य अपने विकास की विविध भूमिकाओं को तय करता हुआ अपनी अनेक उपलब्धियों के साथ आज जिस बिंदु पर स्थित है, कला और शिल्प संबंधी कतिपय विशिष्ट क्षमताओं के बावजूद उसकी इन उपलब्धियों का एक महत्व पूर्ण संदर्भ प्रेमचन्द और उनके द्वारा प्रवर्तित हिन्दी उपन्यास की नई चेतना में ही देखा जा सकता है। श्री अज्ञेय ने प्रेमचन्द की व्यापक मानवीय संवेदना का जो उल्लेख किया है वह अपने उस रूप में, और अपनी समग्रता में, भले ही उनके बाद के किसी एक रचनाकार में, उसकी चेतना का अंग न बन सकी हो, प्रेमचन्द परम्परा के अनेक कथाकारों का कृतित्व उसे अपनी-अपनी भूमिकाओं में अवश्य विकीर्ण करता है।—श्री अमृत लाल नागर प्रेमचन्द परम्परा के ऐसे ही समर्थ कथाकारों में प्रथम पंक्ति के व्यक्तित्व हैं। उनके रचनाकार-व्यक्तित्व तथा कृतित्व का हमारा अब तक का अनुशीलन भी इसी तथ्य की पुष्टि करता है। अस्तु—

हिन्दी कथा साहित्य में नागर जी के स्थान और महत्व का आकलन करते हुए हम प्रेमचन्द और हिन्दी कथा साहित्य की यथार्थवादी-सामाजिक धारा के अन्य विशिष्ट कथाकारों के मध्य उनके प्रदेय का उल्लेख करते हुये ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास करेंगे। इस स्थल पर हमारा उद्देश्य प्रेमचन्द और अन्य कथाकारों से नागर जी की तुलना न होकर केवल उनके कृतित्व से नागर जी के कृतित्व का संबंध निरूपित करते हुए ही उनके बीच नागर जी के स्थान का निर्देश होगा।

नागर जी के रचनाकार व्यक्तित्व तथा कृतित्व का सबध प्रेमचन्द और उनके कृतित्व से बहुत निकट का है। प्रमचन्द तथा उनके कृतित्व म जो अस मानताए हैं वे वस्तुत ऊपरी हैं, जबकि प्रमचन्द से उनका नकटय आतरिक भूमियों से सबध रखता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासो का कथा पट अधिकाशत ग्रामीण जीवन और उसकी समस्याओं से सबधित है जबकि नागर जी ने प्रधानत शहर के जीवन को केन्द्र में रखकर अपने उपन्यासों की रचना की है। प्रमचन्द के अधिकाँश पात्र निम्नवर्गीय भूमिकाओ के साधारण पात्र हैं जबकि नागर जी के पात्रो का सबध शहर के मध्य-वर्गीय व्यक्तियों स है जिनमें उच्च मध्य वग तथा निम्न मध्य वग दोनो ही भूमिकाआ के लोग आते हैं। प्रमचन्द ने भी नागरिक जीवन की समस्याओ तथा मध्यवर्गीय पात्रों का चित्रण अपने कतिपय उपन्यासा में किया है, और नागर जी ने भी ग्रामीण जीवन की समस्याओ तथा ग्रामीण भूमिकाओं से सबधित पात्रो को अपनी कतिपय कृतियो मे उभारा है। परन्तु जिस प्रकार प्रेमचन्द की शक्ति ग्रामीण जीवन की समस्याओ क चित्रण तथा निम्न-वर्गीय पात्रों के उनके अध्ययन मे दिखाई पडती है उसी प्रकार नागर जी का रचनाकार भी नागरिक जीवन तथा मध्यवर्गीय पात्रो के अकन म ही अपनी विशेष क्षमता प्रदर्शित कर सका है। प्रेमचन्द को ग्रामीण भूमिका के साधारण पात्रों के चित्रण में अदभुत सफलता मिली है —और नागर जी भी नगर क गली मुहल्लो के साधारण पात्रो क चरित्राकन में विशेष क्षमतावान् सिद्ध हुए हैं। प्रेमचद और नागर जी की इन सफलताओं का सबसे बडा कारण जाने माने जीवन और उससे सबद्ध मनुष्या को ही अपनी कृतियो में चित्रित करना है। जिस जीवन को उन्होंने देखा और भोगा है, जिन व्यक्तियों क रग-रेशे से वे भली भाँति परिचित हैं, उन्हें ही उन्होंने अपनी रचना का आधार बनाया है। अपने-अपने क्षेत्रों में ये दोनो ही कथाकार वस्तुत इसी कारण इतनी सफलता प्राप्त कर सके हैं। दोना कथाकारो के भिन्न भिन्न क्षत्रों क बावजूद जा वस्तु दोनो के बीच अभिन्न सबध स्थापित करती है वह और कुछ नही उनका यथाथ दृष्टिकोण है। इस यथाथ दृष्टिकोण को जिन क्षमताओ के साथ प्रेमचन्द के कृतित्व में देखा जा सकता है, उसकी वही क्षमताए नागर जी के कतित्व में भी पूरी तरह से विद्यमान है। वस्तुत जीवन के ऊचे से ऊचे आदर्शों के बावजूद प्रेमचन्द और नागर जी की उपन्यास कला की सबसे बडी शक्ति और सबसे बडी उपलब्धि यही यथार्थवाद है। इनकी कला इस यथार्थवाद से जितनी

दूर तक सपृक्त हो सकी है उतनी ही दूर तक वह स्थायी भी बन सकी है। जीवन की यथार्थवादी भूमिकाओ से नागर जी का सबध कितना गहरा है इसे उनके ऐतिहासिक उपन्यास भी प्रमाणित करते हैं। हम कह चुके हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में नागर जी का दृष्टिकोण न तो रोमांटिक रहा है और न पुनरुत्थानवादी। उन्होंने इतिहास में भी अपनी यथार्थवादी दृष्टि को ही सक्रिय किया है और तभी वे उस समाज का ऐसा चित्र आक सके है जो इतिहास के प्रति पाठक की रोमांटिक धारणा को एक झटके के साथ तोड़ देता है। हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में भी जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों को उद्घाटित करने के बावजूद नागर जी खरे यथार्थवादी हैं। यह ऐतिहासिक यथार्थवाद उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की और समग्रत उनके इतिहास चिंतन की, एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

अपने सामाजिक उपन्यासों में भी नागर जी ने यथार्थ चित्रण की भूमिका का सम्यक् निर्वाह किया है। यहां भी वे आधुनिक जीवन की विविध समस्याओं के उदघाटन मे प्रेमचन्द के समान ही सफल हुए हैं। आधुनिक जीवन के वैषम्य का, उसकी विकृतियों का, उसकी समस्याओं तथा उसके भीतर पड़ने वाले विविध वर्गों का उन्होंने बहुत ही सजीव और सशक्त चित्रण किया है। स्पष्ट ही इस समूचे चित्रण में प्रेमचन्द की ही भांति नागर जी ने भी सामान्य जन जीवन और सामान्य भूमिका के पात्रों को ही अपनी मानवीय सवेदना का अधिकारी बनाया है। यदि प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्रामीण जीवन की विषमताओं के बीच पिसते हुए जन-जीवन को गहरी सवेदनात्मक अभिव्यक्ति मिली है, साथ ही गांव के साधारण जन की आशाओं और आकांक्षाओं को मुखर किया गया है, तो नागर जी के उपन्यासों में भी नागरिक जीवन की समूची घुटन के बीच किसी प्रकार आगे की ओर घिसटते हुए मध्यवर्ग को उसकी सारी पीडा और सारी आशाओं आकांक्षाओं के साथ अभिव्यक्ति दी गई है। नागर जी की कृतियों में प्राप्त होने वाले यथार्थवादी जीवन सदर्भों तथा यथार्थवादी चित्रण पर हम पिछले अध्यायों में पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। हमारी मान्यता है कि यह यथार्थवाद नागर जी के कृतित्व की एक बहुत बड़ी सिद्धि है। जीवन की कठोर विषमताओं से घबड़ाकर जहां आधुनिक युग के अनेक कथाकार अपनी कृतियों में काल्पनिक जीवन के चित्रण में ही, अथवा बाह्य जीवन से कट कर व्यक्ति के मन की अधेरी गुफाओं के उदघाटन में ही, रस लेने लगे हैं, बाह्य परिस्थितियों की समूची विषमता से आंखें मिलाते हुए, सामाजिक यथार्थ

के प्रति नागर जी की यह निष्ठा उनकी सामाजिक चेतना का ही प्रमाण मानी जायेगी। कहना न होगा कि उनकी इस निष्ठा के मूल में प्रमचन्द के कृतित्व की प्रेरणा का एक बहुत बडा अश है।

नागर जी का चिंतन भी प्रमचन्द के चिंतन से अपना निकट का सबध सूचित करता है। यथार्थ के प्रति सपूर्ण निष्ठा रखते हुए भी प्रेमचन्द का चिंतन जिस प्रकार जीवन के उदात्त ,आदर्शों को प्रस्तुत करने वाला चिंतन है, नाना प्रकार की युगगत विकृतियो के बीच भी जिस प्रकार उसका सबध जीवन के श्रेष्ठ मानवीय मूल्यो से सदव बना रहा है, रूढियो, अधविश्वासों तथा प्रतिगामी परम्पराओं के विरोध म युग की प्रगतिशील भूमिकाओ का आत्मसात करते हुए भी वह जिस प्रकार सही अर्थों म राष्ट्रीय तथा भारतीय चिंतन है, नागर जी के चिंतन के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। वस्तुत जहा तक यथार्थ निष्ठा के साथ-साथ उच्चतर मानवीय मूल्यो तथा उदात्त आदर्शों की भूमिका का प्रश्न है नागर जी तथा प्रमचन्द के चिंतन मे अद्भुत साम्य है। जिस प्रकार प्रमचन्द का दृष्टिकोण राष्ट्रीय होने के बावजूद मनुष्यता के धरातल पर सार्वभौमिक है उसी प्रकार नागर जी का मानवतावाद भी किसी एक देश की सीमाओ स घिरा नही है। दोनों ही कथाकारो ने अपने इस मानवतावाद को भारतीय आधारो से पुष्ट किया है। नागर जी के चिंतन म प्रेमचद से भिन्न जो नये तत्व हैं, उनका सम्बन्ध उनकी अपनी युगीन भूमिका से है। प्रेमचद अपने समय की प्रगतिशील भूमिकाओं से सपृक्त थे और नागर जी ने अपने उपन्यासो म उठने वाली समस्याओं को अपने समय की विकसित और प्रगतिशील चिंतनधाराओं के सदर्भ में विश्लेषित किया है। तत्वत नागर जी और प्रेमचन्द के चिंतन म कोई भेद नहीं है।

नागर जी के उपन्यासो मे आधुनिक जीवन की जिन अनेक समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है उनका उल्लेख "विचार पक्ष तथा जीवन दर्शन" शीर्षक अध्याय में हम कर चुके हैं। इस स्थल पर हम इन समस्याओ के चित्रण में नागर जी की भूमिका का उल्लेख न करते हुए केवल उनके एक विशिष्ट पक्ष पर ही प्रकाश डालेंगे। यह पक्ष है शोषित मनुष्यता क एक अग के रूप मे नागर जी द्वारा किया गया नारी जीवन का चित्रण। अपने उपन्यासो मे नागर जी ने नारी-समस्या को सवेदना की पूरी गहराई के साथ प्रस्तुत किया है। उनका 'सुहाग क नूपुर' उपन्यास तो समाज क बीच नारी के अभिशप्त जीवन से सबधित है ही, उनक लगभग सभी उपन्यासो म नारी जीवन की

बेबसी तथा पीडा को बडी मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है। प्रेमचद ने भी अपने उपन्यासो में वर्तमान समाज व्यवस्था मे नारी के दयनीय जीवन का चित्रण किया है। हिन्दी के वे पहले उपन्यासकार है जिन्होने अपने 'सेवासदन' उपन्यास में नारी जाति की आर्थिक पराधीनता के प्रश्न को उठाते हुए वर्तमान सामाजिक ढांचे के एकागीपन का उदघाटन किया था। 'सुहाग के नूपुर' उपन्यास में नागर जी ने भी इसी समस्या को प्रस्तुत किया है और इसके क्रम में पुरुष वर्ग के अपने स्वार्थों पर भी प्रकाश डाला है। प्रेमचद को भाति उन्होंने भी अपनी कृतियों मे नारी के लिय सही न्याय की माँग की है। नारी समस्या पर नागर जी द्वारा जो भी विचार प्रस्तुत किये गये हैं, वे उनकी मानवीय सवेदना तथा प्रगतिशील चिंतन के परिचायक हैं।

हास्य और व्यग्य की जिस परम्परा को प्रेमचद ने भारतेन्दु और उनके युग के निबधकारो से प्राप्त किया था, उस परम्परा को नागर जी ने अपनी कृतियों में और भी पुष्ट तथा सपन्न बनाकर प्रस्तुत किया है। हास्य और व्यग्य के क्षेत्र मे नागर जी की अद्वितीय भूमिका को हिन्दी के लगभग समस्त समीक्षकों ने स्वीकार किया है। आधुनिक युग में कदाचित् उनकी क्षमता का कोई दूसरा हास्य और व्यग्य लेखक नही है। यह हास्य और व्यग्य भी नागर जी की कृतियों में वस्तुत उनकी यथार्थवादी कला के एक सशक्त अग के रूप में ही स्पष्ट हुआ है। यह कोरा हास्य और व्यग्य नहीं है, वरन गहरे सामाजिक आशयो से पूर्ण है। इस हास्य और व्यग्य का आधार लेकर ही नागर जी ने न केवल आधुनिक युग की मरणशील परम्पराओं तथा रीतियो-नीतियों की खिल्ली उडाई है उन्हें प्रश्रय देने वाली शक्तियो पर भी कडे प्रहार किये हैं। मनोरजन के साथ साथ नागर जी के हास्य और व्यग्य का यह सामाजिक रूप उनकी कला की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि सिद्ध करता है।

नागर जी के उपन्यासों मे प्राप्त होने वाले लोक जीवन के सजीव चित्रण को लेकर उनकी पर्याप्त सराहना की गई है। पुरानी पीढ़ी से लेकर नई पीढी के रचनाकारो तथा समीक्षकों तक ने इस क्षेत्र में नागर जी को अद्वितीय माना है। नागर जी की इस प्रशस्ति का आधार या तो उनके प्रत्येक उपन्यास मे दृष्टिगोचर होता है परन्तु उनका 'बूद और समुद्र' उपन्यास इस दृष्टि से कदाचित सबमे महत्वपूर्ण है। गली मुहल्ला में पाये जाने वाले सामान्य जीवन का जितना सजीव सपूर्ण और चित्रात्मक विवरण इस उपन्यास में नागर जी ने प्रस्तुत किया है, वह सम्भवत हिन्दी उपन्यासों में दुर्लभ कहा जायेगा। यह

चित्रण केवल लेखक की पैनी दृष्टि का ही सूचक नहीं है उस जीवन से लेखक के गहरे तादात्म्य का भी उदाहरण है। आचलिक उपन्यासो को छोड इस प्रकार का चित्रण सामान्यत उपलब्ध नही हो सकता। यही कारण है कि अनेक समीक्षकों ने 'बूद और समुद्र' को आचलिक उपन्यास भी कहा है। यदि 'बूद और समुद्र' आचलिक उपन्यास है तो कहा जायगा कि यह हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमे नगर के केन्द्रीय जीवन को लेकर आचलिकता की सष्टि की गई है। या 'बूद और समद्र' को छोड भी दिया जाय, तो लोक जीवन के चित्रण की दृष्टि से नागर जी की अन्य कृतियाँ भी अत्यन्त सम्पन्न हैं। लोक जीवन के साथ इतने गहरे तादात्म्य का आधार पाकर ही नागर जी की कृतिया अपनी सजीवता म इतनी आकर्षक बन सकी हैं।

नागर जी की कृतिया उपन्यास शिल्प में प्रेमचन्द परम्परा के अन्य कथाकारों की कृतियो की भाति ही उपन्यास की सहज रचना पद्धति का आधार लेकर ही लिखी गई हैं। वस्तुत जसा कि कला और शिल्प शीर्षक अध्याय मे हमने कहा है, नागर जी न शिल्प को सदव ही वस्तु की अभिव्यक्ति के एक प्रभावशाली माध्यम के रूप मे स्वीकार किया है। शिल्प के स्तर पर किसी अनपेक्षित नवीनता के हामी व नही रहे हैं। इस भूमिका के प्रति निष्ठा रखते हुये उन्होने अपने उपन्यासो के कलात्मक आधार को सदव सम्पन्न बनाने का प्रयास किया है। उनका 'सेठ बाकेमल' उपन्यास कथा शिल्प के क्षेत्र में उनका एक सफल प्रयोग है। 'अमत और विष' उपन्यास म उन्होने दोहरे कथानक को उठाते हुये बड ही आकर्षक तथा सजीव कथा शिल्प का प्रयोग किया है, और इस पद्धति की सारी जटिलता तथा सारी 'रिस्क' के बावजूद उन्होने अभूतपूव सफलता भी प्राप्त की है। परन्तु कला और शिल्पगत य भूमिकाए कही भी इतनी प्रगल्भ नही हो पायी हैं कि वे साहित्य की वस्तुगत क्षमता तथा सवेदनागत प्रभाव को कम करने म सहायक बन सकी हो। वस्तुत शिल्पगत नये स नये प्रयोगो की पूरी क्षमता होने के बावजूद नागर जी ने आधुनिक युग की प्रयोगवादिता से अपने को पूरी तरह अलग रखा है। भाति भाति के फशन वाले आज क युग म उपन्यास रचना को एक गभीर उद्देश्य के रूप म मान्यता दिये रहना कम महत्वपूर्ण नहा है।

अपने अब तक के विवेचन म हमने नागर जी के उपन्यासो की कतिपय उन उपलब्धियो का ही विवरण दिया है जो उनके कृतित्व की स्थायी उपलब्धियाँ तथा एक समय कथाकार के रूप म उनकी लोकप्रियता का प्रधान आधार है। सन १९४७ स लेकर अपने अब तक के रचनाकाल मे नागर जी ने छोटे-बडे छ उपन्यास ही लिखे हैं। बूद और समुद्र तथा अमृत और विष

उनकी व कृतिया हैं जिनका रचनापट पर्याप्त व्यापक तथा प्रशस्त है। नागर जी की ये कृतिया परिमाण मे अल्प होने के बावजूद अपनी विशिष्टताओ के कारण पाठकों के बीच पर्याप्त लोकप्रिय हुई हैं। इन कृतियों में उन्होने सामान्य जन जीवन के बीच से कतिपय अविस्मरणीय चरित्रों की सृष्टि की है। 'बूंद और समुद्र' उपन्यास की ताई का चरित्र ऐसा ही चरित्र है जिसे विश्व कथा-साहित्य के विशिष्ट चरित्रों के बीच प्रस्तुत किया जा सकता है। नागर जी की यह प्रसिद्धि उनकी साहित्य साधना के सर्वथा अनुरूप है। रचना के प्रति जिस एकनिष्ठता तथा ईमानदारी की अपेक्षा किसी भी सच्चे साहित्यकार से की जाती है वह नागर जी में पूरी मात्रा में विद्यमान है। अपने समकालीन कथाकारो के बीच इसीलिए उनका महत्वपूर्ण स्थान है। तुलना से बचते हुये भी कहा जा सकता है कि अपने अन्य समानधर्माओं के बीच उन्होंने अपने रचनाकार व्यक्तित्व की विशिष्टता को सहज सुरक्षित रखा है। निम्नमध्यवर्गीय जीवन का चित्रण अश्क जी के उपन्यासो में भी प्राप्त होता है, और अश्क की सबसे बडी सफलता इसी जीवन के चित्रण में मानी गई है। परन्तु अश्क जी के उपन्यासो में वह विविधता नही है, जो नागर जी की कृतियो में हमें प्राप्त होती है। नागर जी के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन की प्रमुखता के बावजूद समूचे आधुनिक जीवन की भूमिकाए हमें उपलब्ध होती हैं। प्रगतिशील कथाकार यशपाल के उपन्यास इस दृष्टि से नागर जी के उपन्यासो से टक्कर लेते हैं। अनुभवों की सम्पन्नता तथा दृष्टि का पैनापन यशपाल की बहुत बडी शक्ति है, परन्तु यशपाल का सबध एक विशिष्ट राजनीतिक मतवाद से भी रहा है, और है। यही कारण है कि यशपाल के उपन्यासो की शक्ति को स्वीकार करते हुये भी प्राय समीक्षको ने उनके दृष्टिकोण को एकांगी घोषित किया है। यशपाल के उपन्यासो में भी प्रधानता मध्यवर्गीय जीवन की ही है, और इस सदर्भ में उन पर इस प्रकार के आरोप भी लगाये गये हैं कि प्रगतिशील कथाकार होने हुये भी वे अपने दृष्टिकोण को मध्यवर्गीय सस्कारो से ऊपर नही उठा सके है। यशपाल के उपन्यासो में यौनवादी भूमिकायें भी अनपेक्षित रूप से प्रत्यक्ष हुई हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि यशपाल का कृतित्व लेखक की अनुभव गत सारी सम्पन्नता, प्रौढ़ता तथा समग्रता के बावजूद कतिपय सीमाओं को भी सामने रखता है। नागर जी की कृतिया राजनीतिक मतवाद तथा यौनवादिता जसी सीमाओं से मुक्त, अधिक प्रशस्त तथा स्वच्छ धरातल पर स्थित हैं। उनमे यशपाल जसी प्रखरता भले न हो, परन्तु व एकागिता जसे दोष से रहित हैं। यशपाल की यथार्थ चेतना से नागर जी की यथार्थ चेतना

अधिक सफल नहीं तो कम सफल भी नहीं है। रांगेय राघव तथा नागार्जुन के उपन्यास भी अपने यथार्थ चित्रण में अत्यन्त प्राणवान् तथा सजीव हैं, परन्तु राजनीतिक मतवाद से सम्बद्धएकांगिता से वे भी पूरी तरह बच नहीं सके हैं। इस दृष्टि से रेणु नागर जी के समकालीन कथाकारों में ऐसे हैं जो किसी भी राजनीतिक मतवाद से सम्बन्धित नहीं हैं रेणु के आंचलिक उपन्यास हिन्दी कथा-साहित्य में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। कहा जा सकता है कि आंचलिक उपन्यासों की कला रेणु के उपन्यासों में पूरी सजीवता के साथ विद्यमान है। नागर जी के समूचे कृतित्व को आंचलिक नहीं कहा सकता। परन्तु यदि 'बूंद और समुद्र' उपन्यास को लें, तो अवश्य रेणु के उपन्यासों के साथ उस पर विचार किया जा सकता है। इस दृष्टि से नागर जी और रेणु दोनों ही अपने अपने स्थान पर विशिष्ट हैं। रेणु के उपन्यास ग्रामीण अंचल से सबद्ध हैं, जब कि नागर जी की कृति में आंचलिकता का संबंध ठेठ नगर के जीवन से है। अपनी-अपनी भूमिकाओं में दोनों ही लेखकों ने आंचलिक उपन्यास की कला को लोक जीवन के अपने गहरे अनुभवों के बल पर सफल बनाया है।

ऊपर की पंक्तियों में हमने संक्षेप में यथार्थवादी धारा के कतिपय ऐसे कथाकारों के साथ नागर जी के रचनाकार-व्यक्तित्व को देखा है जो प्रेमचन्द परम्परा के कथाकार हैं। इन समस्त कथाकारों की शक्ति तथा लोकप्रियता के अपने पुष्ट आधार हैं। इनसे नागर जी की तुलना न करते हुये भी हमने केवल उस भूमिका को ही सामने रखा है जो यथार्थवादी कला के समान सूत्र के बावजूद नागर जी की कृतियों को उनकी कृतियों से भिन्न एक स्वतंत्र व्यक्तित्व देती हैं। इस विवेचन के सन्दर्भ में हमारा निष्कर्ष केवल इतना ही है कि प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य में यथार्थवादी धारा के जो भी रचनाकार हैं उनके बीच नागर जी का स्थान किसी से कम महत्वपूर्ण नहीं है। सच पूछा जाय, तो वे अपेक्षाकृत प्रेमचन्द के अधिक निकटवर्ती हैं, और अन्य कथाकारों की भांति विवादास्पद भी नहीं हैं।

नागर जी के कृतित्व की उपलब्धियों का विवरण हम दे चुके हैं। वस्तुतः यही वे उपलब्धियां हैं जिनके आधार पर हमने नागर जी को प्रेमचन्द परम्परा के रचनाकारों की प्रथम पंक्ति का व्यक्तित्व स्वीकार किया है। प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य के अज्ञेय, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी यशपाल नागार्जुन और रेणु जैसे कथाकारों के साथ ही नागर जी का स्थान भी हिन्दी कथा साहित्य में पर्याप्त महत्वपूर्ण है। 'बूंद और समुद्र' तथा 'अमृत और विष' जैसी उनकी कृतियाँ हिन्दी कथा-साहित्य को तथा उन्हें, अंतराष्ट्रीय स्तर की ख्याति

देने में सक्षम रही हैं। इसे हिन्दी कथा-साहित्य के गौरव तथा नागर जी की एकनिष्ठ साहित्य साधना का प्रमाण माना जा सकता है।

प्रत्येक महत्वपूर्ण कथाकार के संदर्भ में उपलब्धियों के साथ-साथ सीमाओं का भी एक छोटा अध्याय संलग्न रहा करता है। नागर जी की भी अपनी कुछ सीमाएं हैं, जिन पर भिन्न भिन्न अध्यायों के अंतर्गत हमने यथा-स्थल प्रकाश डाला है। इस स्थल पर हम केवल नागर जी के चिंतन की उस सीमा का ही उल्लेख करना चाहेंगे, जिसकी ओर प्राय ही समीक्षकों ने संकेत किया है।—नागर जी के विचार पक्ष का विश्लेषण करते हुये हमने उनके चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष उनकी समन्वयवादिता को माना है और यही समन्वयवादिता कतिपय समीक्षकों के अनुसार नागर जी के चिंतन की सबसे बड़ी सीमा है। नागर जी ने स्पष्ट ही अपनी कृतियों में अनेक स्तरों पर इस समन्वयवाद को प्रश्रय दिया है, वह परम्परा तथा आधुनिकता का समन्वय हो, अध्यात्म तथा भौतिकता का समन्वय हो अथवा गांधीवाद तथा मार्क्सवाद का समन्वय हो। वस्तुतः इस भूमि पर नागर जी बहुत कुछ हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानंदन पंत के साथ अपना तादात्म्य सूचित करते हैं। उनमें नई जीवन दृष्टियों के प्रति भी आकर्षण है, और परम्परागत भूमिकाओं के प्रति भी मोह। वे साम्यवाद को 'अहिंसा का जनेऊ' पहनाना चाहते हैं, अर्थात् मार्क्सवादी आस्थाओं के साथ गांधीवादी हृदय परिवर्तन को जोड़ना चाहते हैं। वर्ग संघर्ष पर भी उन्हें आस्था है, और भूदान, सम्पत्तिदान तथा सुधारवादी आश्रमों के प्रति भी। वे प्रजातन्त्र पर विश्वास करते हैं, साथ ही आज की समस्त राजनतिक पार्टियों को अवसरवादी भी कहते हैं। अपने चिंतन की, और इस प्रकार युग के चिंतन की तमाम विरोधी भूमिकाओं को एक साथ लिए हुए वे इनका समन्वय करते हुये एक ऐसी समाज-व्यवस्था के हामी हैं, जो अतिवादों से परे समाज की सही प्रगति की विधायिका बन सके। जहां तक नागर जी के इस उद्देश्य का प्रश्न है, उसकी उपादेयता से किसी को भी असहमति नहीं हो सकती। परन्तु प्रश्न है कि क्या विरोधी भूमिकाओं का इस प्रकार का समन्वय व्यावहारिक दृष्टि से सम्भव हो सकता है? समन्वयवाद वैसे भी बहुत गतिशील प्रेरक तथा सजीव वस्तु नहीं होती, फिर जहां भांति भांति की विरोधी भूमिकाएं हों, वहां सबका समन्वय करते हुये किसी सवमान्य भूमिका तक पहुंचना व्यावहारिक दृष्टि से बहुत कठिन ही कहा जायेगा। इस समन्वयवाद में एक खतरा यह भी है कि तमाम विरोधों के समन्वय के क्रम में कोई ऐसी वस्तु सामने आये जो स्वतः न केवल अस्पष्ट हो बल्कि अनेक प्रकार के

अंर्तावरोधो से ग्रस्त भी हो। नागर जी के समन्वयवादी चिंतन का जो भी रूप उनकी कृतियो म उभरा है, वह अनेक स्थलो पर असगतिया से पूण हो उठा है। यह स्पष्ट नहीं होता कि चिंतन की जिस भूमिका को नागर जी चाहते हैं, और जिसे व प्रतिपादित करते हैं, वह किस रूप मे आज के मनुष्य के चिंतन का अग बन सकेगी और यदि बन भी सकी तो कहा तक समाज को प्रगति के पथ पर आगे ले जाने म समथ हो सकेगी ? नागर जी के चिंतन की इस सीमा को कुछ अशो तक हम भी स्वीकार करते हैं, और आशा करते हैं कि वे अपने सामन्वयवादी चिंतन की व्यावहारिक भूमिका क प्रति भी अपने समीक्षको को आश्वस्त कर सकेंगे, तभी वह ग्राह्य भी हो सकगा। जहा तक इस चिंतन के मूल मे उनकी लोकपरक, ईमानदार तथा निश्छल भावना का प्रश्न है उस पर दो मत नहीं हो सकते।

जहा तक सभावनाओ का प्रश्न है, डा० रामविलास शर्मा के शब्दों मे हम इतना ही कहना चाहगे कि 'नागर जी हिन्दी के उन थोडे स कलाकारो मे हैं, जो साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ म दा एक अच्छे उपन्यास लिखकर चुक नही गये। उनकी कला बराबर निखरती रही है, उनके अनुभवो का पिटारा बराबर भरता रहा है, उनकी समझ बराबर पकती रही है। उनके साहित्य की ताजगी बढ रही है, घटने का सवाल नही है। उन्होने जितना जो कुछ लिखा है उसस अधिक और अच्छा अभी और लिख सकते हैं और यूरोप की भाषाओ में जिन्होंने गद्य म जो कुछ अच्छे से अच्छा लिखा है उससे स्पर्धा करने की ताकत नागर जी में है। इसीलिये मुझ उनके जीवन म एसा निजी और गोपनीय कुछ भी नही दिखाइ देता जिसका सबध कहीं न कहीं हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रगति से न हो।[1]

१— नीर क्षीर— अमृतलाल नागर विशेषांक— पृ० २९-३५।

परिशिष्ट

(क) आधार ग्रथो की सूची

(ख) सहायक ग्रथो की सूची (हिन्दा)

(ग) सहायक ग्रथो की सूची (अग्रेजी)

(घ) पत्र पत्रिकायें

परिशिष्ट–

(क) आधार ग्रन्थो की सूची :–

— महाकाल (१९४७)

— सेठ बांकेमल (१९५५)

— बूंद और समुद्र (१९५६)

— शतरंज के मोहरे (१९५८)

— सुहाग के नूपुर (१९६०)

— अमृत और विष (१९६६)

(ख) सहायक ग्रयो की सूची (हिन्दी) –

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल — हिन्दी साहित्य का इतिहास

डा० श्यामसुन्दर दास — साहित्यालोचन

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी — आधुनिक साहित्य

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी — हिन्दी साहित्य

" — विचार और वितर्क

" — साहित्य का साथी

आचार्य भगीरथ मिश्र — काव्य शास्त्र

डा० गुलाबराय — काव्य के रूप

मुन्शी प्रेमचन्द — साहित्य का उद्देश्य

" — कुछ विचार

डा० रामविलास शर्मा — प्रेमचन्द और उनका युग

" — आस्था और सौंदर्य

श्री शिवनारायण लाल श्रीवास्तव — हिंदी उपन्यास

डा० सुषमा धवन — हिंदी उपन्यास

डा० गणेशन् — हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन

डा० त्रिभुवन सिंह — हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद

डा० चण्डीप्रसाद जोशी — हिंदी उपन्यास, समाज शास्त्रीय अध्ययन।

डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी — हिंदी नवलेखन

डा० शकरदेव अवतरे — आधुनिक साहित्य में काव्य रूपों के प्रयोग

डा० रामगोपाल सिंह चौहान — आधुनिक हिंदी साहित्य

डा० सुरेश सिन्हा — हिंदी उपन्यास उदभव और विकास

" — उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियां

डा० प्रतापनारायण टंडन — हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास

डा० श्री नारायण अग्निहोत्री — हिंदी उपन्यास का शास्त्रीय अध्ययन

नेमिचन्द्र जैन — अधूरे साक्षात्कार

डा० शिवकुमार मिश्र — वृन्दावनलाल वर्मा, उपन्यास और कला

" — प्रगतिवाद

अमृतलाल नागर — नवाबी मसनद

राल्फ फाक्स, अनु० नरोत्तम नागर — उपन्यास और लोक जीवन

कमलेश (सपादक) — साहित्यिक निबन्ध

डा० देवीशकर अवस्थी (सपादक) — विवेक के रंग

(ग) सहायक ग्रथो की सूची (अग्रजी) –

E M Forster — Aspects of the Novel
Edwin Muir — The Structure of the Novel
Henry James — The Art of the Novel
Percy Lubbok — The Craft of Fiction
Robert Liddell — A Treatise on the Novel
W H Hudson — An Introduction to the study of Literature

(घ) पत्र पत्रिकायें

आलोचना (दिल्ली)
धमयुग (बम्बई)
वातायन (बीकानेर)
माध्यम (प्रयाग)
नीर क्षीर (कानपुर)
सीमात प्रहरी (मसूरी)
ज्ञानोदय (कलकत्ता)

उक्त पत्र-पत्रिकाओ के कतिपय विशिष्ट अको का ही उपयोग किया गया है।